अनुक्रमणिका

अकारादि क्रम से गीत सूची

आमुख

इष्टदेव श्रीरामचन्द्र की असीम अनुकम्पा से, पूज्यपाद गुरुदेव की अपार आशीष से और लेखन सहायिका के सतत सहयोग तथा अथक परिश्रम से 'संगीताञ्जलि' का यह पञ्चम भाग प्रकाशित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

संगीत का यह क्रमबद्ध प्रकाशन जिस योजना के अन्तर्गत हो रहा है, उस योजना का मूलभूत उद्देश्य, संगीत के विद्यार्थियों के लिए वैज्ञानिक आधार से क्रमबद्ध पाठ्यसामग्री प्रस्तुत करना ही रहा है। इस योजना के अन्तर्गत 'संगीताञ्जलि' के प्रथम दो भागों में 'संगीत प्रवेशिका' और तीसरे-चौथे भाग में 'संगीत मध्यमा' (जूनियर-सीनियर डिप्लोमा कोर्स) का पाठ्यक्रम दिया गया है। इस पंचम भाग में संगीतालंकार (बी. म्यूज़) के प्रथम वर्ष की पाठ्य-सामग्री प्रस्तुत है।

इस पुस्तक में दो खण्ड हैं—प्रथम खण्ड में इस पाठ्यक्रम के अन्तर्गत शास्त्रीय विभाग है और द्वितीय खण्ड में प्रयोगगत क्रिया से संबन्धित विषय रखे गए हैं। परिशिष्ट में इस पाठ्यक्रम के उपांग-स्वरूप चार राग दिए गए हैं।

शास्त्रीय खण्ड के आरंभ में भारतीय संगीत के शास्त्र-ग्रन्थों का अल्प परिचय दिया है, जिससे विद्यार्थियों को अपने प्राचीन तथा मध्ययुगीय साहित्य का अल्प दिग्दर्शन हो सके। यह ध्यान रहे कि इस प्रकरण में दी हुई ग्रन्थ-सूची किसी भी दृष्टि से पूर्ण नहीं, काल-दृष्टि से उसमें किसी ऐतिहासिक गवेषणा को स्थान नहीं है। उसका मूल्य परिचय की दृष्टि से ही समझना चाहिए। यों तो यह एक पृथक् गवेषणा का विषय है जिसके लिए इस अल्प परिचय में अवकाश नहीं है। गान्धर्ववेद, भरत नाट्यशास्त्र, बृहद्देशी, 'संगीत रत्नाकर' इत्यादि प्रमुख ग्रन्थों की विषय-सूची जो इस प्रकरण में दी गई है, उसका हेतु विद्यार्थियों की रुचि बढ़ाना, प्राचीन साहित्य के अध्ययन के प्रति उनकी जिज्ञासा जाग्रत करना और ऐसे अध्ययन की अनिवार्य आवश्यकता सिद्ध करना ही है। विशेषतः गान्धर्ववेद की विषय-सूची का दर्शन पाठकों को चकित करे तो आश्चर्य नहीं। यह तो केवल सूची ही है, किन्तु उस ग्रन्थ में कितना निःसीम ज्ञान-विज्ञान भरा पड़ा होगा, जो आधुनिक दृष्टि को भी चकाचौंध कर सकता है। भगवान् करें परकीय शासन काल में जिस महानिधि का विनाश हुआ है, वह कहीं गिरि कन्दरा से या किसी भी अज्ञात कोने से उपलब्ध हो जाए और विश्व को आलोकित करे। दूसरी ओर नाट्यशास्त्र की विषय-सूची द्वारा संगीत के भाव-पक्ष के शास्त्रीय रूप की ओर हम विशेष-रूप से पाठकों का ध्यान खींचना चाहते हैं।

शास्त्र-ग्रन्थ-परिचय के बाद प्रस्तुत पाठ्यक्रम के अन्तर्गत पूरे स्वर-प्रकरण के विषयों का समावेश किया गया है। (भरत का विषय यहाँ नहीं लिया गया है। राग-शास्त्र के विषयों के साथ उसका उल्लेख आगामी षष्ठ भाग में किया

जाएगा क्योंकि यह विषय राग से ही संबन्धित है।) स्वर, श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना इत्यादि विषयों का परस्पर अविच्छेद संबन्ध एक को समझे बिना दूसरे को समझना असंभव-सा है। इसीलिए इन विषयों की जो अल्पाधिक चर्चा इस ग्रन्थ-माला के पूर्व-भागों में की जा चुकी है, उसे भी यहाँ स्मरण रखना आवश्यक है। इन विषयों को लेखबद्ध करते समय इनका पूर्वापर तर्कसंगत क्रम रखना तो आवश्यक होता ही है, किन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि इन्हें पृथक्-पृथक् समझना असंभव-सा है। अतएव पाठकों से अनुरोध है कि वे प्रस्तुत स्वर-प्रकरण को खण्डशः समझने का यत्न न करें, अपितु पूरे विषय को अखण्ड रूप से समझने के लिए एकाधिकबार इस पूरे प्रकरण को पढ़ लें।

गुणिजन स्वरालाप, शब्दालाप, तान, बोलतान, बहलावा आदि से जो राग का विस्तार करते हैं, वह पर्याप्त सीमा तक स्वर-प्रस्तार पर अवलंबित होता है। प्रत्यक्ष शिक्षा देते समय न्यूनाधिक मात्रा में इसका परिचय दिया ही जाता है, फिर भी वह पर्याप्त नहीं, इसलिए विद्यार्थियों के विकास की दृष्टि से स्वर-प्रस्तार देना यहाँ उचित माना गया है। केवल स्वर-प्रस्तार देने मात्र से उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती, इसलिए इन प्रस्तारों की गणितसिद्ध सरलतम पद्धति भी दी गई है। संगीत के विस्तार-तत्त्व की दृष्टि से उनका उपयोग महत्त्वपूर्ण है। किन्तु यहाँ विद्यार्थियों को आगाह कर देना उचित प्रतीत होता है कि वे केवल इस प्रस्तार (Permutation, combination) की विधि में ही उलझे न रहें, क्योंकि संगीत केवल गणित नहीं है। हृदय के भावों को स्वर द्वारा मूर्तरूप देना और तज्जन्य रसानुभूति का आस्वादन करना और कराना, यही संगीत का मूलभूत उद्देश्य है। इसीलिए भाव-पक्ष को प्राधान्य देते हुए स्वर-प्रस्तार की गणित-विधि की उपयोगिता की मर्यादा सदैव ध्यान में रखी जाए।

इस ग्रन्थ में अनिवार्य रूप से 'संगीत रत्नाकर' जैसे आकर-ग्रन्थ के प्रणेता निःशङ्क शार्ङ्गदेव के दिए हुए श्रुति-स्वर सम्बन्धी विधानों से सम्मत न हो सकने के कारण जहाँ-जहाँ आवश्यक प्रतीत हुआ, उतने अंश पर हमने अपने विचार निर्भीकता से प्रकट किए हैं। विशेष रूप से विकृत स्वर-प्रकरण की ओर हम पाठकों का ध्यान दिलाना चाहते हैं। 'प्रणव-भारती' के तृतीय अध्याय में रत्नाकरोक्त विकृत स्वरों का जो विवरण दिया गया है, उससे भिन्न विचारधारा का यहाँ हमें, सत्य-दर्शन के अनुरोध से उल्लेख करना पड़ा है। सत्य की सेवा के लिए इस विरोधाभास का दोष हमें स्वीकार है। पाठकों से निवेदन है कि वे हमारे इस प्राञ्जल-भाव का उचित मूल्य समझते हुए हमारी विचारधारा को देखें, उस की सत्यता जाँचें और नीर-क्षीर-विवेक से सारतत्त्व को ग्रहण करें। यह हम जानते हैं कि कई लोग 'संगीत रत्नाकर' के सम्बन्ध में हमारी विचारधारा से सम्मत नहीं होंगे। इतने विशाल ग्रन्थ के रचयिता की ओर से श्रुति, स्वर, सारणा इत्यादि के सम्बन्ध में कोई बड़ी भूल हो सकती है, ऐसे विचार प्रकट करना किसी की राय में दुःसाहस भी माना जा सकता है। संभव है इसी आतंक के कारण लोग स्पष्टीकरण से विरत रहे हों। किन्तु मध्ययुग से आज तक संगीत के शास्त्र-ग्रन्थों में जो भ्रम जाल दिखाई देता है, जिससे हम भी पूर्ण मुक्त नहीं रह पाए थे, उसका कियदंश में निराकरण करने का यहाँ यत्न किया गया है। संतत परिशीलन से जो आलोक प्राप्त हुआ उसे अपने तक सीमित न रखने की कर्त्तव्य-बुद्धि से प्रेरित होकर ही यथा स्थान 'रत्नाकर' सम्बन्धी उल्लेख हमने किए हैं।

कुछ लोगों की अकारण ही ऐसी निराधार कल्पना बनी हुई है कि भरत-मुनि-प्रणीत नाट्यशास्त्र में अल्पांश में ही संगीत का विषय उल्लिखित होने के कारण संगीत के सभी अंगों का उसमें पूर्ण और समीचीन रूप स्पष्टीकरण से नहीं

हो सका है ; उसके लिए तो बृहद् ग्रन्थ ही आवश्यक है। किन्तु यह कल्पना निराधार ही नहीं, भ्रान्तिपूर्ण भी है, ऐसा हम स्वानुभव के आधार पर उल्लिखित करना नितान्त आवश्यक समझते हैं। भरत-नाट्यशास्त्र की कारिकाओं में एवं सूत्रबद्ध गद्यांशों में गागर में सागर की भाँति छोटी सी आँख में विशाल आकाश को भर दिया गया है। इसे देखने से 'मुन्युच्छिष्ट जगत्सर्व' कहे बिना रहा नहीं जाता। अस्तु।

प्रस्तुत कक्षा के विद्यार्थियों के लिए राग के स्वतन्त्र विकास का अनिवार्य महत्त्व है। इसलिए मुक्त आलाप तानों की अतिशय उपयोगिता को ध्यान में रखा जाए। बँधे हुए आलाप-तानों को इस कक्षा में स्थान नहीं है; फिर भी तालबद्ध विभिन्न तानों के विकासार्थ मार्ग-प्रदर्शन के निमित्त और विभिन्न प्रकार से मुखड़े पकड़ने का बोध देने के लिए छोटे ख्यालों में कुछ बँधी हुई तानों का समावेश किया गया है। मुक्त आलापतानों के बारे में संकेत-लिपि का जो परिचय पीछे दिया गया है, उसे विशेष रूप से ध्यान में रखते हुए अभ्यास बढ़ाने का विद्यार्थियों से अनुरोध है।

मेरे अन्य प्रकाशनों के सदृश इस ग्रन्थ के प्रणयन में जिन्होंने सहयोग दिया है, सहश्रम किया है और इस प्रकार इसे पूर्ण करने में जो मेरे सहभागी हैं, वे हैं डा० प्रेमलता शर्मा एम० ए०, पीएच० डी०, संगीतालंकार, साहित्याचार्य एवं प्रियदर्श में चि० सुभद्राकुमारी बी० ए० संगीतालंकार। इन्होंने मेरे परिश्रम को हर पहलू से बाँट लिया है और पुस्तक-प्रकाशन के सभी झंझटों से मुझे मुक्त रखा है। यद्यपि ये मेरी छात्रियाँ हैं, फिर भी उन्हें साशीर्वाद निगूढ़ धन्यवाद दिए बिना इस आमुख की पूर्णता नहीं हो सकती। स्वयं अथक श्रम उठाकर सब उपाधियों से मुझे मुक्त रखने वालों ने अपने सेवा-बल से मुझे बाँध लिया है। इस प्रिय बन्धन से मैं मुक्त होना नहीं चाहता। मैं अन्तःकरण से चाहता हूँ कि यह प्रिय बन्धन जन्म-जन्मान्तर में भी बना रहे।

इस ग्रंथ के मुखपृष्ठ का डिज़ाइन श्री कला संगीत भारती के प्राध्यापक श्री दुर्गाप्रसाद पटनायक ने बनाया है। मैं तदर्थ उनका हार्दिक आभारी हूँ। डिज़ाइन में बाईं ओर जो 'बॉर्डर' है उसमें सात स्वरों के उत्पादक पशु-पक्षियों के प्रतीक रखने की श्री पटनायक की विशेष कल्पना है।

इस ग्रन्थ के मुद्रक, सरला प्रेस के संचालक श्री परेशनाथ घोष एवं अन्य कार्य-कर्ताओं को भी हम धन्यवाद देते हैं। साथ ही मुखपृष्ठ का ब्लॉक बनवाने और उसे सुन्दरता से छापने के लिए श्री बाबूलाल जैन 'पागुल्ल', व्यवस्थापक सन्मति मुद्रणालय, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, भी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
शुक्रवार, भाद्रपद, अनन्त चतुर्दशी
वि० सं० २०१५,
२६ सितम्बर, ई० सन् १६५८

निवेदक—
ओंकारनाथ ठाकुर

ॐ

समर्पण - पत्र

मेरी धर्मपत्नी स्व० श्रीमती इन्दिरादेवी ठाकुर

अपनी यौवन-सुलभ समस्त कामनाओं को जिन्होंने मेरी साधना के पीछे
समर्पित किया, जीवन की आशाओं और अभिलाषाओं को मेरी
तपस्या के लिए उत्सर्ग किया—फलस्वरूप यह ग्रन्थमाला—
उसी का यह पाँचवाँ पुष्प उनके आर्य वियोगिन
सौम्य स्नेह, सौहार्द और सन्निष्ठा को
समर्पित है

प्रथम खण्ड

(शास्त्रीय)

भारतीय संगीत के शास्त्रग्रंथों का अल्प परिचय

हमारी संस्कृति के प्राचीन गौरव की गाथा विद्यार्थी अवश्य सुनते आये होंगे और संगीत के चमत्कारों की किंवदंतियाँ भी उन्होंने सुनी ही होंगी। किन्तु संगीत की महान् शक्ति के शास्त्रीय विवेचन के बिना ये सब बातें कथा का चमत्कार मात्र बन कर रह जाती हैं। इसलिये 'बी. म्यूज़'. या 'संगीतालंकार' के विद्यार्थियों को अपने संगीत-संबंधी उपलब्ध साहित्य का कुछ परिचय अवश्य होना चाहिये जिससे वे अपने संगीत के गौरवमय अतीत को समझ सकें और उसके प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना सकें।

संगीत के शास्त्र-ग्रंथों का जो थोड़ा सा परिचय नीचे दिया जा रहा है उसका हेतु यही है कि विद्यार्थियों को प्राचीन तथा मध्ययुगीय संगीत संबंधी साहित्य का दिग्दर्शन करा दिया जाय। यहाँ जो ग्रंथ-सूची दी जा रही है वह किसी भी दृष्टि से पूर्ण नहीं, और ग्रंथों के काल-निर्णय की दृष्टि से उसमें किसी ऐतिहासिक गवेषणा को स्थान नहीं है। यह तो अनुसंधान का पृथक् विषय है जिसके लिये यहाँ अवकाश नहीं है। इसलिये इस विवरण का मूल्य परिचय की दृष्टि से ही समझा जाय। संगीत शास्त्र के प्रति विद्यार्थियों की जिज्ञासा बढ़े, उसमें रुचि पनपे और उसके अध्ययन के प्रति वे जागरुक बनें, यही उद्देश्य है।

भारतीय संगीत की प्राचीनता सामवेद के साथ जुड़ी हुई है, यह बात सदा कहने सुनने में आया करती है। हमारे संगीत की प्राचीन परम्परा की चर्चा चलते ही सामवेद का नाम अवश्य लिया जाता है और वह इसलिये कि सामवेद संगीत के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। इतना ही नहीं, उसकी रचना ही संगीत या गान द्वारा हुई है। ऋग्वेद के गेय मंत्रों का संग्रह ही सामसंहिता है। अतः इस पृथक् संहिता का अस्तित्व ही संगीत पर आधारित है। सामवेद में संगृहीत ऋचाओं के आधार पर ही गान तैयार किये जाते थे। वेद में संगीत की महत्ता का द्योतक गीता का यह वाक्य प्रसिद्ध ही है—'वेदानां सामवेदोऽस्मि'। आज तो 'साम' का गीतात्मक स्वरूप बहुत कुछ लुप्त हो चुका है, जिसका उद्धार करना आवश्यक है। विस्तार भय से यहाँ साम-संगीत का कुछ भी शास्त्रीय परिचय नहीं दिया जा रहा है। फिर भी इसका नामोल्लेख यहाँ इसलिये करना पड़ा है कि हमारे शास्त्रीय संगीत की प्राचीनता और उसकी महत्ता का संबंध सामवेद के साथ जोड़ने की जो प्रचलित प्रथा है, उसकी तह में जो तात्विक दृष्टिकोण छिपा हुआ है उसे समझने की विद्यार्थियों में जिज्ञासा बढ़े।

सामवेद की प्राचीनता के साथ हमारे शास्त्रीय संगीत का संबंध जोड़ने की जिस परम्परा का हमने ऊपर उल्लेख किया उसके साथ ही साथ यह परम्परा भी प्रचलित है कि हमारा शास्त्रीय संगीत वैदिक संगीत की धारा से भिन्न, गान्धर्व संगीत की धारा से विकसित हुआ है। संगीत विद्या का दूसरा नाम गांधर्व-विद्या भी माना गया है। इसलिये यहाँ गान्धर्व-परम्परा का थोड़ा सा परिचय बहुत आवश्यक है। साम संगीत से भिन्न गान्धर्व संगीत की परम्परा का उल्लेख हमें भरत के 'नाट्य-शास्त्र' में इस प्रकार मिलता है :—

मध्यमस्य विनाशस्तु कर्तव्यो न कदाचन।
सर्वस्वराणां प्रवरो ह्यविनाशी तु मध्यमः।
गान्धर्वकल्पेऽभिमतः सामगैश्च महर्षिभिः॥
(ना० शा० २८।६१)

'अर्थात् गान्धर्वगान तथा सामगान इन दोनों परम्पराओं में 'मध्यम' को सब स्वरों में से प्रवर माना गया है।' भरत के इस वचन से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि ये दो परम्पराएँ भिन्न थीं। इससे यह समझा जा सकता है कि जिस प्रकार वेदों की भाँति ही वैदिक संगीत भी अति प्राचीन काल से प्रचार में था, उसी प्रकार उतने ही प्राचीन काल से लौकिक संगीत की धारा भी साथ-साथ बहती हुई चली आई होगी। वैदिक संगीत का जहाँ यज्ञ-याग से सीधा

यहाँ लौकिक संगीत का मुख्य उद्देश्य लोकरंजन रहा होगा यह धारणा आज सामान्य रूप से प्रचलित है। किन्तु यहाँ एक बात ध्यान में रखने योग्य है और वह यह कि संपूर्ण संस्कृत साहित्य की यह एक बड़ी महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि उसमें ज्ञान की सभी शाखाओं, सभी विद्याओं, सभी कलाओं और शास्त्रों का विवेचन इस ढंग से किया गया है जिससे कोई भी विषय भारतीय संस्कृति के मौलिक दृष्टिकोण से बिछुड़ नहीं पाया है। उदाहरण के लिये, चिकित्सा शास्त्र की 'आयुर्वेद' के रूप में प्रतिष्ठा, युद्ध विद्या का 'धनुर्वेद' के रूप में विवेचन इस बात का प्रमाण है कि हमारे प्राचीनों ने सब विद्याओं को एक ही केन्द्र की ओर सदा उन्मुख रखा है। वह केन्द्र बिन्दु भला कौन सा है जिसकी परिधि में पूरे ज्ञान-भण्डार का समावेश हो सका है? यह प्रश्न हमें मानव जीवन के मूल उद्देश्य के प्रति भारतीय दृष्टिकोण को समझने के लिये बाध्य करता है। यदि एक शब्द में कहना चाहें तो यही कह सकते हैं कि आत्मानुभूति या self realization ही वह केन्द्र-बिन्दु है जिसकी ओर सभी विद्याओं को उन्मुख रखा गया है। इस मौलिक उद्देश्य के प्रति दृढ़ आस्था को संस्कृत वाङ्मय में इतने पूर्णरूप से निभाया गया है कि देखकर चकित रह जाना पड़ता है। इसी एकनिष्ठा के कारण संस्कृत साहित्य में कोई भी विषय स्वतंत्र या पृथक् दिखाई नहीं देता। व्याकरण केवल भाषा के प्रयोग के नियम ही नहीं बताता वरन् वह एक पूरा दर्शन है। साहित्य शास्त्र केवल साहित्यालोचना की कसौटी ही नहीं दिखाता प्रत्युत व्याकरण आदि के दर्शन की गूढ़ता भी अपने में समेटे रहता है।

हमारे प्राचीनों का जीवन के प्रति समग्र दृष्टिकोण था, बँटी हुई Consciousness या खंडित चेतना को उन्होंने कहीं भी स्थान नहीं दिया। इसीलिये जीवन के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित ज्ञान शाखाओं को एक ही मूलवृक्ष के साथ सम्बद्ध रखा जा सका है और सभी विषयों के शास्त्र-प्रणेता 'ऋषि' या 'मुनि' की पदवी पर अधिष्ठित रहे हैं। जब सभी विद्याओं-कलाओं की हमारे यहाँ यही स्थिति रही है तब भला लौकिक संगीत केवल लोकरंजन की वस्तु कैसे रह सकता था? इसीलिये उसे भी गान्धर्ववेद के रूप में प्रतिष्ठा दी गई है। चारों वेदों के निम्नलिखित प्रकार से चार उपवेद माने गये हैं :—

तत्र वेदानामुपवेदाश्चत्वारो भवन्ति। ऋग्वेदस्यायुर्वेद उपवेदो, यजुर्वेदस्य धनुर्वेद उपवेदः, सामवेदस्य गान्धर्व वेदः, अथर्ववेदस्यार्थशास्त्रं चेत्याह भगवान् व्यासः[१]

अर्थात् वेदों के चार उपवेद हैं—ऋग्वेद का आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्ववेद और अथर्ववेद का अर्थशास्त्र।

सामवेद के उपवेद के रूप में गान्धर्ववेद की स्थापना लौकिक संगीत को भी मोक्ष-प्राप्ति के उपायों में स्थान दिलाती है और उसे लोकरंजन के उद्देश्य से कहीं ऊपर ले जाती है। वह केवल जनरंजन या मनरंजन तक ही सीमित नहीं है, किन्तु आत्मनिमज्जन का श्रेष्ठ उपाय है।

'गान्धर्व' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है कि जो स्तुति रूप या गीत रूप वाक्यों को अथवा रश्मियों को धारण करता है वह 'गान्धर्व' है और उसी की विद्या गान्धर्व विद्या या गान्धर्व उपवेद है।

आज गान्धर्ववेद किसी ग्रंथ के रूप में उपलब्ध नहीं है। उसके वर्ण्य विषय के बारे में श्री रामदास गौड़ के 'हिन्दुत्व' नामक ग्रंथ में कुछ उल्लेख मिलता है जिसे हम यहाँ ज्यों का त्यों उद्धृत कर रहे हैं :—

(१) ध्वन्यात्मक शब्दों का वर्णन, ध्वनि की उत्पत्ति, ध्वनि श्रवणफल (Sound effects ?), प्रतिध्वनि की उत्पत्ति (Harmonics ? echo ?), प्रतिध्वनिफल और उसका प्रकार।

(२) वर्णात्मक शब्दों की उत्पत्ति, वर्ण की उत्पत्ति, स्पन्दन-प्रकार (Vibrations ? undulation ?) स्वर की उत्पत्ति, स्वरभेद, व्यंजन की उत्पत्ति, व्यंजन-भेद।

---

१ आयुर्वेद के ग्रंथों में उसे अथर्ववेद का उपवेद माना गया है। इस परम्परा के अनुसार अर्थशास्त्र को ऋग्वेद का उपवेद मानना पड़ेगा।

(३) स्वर-व्यंजन का संयोग, स्वर और काल का संयोग, स्वर की आकृति (Sound figures), स्वरों के सात भेद—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद। हर एक में दो-दो कोमल और तीव्र ग्राम (?), हर एक में तीन-तीन मूर्च्छना (?) २१, इन्हीं से राग-निर्माण, रागिणी निर्माण, साङ्कर्य्य, संयोग, रागात्मक—द्वेषात्मक भाव, नवरस निरूपण, साहित्य-निरूपण, इनके संवादी, विवादी, अनुवादी, विरोधी, प्रतिरोधी, अनुरोधी, काल-सङ्गीत, क्रिया-सङ्गीत, देश-सङ्गीत, इच्छा-सङ्गीत, वस्तुमाल।

(४) भाव-उत्पत्ति का प्रकार, भाव का प्रयोग, भाव-समर्थन, भावभेद ३६ प्रकार के, इसी के अन्तर्गत काम शास्त्र भी है। काम का प्रवेश, अपदेश, आवाहन, विसर्जन, प्रसारण, आकुञ्चन, शब्द और काल का नित्य सहयोग, (Period of vibration ?), प्रकृति-संबंध, काल-विरोध से विकृति-उत्पत्ति, विकृति-शान्ति, रोग-शान्ति, (Musical therapy) मन्त्र-निर्माण, तन्त्र-निर्माण, यन्त्र-निर्माण, तत्त्व-विपर्य्यय, ज्ञान-विपर्य्यय, वस्तु-संचालन।

(५) शब्द के रंग और रूप की व्याख्या, उनके देवता, हर एक राग की शक्ति, उनके अधिष्ठातृ देवता, पारमात्मिक संबंध, भक्ति-उत्पत्ति-प्रकार, चेतावनी, षट्ऋतु वर्णन, ऋतु विपर्यय, क्रिया-विपर्यय।

(६) शब्द-संकेत, प्रकृति-वर्णन, नायक-वर्णन, नायिका-वर्णन, धर्म-संस्थापन।

(७) आकाश-संघर्षण, तत्त्व-आकर्षण (Magnetism ?), तत्त्व-विकर्षण (Repulsion ?)।

(८) तत्त्व-समावेश, क्लेश-हरण, देवता-आवाहन, विसर्जन, जगद्-व्यापार।

(९) स्वर और काल (Rhythm) का संयोग, उनका वियोग, वस्तु का संयोग-वियोग।

(१०) भगवद्विभूति, करणज्ञान, कर्ताज्ञान।

(११) स्वस्त्ययन, मङ्गलाचरण, यज्ञ की आवश्यकता, यज्ञ-गान।

(१२) अरण्यगान, ऊहगान, वैण्यगान।

(१३) नर्तन प्रकार, नर्तनावश्यकता, नाट्यशाला-निर्माण, नाट्य-प्रकार, ताल-उत्पत्ति प्रकार, ताल-भेद, तालनृत्य-संबंध, वाद्य-निरूपण, वाद्य-आवश्यकता, राग और वाद्य संबंध, उनके भेद, आकाशिक गान, मन्त्र द्वारा दिव्य गान, गन्धर्व गान, चारण साहित्य, आप्सरस नृत्य, उरग नृत्य, मयूर नृत्य, ताण्डव नृत्य, वन्शी प्रकार, आकर्षिणी, सम्मोहिनी, स्तम्भनी, ताल-निबन्ध, कंकणमाला, जयमाला, पुष्पशय्या, प्रकार और आवश्यकता, सौर गान, चान्द्र गान, तारक नृत्य, वैभवताल।

(१४) उपासना काण्ड।

ऊपर की विषय-सूची पर सरसरी दृष्टि डालने से भी यह दिखाई देता है कि कितनी गहराई में जाकर विषय प्रतिपादन किया गया है। इस सूची में से कुछ बातें भले ही हमें अस्पष्ट-सी जान पड़ें किन्तु इतना तो उससे अवश्य समझा जा सकता है कि गान्धर्ववेद में ध्वनि की उन सभी शक्तियों का विश्लेषण रहता था जिनका न केवल संगीत में बल्कि भौतिक-विज्ञान (Physics), औषधि-विज्ञान इत्यादि सभी में प्रयोग होता था। यदि किसी व्यक्ति को गान्धर्ववेद के बिखरे हुए अंश कहीं भी संप्राप्त हों तो कृपया काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के श्रीकला संगीत भारती को सूचित करें। उनका भारत पर, भारतीय संगीत पर और विश्व पर बड़ा उपकार होगा।

अति प्राचीन काल में हमारे यहाँ ध्वनि-विज्ञान की दो समकक्ष शाखाएँ मानी जाती थीं—एक संगीत शास्त्र और दूसरा भाषा शास्त्र या व्याकरण। दोनों शास्त्रों के प्रणेता बहुत बार एक ही व्यक्ति होते थे। वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, नारद, कश्यप, पाणिनि, नन्दिकेश्वर, विश्वावसु इत्यादि इसी कोटि के ग्रन्थकार थे जो संगीत शास्त्र तथा व्याकरण दोनों पर समान रूप से अधिकार रखते थे। यह तो हम कह ही चुके हैं कि व्याकरण को हमारे यहाँ केवल भाषा के नियमों का शास्त्र नहीं माना गया, अपितु वह तो ध्वनि-विज्ञान के गूढ़ तत्वों का भी प्रतिपादक है और उनके द्वारा एक दर्शनशास्त्र का भी निर्माता है। ध्वनि-विज्ञान का विवेचन संगीत से कभी अछूता नहीं रह सकता क्योंकि संगीत ध्वनि में निहित शक्तियों के प्रयोग का एक बहुत सबल क्षेत्र है। इसलिये व्याकरण और संगीत शास्त्र का संबंध हमारे यहाँ सदा से रहा है। उदाहरण के लिये नन्दिकेश्वर ने जहाँ एक ओर भाषा-दर्शन पर अधिकारपूर्वक लिखा है वहाँ दूसरी ओर संगीत पर भी लिखा है।

व्याकरण पर उनका ग्रंथ 'नन्दिकेश्वर कारिका' या 'काशिका' पतंजलि से भी पूर्व का समझा जाता है। नन्दिकेश्वर का संगीत-संबंधी ग्रंथ तो अब लुप्त हो चुका है, किन्तु उसके कुछ बिखरे हुए अंश परवर्ती ग्रंथों में यत्र-तत्र पाये जाते हैं।

ध्वनि-विज्ञान के तात्त्विक विवेचन को ही जहाँ प्रमुखता दी गई है, उस परम्परा के ग्रंथों को छोड़कर जब हम ऐसे ग्रंथों को देखते हैं जिनमें संगीत के प्रयोग पक्ष का मुख्य रूप से और विस्तार से वर्णन किया गया है तब गान्धर्व-संगीत के अन्तर्गत हमें दो धाराओं का उल्लेख मिलता है—एक मार्ग संगीत और दूसरा देशी संगीत। आज सामान्य रूप से यह धारणा प्रचार में है कि आज शास्त्रीय संगीत के नाम से जो प्रचलित है वह देशी संगीत ही है और मार्ग संगीत जो केवल देवताओं के काम का था, अब लुप्त हो चुका है। संगीत की इन दो धाराओं के बारे में जो कुछ थोड़ी बहुत सामग्री उपलब्ध है उसे बटोर कर सब पूर्वग्रह छोड़कर यहाँ हम उसी के आधार पर इस विषय को समझने का यत्न करेंगे।

भरत के 'नाट्यशास्त्र' में मार्ग देशी का कोई उल्लेख नहीं मिलता। 'नाट्यशास्त्र' के पश्चात् मतंग का 'बृहद्देशी' संगीत का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसके तो नाम में ही 'देशी' शब्द पड़ा हुआ है। अपने इस ग्रंथ के आरम्भ में ही मतंग मुनि ने लिखा है :—

देशे देशे प्रवृत्तोऽसौ ध्वनिर्देशीति संज्ञितः।
... ...
ध्वनिर्योनिः परा ज्ञेया ध्वनिः सर्वस्य कारणम्।
आक्रान्तं ध्वनिना सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥११॥
ध्वनिस्तु द्विविधः प्रोक्तो व्यक्ताव्यक्तविभागतः।
वर्णोपलम्भनाद् व्यक्तो देशीमुखमुपागतः ॥१२॥
... ...
अबलाबालगोपालैः क्षितिपालैर्निजेच्छया।
गीयते सानुरागेण स्वदेशे देशिरुच्यते ॥१३॥
निबद्धश्चानिबद्धश्च मार्गोऽयं द्विविधो मतः।
आलापादि (?) निबन्धो यः स च मार्गः प्रकीर्तितः ॥१४॥

अर्थात् भिन्न भिन्न देशों (स्थानों) में ध्वनि प्रवृत्त (फैलती) होती है इसीलिये वह 'देशी' कहलाती है। ध्वनि परा योनि (अर्थात् मूल उत्पत्ति स्थान) है, वह सबका कारण है, जगत् में स्थावर-जंगम सब कुछ ध्वनि से व्याप्त है। व्यक्त अव्यक्त भेद से ध्वनि दो प्रकार की होती है—वर्ण व्यक्त ध्वनि है और वही 'देशी' है। स्त्रियाँ, बालक, गोपाल और राजा-महाराजा अपनी-अपनी इच्छानुसार अपने-अपने देश में जिसे अनुराग सहित गाते हैं वह 'देशी' है। यह 'मार्ग' निबद्ध और अनिबद्ध भेद से दो प्रकार का है। आलाप (?) आदि निबंध (?) ही 'मार्ग' कहलाता है।

ऊपर के उद्धरण से नीचे लिखी बातें समझ में आती हैं :—

(१) मतंग ने संगीतोपयोगी ध्वनि को 'देशी' कहा है और साथ ही 'देशी' ध्वनि से रचित जन-मन-रञ्जक गीत को भी 'देशी' कहा है। इस दूसरे अर्थ में 'देशी' का प्रयोग यह स्पष्ट करता है कि देश-भेद से जो सूक्ष्म रुचि-भेद संगीत में होता है उसे मतंग ने ध्यान में अवश्य रखा होगा।

(२) 'मार्ग' से मतंग को संभवतः नियमबद्ध संगीत अभिप्रेत है।

(३) मतंगोक्त 'मार्ग' से ही संभवतः बाद में 'मार्ग' संगीत देशी संगीत से भिन्न धारा के रूप में माना जाने लगा होगा। किन्तु मतंग के वचनों से ऐसा प्रतीत नहीं होता कि उन्हें 'देशी संगीत' में और 'मार्ग' में कोई तात्त्विक भेद अभिप्रेत रहा होगा।

'संगीत रत्नाकर' के आरम्भ में ही इस विषय पर निम्नलिखित श्लोक मिलते हैं :—

गीतं वाद्यं तथा नृत्तं त्रयं संगीतमुच्यते।
मार्गो देशीति तद्द्वेधा तत्र मार्गः स उच्यते॥
यो मार्गितो विरिञ्च्याद्यैः प्रयुक्तो भरतादिभिः॥
देवस्य पुरतः शंभोर्नियताभ्युदयप्रदः।
देशे देशे जनानां यद्रुच्या हृदयरञ्जकम्॥
गीतं च वादनं नृत्तं तद्देशीत्यभिधीयते।

(सं० र० १।१।२१-४)

अर्थात्—गीत, वाद्य और नृत्त ये तीनों संगीत कहलाते हैं। 'मार्ग' और 'देशी' भेद से संगीत दो प्रकार का है। 'मार्ग' उसे कहते हैं जिसे ब्रह्मादि (देवताओं) ने खोज निकाला है और भरतादि (मुनियों) ने भगवान् शंकर के सम्मुख प्रयुक्त किया है। यह संगीत 'नियत' रूप से अभ्युदय (कल्याण) देने वाला होता है। जो गीत, वादन और नृत्त देश-देश में जनरुचि के अनुसार लोक का हृदयरञ्जक होता है, वह 'देशी' कहलाता है।

'मार्ग' और 'देशी' की इस व्याख्या से यह स्पष्ट है कि 'मार्ग' उसे कहा गया है (१) जिसे देवताओं और मुनियों द्वारा 'शास्त्र' का रूप मिल चुका है अथवा (२) जो देवपूजा में उपयोग में आता है। पहिला अर्थ लें तो यह समझना होगा कि देशी संगीत की तुलना में 'मार्ग' संगीत कहीं अधिक नियमबद्ध है। यदि दूसरा अर्थ लें तो यह समझना होगा कि 'मार्ग' संगीत में विशुद्ध धार्मिक उद्देश्य अभिप्रेत था और लोकरञ्जन के लिये देशी संगीत का उपयोग होता था। इन दोनों अर्थों में कहीं भी यह बात नहीं मिलती कि गान्धर्व संगीत की इन दो धाराओं में कोई तात्विक अन्तर है या विरोध है। किसी भी कला का शास्त्र-निर्माण या नियम-विधान सदा लक्ष्य या प्रचार के आधार पर ही हुआ करता है। इस दृष्टि से देशी संगीत ही 'मार्ग' का मूल आधार होना चाहिए, दोनों में किसी तात्विक विरोध को तो कहीं भी स्थान नहीं जान पड़ता। यदि 'मार्ग' संगीत को देव-पूजा के ही उपयोगी समझें तब भी 'देशी' संगीत से उसका उद्देश्य भिन्न होते हुए भी उसके स्थूल स्वरूप में देशी संगीत से कोई मार्मिक भिन्नता नहीं हो सकती। आज यह जो धारणा प्रचलित है कि शार्ङ्गदेव के समय से ही 'मार्ग' संगीत का लोप होना आरम्भ हो गया था जो बाद में चल कर पूरा हो गया और अब केवल देशी संगीत ही प्रचार में रह गया है[1], उसके लिये कोई प्रमाण शार्ङ्गदेव के ऊपर के वचनों में नहीं मिलता। 'संगीत रत्नाकर' में और भी दो-तीन स्थानों पर 'मार्ग' 'देशी' के बारे में उल्लेख मिलता है। उस का यहाँ उद्धरण उपयोगी होगा। यथा :-

'संगीत रत्नाकर' के राग प्रकरण में 'ग्रामराग' और 'देशीराग' इस प्रकार दो मुख्य भेदों के अन्तर्गत रागों का वर्णन किया गया है। 'ग्रामराग' को ही 'मार्गराग' भी कहा गया है। 'देशीराग' के लिये टीकाकारों ने यही लिखा है कि *इन में नियमों का बन्धन 'ग्रामराग' या 'मार्ग राग' की भाँति उतना कड़ा नहीं होता। यथा :—*

देशीत्वं नाम कामचारप्रवर्तितत्वम्।
तदत्र मार्गरागेषु नियमो यः पुरोदितः।
स देशीरागभाषादावन्यथापि क्वचिद्भवेत्॥

(सं० र० २।२।२ पर कल्लिनाथ की टीका)

अर्थात् 'देशी' में यथेच्छाचार या 'कामचार' रहता है। 'मार्गरागों' के लिये जो नियम बताए गए हैं, देशी रागों में उन नियमों का कभी-कभी भंग भी हो सकता है।

---

१ हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तकमालिका भाग चौथा—पृ० ११।

रागों की ही भाँति तालों में भी शार्ङ्गदेव ने 'मार्गताल' और 'देशीताल' यों दो भेद बनाए हैं और यहाँ भी 'कामचार' को ही 'देशी' तालों का लक्षण बताया है जो उन्हें मार्ग-तालों से पृथक् करता है। इसके अलावा और भी दो-तीन स्थानों पर 'रत्नाकर' में 'मार्ग' और 'देशी' का उल्लेख मिला है। यथा:—

अथ प्रकीर्णकं कर्णरसायनमनाकुलम्।
देशीमार्गाश्रयं वक्ति शार्ङ्गदेवो विदांवरः॥

(सं० र० ३।१)

अर्थात्—अब विद्वद्वर शार्ङ्गदेव 'देशी' और 'मार्ग' दोनों के आधार पर प्रकीर्णक (बिखरे हुए फुटकर विषय) प्रकरण को कहते हैं।

यहाँ 'देशी' और 'मार्ग' दोनों का एक साथ उल्लेख करने का यही तात्पर्य है कि प्रकीर्णक अध्याय में जो बातें कही जाने वाली हैं वे इन दोनों को समान रूप से लागू होती हैं। इसी अध्याय में कुछ आगे चल कर 'गान्धर्व' और 'स्वरादि' का लक्षण करते हुए कहा है—

मार्गं देशीं च यो वेत्ति स गान्धर्वोऽभिधीयते॥१२॥
यो वेत्ति केवलं मार्गं स्वरादिः स निगद्यते।

अर्थात्—जो 'मार्ग' और 'देशी' दोनों को जानता है वह 'गान्धर्व' है और जो केवल 'मार्ग' को जानता है वह 'स्वरादि' कहलाता है[1]। वाग्गेयकार के लक्षणों में भी देशी रागों का ज्ञान यह लक्षण रखा गया है। इससे स्पष्ट है कि गान्धर्व संगीत का समग्र रूप देशी और मार्ग इन दोनों से ही बनता है।

'संगीत रत्नाकर' के प्रबन्धाध्याय में 'मार्ग' और 'देशी' के लिये कुछ भिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया है। यथा—

रञ्जकः स्वरसंदर्भो गीतमित्यभिधीयते। गान्धर्वं गानमित्यस्य भेदद्वयमुदीरितम्॥१॥
अनादिसंप्रदायं यद्गान्धर्वैः संप्रयुज्यते। नियतं श्रेयसो हेतुस्तद्गान्धर्वं जगुर्बुधाः॥२॥
यत्तु वाग्गेयकारेण रचितं लक्षणान्वितम्। देशीरागादिषु प्रोक्तं तद्गानं जनरञ्जनम्॥३॥

अर्थात्—रंजन करने वाले स्वर-सन्दर्भ को 'गीत' कहते हैं। इसके दो भेद हैं—'गान्धर्व' तो उसे कहते हैं जो अनादि काल से परम्परा द्वारा चला आया है, गान्धर्वों द्वारा जो प्रयोग में लाया जाता है और जो नियत रूप से कल्याण करनेवाला होता है। 'गान' उसे कहते हैं जिसकी रचना वाग्गेयकार ने की हो और देशी रागादि में जो बाँधा गया हो।

ऊपर के श्लोकों में 'गान्धर्व' से कुछ ऐसा समझ में आता है कि जो रचनाएँ गुरुपरम्परा द्वारा दीर्घकाल से चली आई हों उन्हें 'गान्धर्व' के अन्तर्गत रखा गया है और जो किसी आधुनिक 'वाग्गेयकार' द्वारा बनाई गई हों उन्हें 'गान' कहा गया है। इसकी टीका में कल्लिनाथ ने कहा है कि 'गान्धर्व' को 'मार्ग' समझ सकते हैं और 'गान' को 'देशी' कह सकते हैं। ऊपर अब तक हमने 'मार्ग' और 'देशी' का जो अर्थ समझा है और 'गान्धर्व' को इन दोनों का जो समग्र रूप माना है, उससे कुछ भिन्न बात यहाँ दिखाई देती है। किन्तु ऊपरी दृष्टि छोड़ कर यदि गहराई में जायँ तो यह ध्यान में आयगा कि 'मार्ग' संगीत में नियमों की कठोरता और परम्परा का आग्रह तथा 'देशी' संगीत में इन दोनों बातों की शिथिलता—ये दो लक्षण यहाँ भी विद्यमान हैं। हाँ, शब्द-भेद अवश्य है। 'गान्धर्व' को यहाँ 'मार्ग' के अर्थ में संकुचित कर दिया गया है और 'गान' को 'देशी' का पर्याय बनाने का यत्न किया गया है।

---

१ प्रकीर्णक अध्याय के आरम्भ में ही वाग्गेयकार और उसके उत्तम, मध्यम, अधम भेद, 'गान्धर्व' और 'स्वरादि' के लक्षण बताये गये हैं। इनके द्वारा संगीतकारों की श्रेणियाँ दिखाना ग्रंथकार को अभिप्रेत है। प्रकीर्णक अध्याय के मुख्य विषयों का 'संगीताञ्जलि' के अगले यानी छठे भाग में समावेश किया जायगा।

ऊपर के उद्धरणों से हमने 'मार्ग' और 'देशी' इन दोनों को गान्धर्व संगीत की धारा के अन्तर्गत देखा और यह भी समझा कि दोनों में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है, बल्कि यह कहा जा सकता है कि ग्राम्य संगीत के या लोक-संगीत के लक्ष्य के आधार पर ही शास्त्रीय नियमों के निर्माण द्वारा जिसकी रचना की गई वह नियमबद्ध संगीत 'मार्ग' है और जिसमें नियमों की उतनी कड़ाई नहीं रहती वह 'देशी' है। इसलिये यही निष्कर्ष निकलता है कि आज जो हमारा शास्त्रीय संगीत है, वही नियमबद्ध होने से 'मार्ग' है और देश-भेद से रुचि-भेद के अनुसार विभिन्न प्रान्तों और प्रदेशों में जो लोक-संगीत प्रचलित है, वह देशी संगीत है।

ऊपर हम जिस दृष्टिकोण से विचार करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि स्वाभाविक विकास क्रम से 'देशी' संगीत यानी लोक संगीत के आधार पर 'मार्ग' संगीत अर्थात् शास्त्रीय नियमबद्ध संगीत की रचना हुई है, उससे कुछ भिन्न दृष्टिकोण हमें नान्यदेव[1] के अप्रकाशित ग्रंथ 'भरत भाष्य' में मिलता है। वे कहते हैं—

सामवेदात्समुद्धृत्य यद्गीतं ऋषिभिः पुरा।
सद्भिराचरितो मार्गस्तेन मार्गोऽभिधीयते॥
संस्कृतात्प्राकृतं तद्वत् प्राकृताद्देशिका यथा।
तद्वन्मार्गात् स्वबुद्ध्यान्यैर्वाग्देशीयं समुद्धृता॥

(भरत भाष्य ११।२)

अर्थात् ऋषियों ने जिसे सामवेद से उद्धृत करके प्रयोग में लाया है और सत्पुरुषों ने जिस मार्ग का अनुसरण किया है, वह 'मार्ग' (संगीत) कहलाता है। जैसे (भाषाओं में), संस्कृत से प्राकृत और प्राकृत से अन्य देशी भाषाएँ निकली हैं वैसे ही लोगों ने अपनी बुद्धि अनुसार 'मार्ग संगीत' से इस 'देशी वाक्' (संगीत) को निकाला है।

'देशी संगीत' के आधार पर 'मार्ग संगीत' की रचना मानने में हमारा दृष्टिकोण यही है कि किसी भी वस्तु का परिष्कृत या परिमार्जित रूप उसके असंस्कृत या स्थूल अविकसित रूप से ही विकास पाता है, किन्तु नान्यदेव के ऊपर के उद्धरण में यह दृष्टिकोण दिखाई देता है कि किसी वस्तु के परिष्कृत या संस्कृत रूप के आधार पर उसका अपभ्रंश रूप खड़ा हुआ करता है। इसी दृष्टि से उन्होंने संस्कृत से प्राकृत और प्राकृत से अन्य देशी भाषाओं के निकलने की बात भी दृष्टान्त के रूप में कही है। यों तो भाषाओं के बारे में भी विचारकों का यही मत है कि प्रचलित लोकभाषा के आधार पर ही किसी मंजी हुई साहित्यिक भाषा का विकास होता है। संस्कृत भाषा का तो नाम ही यह स्पष्ट करता है कि यह संस्कार या परिमार्जन से बनी है और जो प्रकृति से उत्पन्न है, वह प्राकृत कहलाती है। इस दृष्टि से नान्यदेव का कथन कुछ ऐसा लगता है मानों उसमें स्वाभाविक विकास क्रम को उलट दिया गया हो; किन्तु कुछ भिन्न प्रकार से विचार करने पर नान्यदेव के दृष्टिकोण में सत्यांश अवश्य दिखाई देगा। हम जानते हैं कि जहाँ एक ओर हमारा ऊपर बताया हुआ स्वाभाविक विकास क्रम सब बातों को लागू होता है, वहाँ साथ ही यह भी सत्य है कि एक बार किसी वस्तु का परिमार्जित रूप बन चुकने के बाद उसका अपने मूल स्रोत यानी असंस्कृत रूप पर थोड़ा बहुत प्रभाव अवश्य ही पड़ा करता है। उदाहरण के लिये—जब किसी साहित्यिक भाषा का विकास हो चुकता है तब उसका बोलचाल की भाषा पर भी प्रभाव पड़ता ही है। इसलिये आरम्भिक विकास-क्रम की दृष्टि छोड़ कर यदि हम नान्यदेव के कथन पर विचार करें तो यह ध्यान में आयेगा कि बहुत बार शास्त्रीय संगीत से प्रभावित होकर ऐसी शैलियों का विकास हुआ करता है जिनमें शास्त्रीय संगीत का पुट रहने पर भी जो विशुद्ध शास्त्रीय नहीं होती यानी जिनमें भिन्न भिन्न प्रदेशों या प्रान्तों के रुचि-भेद, संस्कार-भेद आदि का प्रभाव प्रचुर मात्रा में रहता है। शास्त्रीय नियमों की शिथिलता के कारण ये शैलियाँ लोक संगीत के निकट आ जाती हैं और 'देशी संगीत' में गिनी जा सकती हैं। उदाहरण के लिये—ठुमरी अंग के गान को ले लें। इस पर शास्त्रीय संगीत का प्रभाव स्पष्ट है। बल्कि यों कहना चाहिये कि यह शास्त्रीय संगीत की ही एक शाखा है। किन्तु इसमें देश के भिन्न भिन्न—

---

[1] नान्यदेव और उनके ग्रंथ का परिचय इसी प्रकरण में आगे चलकर दिया जायगा।

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानथर्वणादपि ॥
... ...
... ...
... ...
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्।
उत्तमाधममध्यानां नराणां कर्मसंश्रयम् ॥
हितोपदेशजननं नाट्यमेतद्भविष्यति।
एतद् रसेषु भावेषु सर्वकर्मक्रियासु च ॥
सर्वोपदेशजननं नाट्यमेतद्भविष्यति।
दुःखार्त्तानां श्रमार्त्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनाम् ॥
विश्रामजननं लोके नाट्यमेतद्भविष्यति।
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम् ॥
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद्भविष्यति।
न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ॥
न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।
सर्वशास्त्राणि शिल्पानि कर्माणि विविधानि च ॥
अस्मिन्नाट्ये समेतानि तस्मादेतन्मया कृतम्।
(ना० शा० ११४,१५,१७,१०९-११४)

अर्थात् यह नाट्य धर्म, अर्थ और यश से युक्त है। इसमें उपदेश भी है और लोक के सब कर्मों का संग्रह है। 'नाट्य' नामक इस वेद में सब शास्त्रों का अर्थ है, और सब शिल्पों का प्रदर्शन है। 'इतिहास' का भी इस में समन्वय है। ऋग्वेद से 'पाठ्य', सामवेद से 'गीत', यजुर्वेद से 'अभिनय' और अथर्ववेद से 'रस' का ग्रहण करके इस नाट्यवेद[1] की रचना की गई है। यह नाट्य लोकवृत्त यानी लोकजीवन का अनुकरण है। इसमें उत्तम, मध्यम और अधम मनुष्यों के कर्मों का वर्णन रहेगा और यह सभी को हितोपदेश देने वाला होगा। रसों में, भावों में और सब धर्मों में यह सभी के लिये उपदेश देने वाला होगा। दुःख से, श्रम से और शोक से आर्त्त व्यक्तियों और तपस्वियों को यह नाट्य विश्राम देने वाला होगा। धर्म, यश, आयुष्य और हित को देने वाला होगा, बुद्धि को बढ़ाने वाला होगा और लोक उपदेशकारी होगा। कोई ज्ञान, कोई शिल्प, विद्या, कला, योग या कर्म ऐसा नहीं है जो इस नाट्य में दिखाई न दे। सब शास्त्र, शिल्प और कर्म इस नाट्य में समाविष्ट हैं; इसीलिये मैंने इसे बनाया है।

---

१. हम पहिले देख चुके हैं कि गान्धर्ववेद सामवेद का उपवेद है, किन्तु नाट्यवेद को किसी वेद का उपवेद न कह कर पंचम वेद ही कहा गया है। 'गान्धर्ववेद' की अपेक्षा 'नाट्य' का क्षेत्र अधिक व्यापक है जिसमें गान्धर्व भी समाविष्ट हो जाता है। नाट्यशास्त्र (३१ वां अध्याय) में कहा है कि नारद ने जैसा 'गान्धर्व' बताया है, वैसा ही यहाँ कहा गया है।

ऊपर के उद्धरण से यह स्पष्ट है कि नाट्य को समूचे लोकजीवन का अनुकरण (Imitation) मानने के कारण उसमें जीवन के सभी अंगों या पहलुओं से संबंधित विद्याओं और कलाओं, शास्त्र और शिल्प का समावेश है। साथ ही नाट्य को केवल लोकरंजन का उपाय नहीं, बल्कि लोकोपदेश का बहुत सबल साधन माना गया है। धर्मशास्त्रों में तो सीधे विधि-निषेध (क्या कर्तव्य है और क्या नहीं) द्वारा उपदेश दिया जाता है, परन्तु नाट्य मनोरंजन के साथ साथ परोक्ष रूप से हितोपदेश देता है। इसीलिये श्रेय और प्रेय (कल्याण, और मन को प्रिय लगने वाली बात) का नाट्य में अद्भुत समन्वय मिलता है अर्थात् उसमें हित की बात भी इस ढंग से सामने लाई जाती है कि वह सीधी आज्ञा के रूप में नहीं, बल्कि किसी प्रिय व्यक्ति द्वारा दी गई सलाह के रूप में हृदय को स्पर्श करती है और प्रिय लगती है। संगीत को अन्य कलाओं और शिल्पों की भाँति इस 'नाट्य' शब्द के अन्तर्गत स्थान दिया गया है और इसीलिये प्राचीनों की दृष्टि में उसका उद्देश्य भी नाट्य के ऊपर लिखे उद्देश्य से भिन्न नहीं था।

हम आगे चलकर देखेंगे कि भरत के नाट्यशास्त्र के बाद संगीत के सुसम्बद्ध शास्त्रीय विवेचन का विस्तार होता गया और इसलिये ऐसे ग्रंथों की रचना होने लगी जिनका मुख्य विषय संगीत था और नाट्य को उनमें गौण स्थान मिला था। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि संगीत का नाट्य से स्वतंत्र रूप में विकास होता रहा और शार्ङ्गदेव के बाद तो प्रायः नाट्य से संगीत का विच्छेद-सा हो गया; फिर भी शार्ङ्गदेव की दी हुई 'संगीत' की नीचे लिखी व्याख्या सैद्धान्तिक रूप से सभी को मान्य रही, भले ही इस की तह में निहित तात्त्विक दृष्टिकोण किसी को विशेष रूप से ध्यान में रहा हो या न रहा हो।

गीतं वाद्यं तथा नृत्तं त्रयंसंगीतमुच्यते।
(सं० र० १।१।२१)

अर्थात् गीत, वाद्य और नृत्त—ये तीनों संगीत कहलाते हैं[१]। 'संगीत' की यह परिभाषा विद्यार्थी कई बार सुन चुके होंगे। इस परिभाषा में जिस 'नृत्य' का समावेश किया गया है उसे थोड़ा-सा समझ लेना यहाँ अस्थानीय न होगा। 'नृत्त' के साथ-साथ 'नृत्य' और 'नाट्य' का भी संगीत के ग्रंथों में नाम लिया गया है। इसलिये तीनों में से किसी एक को समझने के लिये शेष दो को भी साथ-साथ समझना अनिवार्य हो जाता है। शार्ङ्गदेव ने इन तीनों के लिये इस प्रकार कहा है—

नाट्यशब्दो रसे मुख्यो रसाभिव्यक्तिकारणम्।
चतुर्धाभिनयोपेतं........................॥
(सं० र० ७।१।१७)

---

१. नारद के 'संगीत मकरन्द' में भी इसी प्रकार कहा है :—

गीतं वाद्यं च नृत्यं च त्रयं संगीतमुच्यते।
(सं० म० १।१।३)

मतंग की 'बृहद्देशी' में भी आरम्भ में ही नाद की महिमा बताते समय 'नृत्त' का नाम लिया गया है :—

न नादेन विना गीतं न नादेन विना स्वराः।
न नादेन विना नृत्तं तस्मान्नादात्मकं जगत्॥
(बृह० १६, १७)

यहाँ 'संगीत' की परिभाषा के रूप में तो 'नृत्त' का समावेश नहीं किया गया है, किन्तु फिर भी 'नाद' की महिमा बताते समय 'गीत' के साथ साथ उसे भी स्थान दिया गया है।

आंगिकाभिनयैरेव भावानेव व्यनक्ति यत्।
तन्नृत्यं··························· ··· ॥
(वही, ७।१।२६)

गात्रविक्षेपमात्रं तु सर्वाभिनयवर्जितम्।
आंगिकोक्तप्रकारेण नृत्तं नृत्तविदो विदुः॥
(वही, ७।१।२७)

अर्थात् 'नाट्य' शब्द का मुख्य अर्थ रस है। वह रसाभिव्यक्ति का कारण है और चार प्रकार के अभिनय[1] से युक्त है·········जो केवल आङ्गिक अभिनय द्वारा भावों को व्यक्त करता है वह नृत्य है। ·········जिसमें केवल शारीरिक कूद फाँद रहती है और किसी प्रकार का अभिनय नहीं रहता वह नृत्त कहलाता है[2] (इसमें हाथ पैर आदि अंगों की चेष्टाएँ तो आंगिक अभिनय जैसी ही रहती है, किन्तु किसी भाव की अभिव्यक्ति न होने के कारण वे चेष्टाएँ अभिनय की कोटि में नहीं आती। अस्तु। यहाँ ध्यान देने की बात यही है कि 'संगीत' के अन्तर्गत 'नृत्य' या 'नृत्त' का समावेश कर *के किसी न किसी रूप में अभिनय को स्थान दिया गया है और अभिनय द्वारा संगीत को 'नाट्य' से संबद्ध रखा गया है।*

प्रसंगवश यहाँ हम ने नाट्य के साथ-साथ 'नृत्त' और 'नृत्य' की थोड़ी-सी चर्चा कर ली। यहाँ हमारा मुख्य विषय तो संगीत-शास्त्र का इतिहास ही है। उसी के अन्तर्गत भूमिका के रूप में हम ने संगीतशास्त्र और साहित्यशास्त्र (नाट्य शास्त्र) का संबन्ध देखने का थोड़ा सा यत्न किया क्योंकि नाट्यशास्त्र समान रूप से साहित्यशास्त्र और संगीत शास्त्र का मूल स्रोत है।

इतनी सी प्रारम्भिक चर्चा के बाद अब हम अपने प्रस्तुत विषय पर आ जाएँ। यहाँ भी हमें 'नाट्यशास्त्र' को ही सर्वप्रथम ऐतिहासिक दृष्टि से देखना होगा। उसके बाद 'संगीत रत्नाकर' (तेरहवीं सदी ई०) के पूर्व तक का काल अन्धकार के आवरण में पड़ा हुआ है, क्योंकि उस काल के अधिकांश ग्रन्थ लुप्त हो चुके हैं। आज हमारे पास उन ग्रन्थों या उनके रचयिताओं के नाम जानने का केवल एक ही साधन है और वह है—जो भी ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनमें आये हुए नामोल्लेख। इन नामोल्लेखों से अथवा कहीं २ पाए जाने वाले उद्धरणों से ही हम लुप्त ग्रन्थों और उनके रचयिताओं के बारे में थोड़ी बहुत जानकारी पा सकते हैं। यह जानकारी प्रायः ग्रन्थों और ग्रन्थकारों के नामों तक ही सीमित रहती है। कई बार तो ये नामोल्लेख भी सीधे रूप से हमारे सामने नहीं आते यानी ऐसा देखने में आता है कि कोई उपलब्ध ग्रन्थ किसी (अधुना) उपलब्ध या अनुपलब्ध ग्रन्थ का आधार लेकर अन्य प्राचीन ग्रन्थों या ग्रन्थकारों का नाम लेता है या उनका एकाध उद्धरण देता है। इससे स्पष्ट होता है कि उद्धरण देने वाले ग्रन्थकारों को स्वयं भी उस युग में कई ग्रन्थ मूल रूप में उपलब्ध नहीं थे। ऐसे परोक्ष उद्धरणों के आधार पर इतिहास की टूटी हुई शृंखलाएं जोड़ने का प्रयास कितना कठिन होगा, यह समझा जा सकता है। इसीलिये किसी सुसंबद्ध इतिहास की आशा भी नहीं को जा सकती। फिर भी नाम-परिचय का महत्त्व स्वीकार करते हुए हम नीचे थोड़ा सा ऐतिहासिक विवरण दे रहे हैं।

१—चार प्रकार के अभिनय ये है—आंगिक (जिसमें शरीर के विभिन्न अंगों की चेष्टायें हो), वाचिक (वाणी से संबन्धित, जिसमें पाठ्य और संगीत दोनों आ जाते हैं), आहार्य (नट के वस्त्र आभूषण आदि), और सात्विक (अश्रु, पुलक, कम्प आदि सात्विक विकार)।

२—धनंजय के दशरूपक में कहा है :—

अवस्थानुकृतिर्नाट्यं··················।
···भावाश्रयं नृत्यं नृत्तं ताललयाश्रयम्॥ (१-७,९),

'संगीत रत्नाकर' (तेरहवीं सदी ई०) के बाद चौदहवीं सदी से मध्ययुग का काल मानें तो शाङ्गदेव और उनके प्रायः समसामयिक ग्रन्थकारों को प्राचीन और मध्ययुग के सन्धिकाल में रख सकते हैं। यहाँ सुविधा की दृष्टि से हम शाङ्गदेव के पूर्व तक के पूरे काल को स्थूल रूप से 'प्राचीन' मान कर चलेंगे। यों तो इतने लम्बे काल को एक साथ लेना उचित नहीं जान पड़ता, किन्तु उस काल के अधिकांश ग्रन्थ लुप्त होने के कारण सूक्ष्म काल-विभाजन करने से कोई विशेष प्रयोजन सिद्ध होना संभव नहीं। इसलिये हम इस पूरे काल को एक साथ ले रहे हैं। शाङ्गदेव और उसके प्रायः समसामयिक कुछेक ग्रन्थकारों को सन्धिकाल में रख कर पन्द्रहवीं सदी से अठारहवीं सदी तक के काल को मध्ययुग में लेते हुए उन्नीसवीं शताब्दी से आधुनिक युग का प्रारम्भ करेंगे। इस प्रकार स्थूल काल-विभाजन यह होगा—

(१) प्राचीन युग ('संगीत रत्नाकर' यानी तेरहवीं सदी से पूर्व तक)

(२) सन्धिकाल (तेरहवीं चौदहवीं सदी)

(३) मध्ययुग (पंद्रहवी से अठारहवीं सदी तक)

(४) आधुनिक (उन्नीसवीं शताब्दी से आरम्भ)

अब इसी क्रम से हम ब्यौरेवार ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करते हैं।

१. प्राचीन युग[१]

इस युग के अधिकांश ग्रन्थ अप्राप्य हैं। कई एक ऐसे ग्रन्थकारों के नाम-मात्र सामने आते हैं जिनके ग्रन्थों के नाम तक ज्ञात नहीं या जिनके ग्रन्थों के बारे में जानकारी केवल नामों तक ही सीमित है। ऐसी अवस्था में इन ग्रन्थकारों के पूर्वापर काल-क्रम का निर्णय करना तो असंभव-सा है। दूसरी ओर यह भी ध्यान में रखने योग्य है कि इस युग के ग्रन्थकारों में से कुछेक नाम तो पौराणिक हैं यानी पौराणिक परंपरा में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है, किन्तु वे नाम वास्तव में ऐतिहासिक व्यक्तियों के हैं या नहीं, यह कहना बहुत कठिन है। कुछ नाम भरत के नाट्यशास्त्र के टीकाकारों के रूप में नाट्य से संबन्धित हैं। इन्होंने 'नाट्य' के अंग के रूप में संगीत की चर्चा की है। कुछ ऐसे फुटकर नाम हैं जिन का नाट्य और संगीत से मिला-जुला-सा संबन्ध है अथवा इन दोनों में से किसी एक के साथ संबन्ध है। इन में पौराणिक और ऐतिहासिक दोनों प्रकार के नाम हैं। इनमें से बहुत ही कम ग्रन्थकारों के ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इन सब बातों को ध्यान में लेते हुए हमने इस युग के ग्रन्थकारों को नीचे लिखी श्रेणियों में रखना उचित समझा है—

१. भरत का नाट्यशास्त्र और उस के टीकाकार।

२. नाट्य तथा संगीत-साहित्य के फुटकर नाम—

(क) जिनके ग्रन्थ पूर्ण या आंशिक रूप से उपलब्ध हैं, या

(ख) जिनके ग्रन्थों के नाममात्र ही ज्ञात हैं अथवा उतना भी ज्ञात नहीं।

१. भरत का नाट्यशास्त्र और उसके टीकाकार

भरत के नाट्यशास्त्र की विषयवस्तु के बारे में हम ऊपर कुछ सामान्य (General) चर्चा कर चुके हैं। यहाँ तो केवल काल-निर्णय की दृष्टि से हमें थोड़ा सा विचार करना है। इस विषय की विस्तृत चर्चा करने का तो यहाँ अवकाश बिल्कुल नहीं है। विद्यार्थियों को कुछ भिन्न दृष्टिकोणों का परिचय मात्र दिया जा सकता है।

---

१. इस प्रकरण में महामहोपाध्याय डा० पी० वी० काणे के *History of Sanskrit Poetics* से प्राप्त सहायता, जो कुछ References तक ही सीमित है, उस का हम साभार उल्लेख करते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों ने और कई भारतीय विद्वानों ने भरत के नाट्यशास्त्र का काल २०० ई० पू० (B.C.) से ४०० ई० (A.D.) के बीच में माना है। पाश्चात्य विद्वानों का तो बहुधा यही सिद्ध करने का यत्न रहा कि यूनानी (ग्रीक) नाट्य के विकास के बाद भारत में नाट्य का विकास हुआ था, अतः नाट्य का शास्त्र २०० ई० पू० से प्राचीन नहीं हो सकता। अब तो बहुत से अकाट्य प्रमाणों द्वारा, भारतीय नाट्य के विकास के बारे में यह मत निराधार सिद्ध हो चुका है। किन्तु आज भी भारतीय विद्वान् कुछ भिन्न कारण से इस ग्रन्थ को ऊपर लिखे काल (२०० ई पू० से ४०० ई० के बीच में) की ही रचना मानते हैं। उनकी विचारधारा संक्षेप में निम्नोक्त है।

विद्वानों का कहना है कि नाट्यशास्त्र का आज जो रूप उपलब्ध है, वह किसी एक काल या व्यक्ति की रचना नहीं है। उसके वर्तमान रूप में हमें तीन प्रकार के अंश मिलते हैं। यथा :—

(१) अनुष्टुप् या आर्या श्लोक।

(२) भाष्य के ढंग के गद्य-खण्ड, या सूत्र-शैली के संक्षिप्त वाक्य (गद्य) और

(३) कारिका।

नाट्यशास्त्र में अनेक स्थानों पर हम देखते हैं कि किसी विषय को भाष्य के ढंग से गद्य में समझाने के बाद उसी विषय से संबन्धित श्लोक देते समय कहा गया है कि इस बारे में 'अनुवंश्य' श्लोक भी मिलते हैं। 'अनुवंश्य' का अर्थ यही हो सकता है कि जो वंश-परम्परा द्वारा या गुरु-शिष्य-परम्परा द्वारा चला आया हो। इससे स्पष्ट है कि वर्तमान नाट्यशास्त्र के रचनाकार को परम्परा द्वारा ऐसी बहुत सी सामग्री श्लोकों के रूप में प्राप्त थी जिसे नाट्यशास्त्र में जोड़ना सरल था। इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि वर्तमान नाट्यशास्त्र के सभी श्लोक इसी प्रकार परम्पराप्राप्त रहे होंगे। अधिकांश श्लोक (कारिका) तो नाट्यशास्त्र के वर्तमान रूप के लेखक के ही हैं जिनमें गद्य-खण्डों में कही हुई बात को ही सरलता के निमित्त दोहराया गया है। 'भरत' इस पौराणिक नाम का अर्थ Actor या अभिनय करनेवाला—ऐसा था, यह अधिकांश विद्वानों की मान्यता है। इसलिये 'भरत' नाम नाट्य के शास्त्रकारों के साथ जुड़ा हुआ है, यह भी माना जाता है। जैसे महाभारत और पुराणों के रचनाकार का नाम 'व्यास' किसी एक व्यक्ति का नाम नहीं हो सकता, बल्कि उसे एक विशेष प्रकार के लेखकों का प्रतीक समझना चाहिए, कुछ वैसी ही बात 'भरत' के लिये भी कही जाती है। याज्ञवल्क्यस्मृति में 'भरत' का Actor या नट के लिये प्रयोग हुआ है[1]। शारदातनयके 'भाव प्रकाश' में ऐसी कथा आई है कि शिव ने नन्दिकेश्वर को आज्ञा दी कि वे ब्रह्मा को नाट्यवेद सिखा दें। तभी ब्रह्मा के सामने पाँच शिष्यों सहित एक मुनि प्रकट हुए और पितामह (ब्रह्मा) ने उन सबको 'भरत' नाम देकर 'नाट्यवेद' सिखाया और यह वर दिया कि उन्हीं के नाम से नाट्यवेद जगत् में प्रसिद्ध होगा[2]।

नाट्यशास्त्र के वर्तमान रूप में मिश्र सामग्री की उपलब्धि और 'भरत' नाम की पौराणिकता—इन दो बातों के आधार पर आज विद्वान् लोग यह मानते हैं कि नाट्यशास्त्र किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं हैं और साथ ही उन का यह भी कहना है कि इस ग्रन्थ का वर्तमान रूप लगभग २०० ई० पू० से और ४०० ई० के काल के बीच में अस्तित्व में आया होगा। इस विचारधारा का बहुत ही संक्षिप्त उल्लेख हमने ऊपर किया। अब इस पर अपनी दृष्टि से थोड़ा सा विचार कर के हम नाट्यशास्त्र के टीकाकारों को ले लेंगे।

वर्तमान नाट्यशास्त्र की रचना होने से पूर्व नाट्य-सम्बन्धी कुछ सामग्री अवश्य रही होगी जो परम्परा द्वारा, नाट्यशास्त्र के प्रणेता को मिली होगी इस में सन्देह नहीं। किन्तु इस से यह निष्कर्ष निकालना कि वर्तमान नाट्यशास्त्र

---

१. यथा हि भरतो वर्णैर्वर्णयत्यात्मनस्तनुम्।
नानारूपाणि कुर्वाणस्तथात्मा कर्मजास्तनूः॥

२. भावप्रकाश दशम अधिकार द्रष्टव्य।

किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं है, यह उतना युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता। अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र की टीका 'अभिनव-भारती' के आरम्भ में ही इसीबात का खण्डन कर के कहा है कि नाट्यशास्त्र एक ही व्यक्ति की रचना है। 'भरत' नाम की पौराणिकता में कोई सन्देह नहीं, किन्तु इसके साथ ही यह भी बहुत सम्भव है कि भरत नाम के किसी एक आदिम आचार्य के नाम से ही यह परम्परा चली हो कि 'भरत' यह नाम नट या नाट्याचार्य के लिये सामान्यरूप से रूढ़ हो गया हो। जैसे शंकराचार्य की शिष्य-परम्परा में आज तक पीठाधीश सभी आचार्य शंकराचार्य कहलाते हैं। 'आदि भरत'[1] और 'भरतवृद्ध'[2]—ऐसे नाम यह संकेत अवश्य करते हैं कि भरत नाम के किसी आदिम नाट्याचार्य की नाट्यक्षेत्र में सार्वभौम प्रतिष्ठा के कारण 'भरत' एक ही आचार्य का नाममात्र न रह कर एक पदवी बन गया होगा, जो नाट्याचार्यों का आभूषण रही होगी। स्वयं भरत के नाट्यशास्त्र में एक स्थान पर नट के लिये भी 'भरत' संज्ञा का प्रयोग मिलता है। यथाः—

पृष्ठे कृत्वास्य कुतपं नाट्यं युङ्क्ते यतोमुखं भरतः।
सा पूर्वा मन्तव्या प्रयोगकाले तु नाट्यज्ञैः॥
(ना० शा० १३।६१)

नट के लिये 'भरत' संज्ञा के प्रयोग का यह तात्पर्य हो सकता है कि नाट्यशास्त्र' के रचयिता भरत 'मुनि' को यह अभीष्ट रहा होगा कि उनकी स्थापित नाट्य-संस्था के सदस्य 'नट' न कहला कर 'भरत' के रूप में प्रतिष्ठा पायें। हम जानते हैं कि आजकल बाजीगर लोग 'नट' कहलाते हैं, जो कि आम रास्तों पर बाँस गाड़ कर या रस्सा बाँध कर मटके आदि उठाए हुए अपनी करामातें दिखाया करते हैं। ये लोग भारत के सभी प्रान्तों में 'नट' ही कहलाते हैं। 'नाट्य' के प्रयोक्ता 'नट' को इन नटों की अपेक्षा प्रतिष्ठित स्थान दिलाने के लिये शायद 'भरत' नाम का प्रयोग किया गया हो। पूरा नट-सम्प्रदाय 'भरत' उपाधि से विभूषित रहे, यह 'भरत' मुनि को शायद अभीष्ट रहा हो। इस प्रकार 'नट' और नाट्याचार्य दोनों के लिये 'भरत' उपाधि के प्रयोग की परम्परा मिलती है। किन्तु यह परम्परा हमें 'भरत' नाम को किसी आदिम नाट्याचार्य के साथ जोड़ने से रोकती है, ऐसा मानने के लिये कोई प्रामाणिक आधार नहीं है। इसलिये हम अधुना उपलब्ध नाट्यशास्त्र के मूलरूप को आदिम आचार्य भरत की कृति मान सकते हैं। किन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि काल-क्रम से इस मूल रूप में कब-कब और कितने-कितने परिवर्तन या परिवर्द्धन हुए होंगे यह कहना आज बड़ा कठिन है, जब कि हमें 'अभिनव-भारती' के अतिरिक्त अन्य कोई नाट्यशास्त्र की टीका उपलब्ध नहीं है और जब कि कोहल, नन्दिकेश्वर आदि के प्राचीन नाट्यग्रन्थ भी अब लुप्त हो चुके हैं। नाट्यशास्त्र के आज जो तीन प्रकाशित संस्करण[3] उपलब्ध हैं, उन में विपुल पाठ-भेद और अध्यायों तथा श्लोकों की संख्या और क्रम में भेद,—इन सब से इतना तो अवश्य स्पष्ट है कि 'नाट्यशास्त्र' के मूल रूप में काफी परिवर्तन होते रहे होंगे। अभिनवगुप्त ने अपनी रचित टीका के आरम्भ में ही जो यह प्रश्न उठाया है कि नाट्यशास्त्र एक ही व्यक्ति की रचना है या नहीं, उससे यह स्पष्ट है कि आज से प्रायः एक हजार वर्ष पूर्व भी ऐसी आपत्ति उठाई जाती थी। इस आपत्ति के उत्तर में अभिनवगुप्त ने जो ऐसा कहा है कि नाट्यशास्त्र को एक ही व्यक्ति की कृति मानना चाहिए, उस पर यदि हम कुछ गम्भीरता से विचार करें तो ऐसा लगता है कि इस कथन में हमें अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। इसलिये मध्यममार्ग लेते हुए ऐसा कहना अधिक उचित होगा कि नाट्यशास्त्र का मूलरूप एक व्यक्ति की रचना रहा होगा, किन्तु स्वाभाविक काल-क्रम से उसमें परिवर्तन-परिवर्धन अवश्य ही होते रहे होंगे, जिन का स्वरूप जानना आज असंभव है।

---

१. 'शाकुन्तल' पर राघवभट्ट की टीका में 'आदि भरत' और 'भरत' ये दो पृथक् नाम मिलते हैं।

२. शारदातनय के 'भावप्रकाश' में 'भरतवृद्ध' का उल्लेख मिलता है।

३. निर्णयसागर प्रेस बम्बई से प्रकाशित काव्यमाला, बनारस से प्रकाशित चौखम्बा संस्कृत सीरीज तथा प्रकाशित गायकवाड़ ओरियेण्टल सीरीज के अन्तर्गत नाट्यशास्त्र के तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

'टीका' का भी अभिनवगुप्त ने विशेष रूप से अभिनव भारती के गेयाधिकार (नाट्यशास्त्र में संगीत-सम्बन्धी अंश) में उल्लेख किया है। इस 'टीका' के लेखक का नाम अज्ञात है।

नाट्य से सम्बन्धित अन्य प्राचीन ग्रंथकारों के विषय में भी अभिनव भारती में आए हुए उल्लेखों या उद्धरणों से काफी जानकारी मिलती है। उस काल तक नाट्य के ग्रन्थों में नाट्य के अंग के रूप में संगीत को भी स्थान रहता ही था। इस प्रकार नाट्य साहित्य के इतिहास के साथ साथ प्राचीन संगीतशास्त्र का इतिहास भी जुड़ा हुआ है। इसलिए यहाँ हम नाट्य तथा संगीत साहित्य के फुटकर नामों को एक साथ ले लेंगे। जैसा कि हम पहिले कह चुके हैं, इन नामों को हम नीचे लिखे दो वर्गों में रखेंगे—(क) जिनके ग्रंथ पूर्ण नहीं तो आंशिक रूप से उपलब्ध हैं और (ख) जिनके ग्रन्थों के नाम मात्र ज्ञात हैं या वह भी अज्ञात हैं। इन फुटकर नामों में पौराणिक तथा ऐतिहासिक दोनों प्रकार के नाम रहेंगे।

(२) नाट्य तथा संगीत-साहित्य के फुटकर नाम

ऐसे लेखक जिनके ग्रंथ पूर्ण नहीं तो आंशिक रूप से उपलब्ध हैं—

मतंग

मतंग को मुनि की पदवी प्राप्त है और यह नाम पौराणिक है। मतंग का नाम और कथा रामायण, महाभारत तथा कुछ पुराणों में पाए जाते हैं। परन्तु इनका रचित 'बृहद्देशी'[1] किस काल में रखा जाय, इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। इस ग्रन्थ में श्लोक और 'टीका' से मिलते-जुलते गद्य अंश हैं। कई विद्वान् श्लोकों को ग्रन्थ का मूल रूप मानते हैं और गद्यांश को किसी भिन्न व्यक्ति द्वारा रचित टीका कहते हैं। किंतु समूचे ग्रंथ के प्रवाह को देखते हुए पद्य और गद्यांश के लेखक भिन्न रहे होंगे, ऐसा मानने के लिए कोई कारण नहीं जान पड़ता। जो गद्यांश है, वह भी ठीक टीका के रूप में नहीं है। इसलिए हमारा मत है कि पूरे ग्रंथ को एक ही व्यक्ति की रचना मानना चाहिए। अब रहा काल का प्रश्न, इसमें सबसे पहिले लेखक के 'मतंग' नाम की पौराणिकता देखते हुए इसे काफी प्राचीन मानने को जी चाहता है। भरत नाट्यशास्त्र के मूल रूप से तो यह निश्चित रूप से बाद का है, क्योंकि पूर्वाचार्य के रूप में भरत का बार-बार इसमें उल्लेख आता है। अभिनवगुप्त ने दो बार मतंग का नाम लेकर उद्धरण दिये हैं। डॉ॰ राघवन् का कहना है कि मतंग ने रुद्रट का एक उद्धरण दिया है, ऐसा कल्लिनाथ ने 'संगीत रत्नाकर' की टीका में मतंग का जो उद्धरण दिया है, उससे मालूम होता है। मतंग के 'बृहद्देशी' का जो अंश आज उपलब्ध है, उसमें तो रुद्रट का नामोल्लेख नहीं मिलता। रुद्रट प्रसिद्ध आलंकारिक थे और उनके अलंकार ग्रंथ का नाम है 'काव्यालंकार'। रुद्रट का काल निश्चित रूप से नवीं शताब्दी (८२५ ई॰ से ८७५ ई॰ के बीच) में माना जाता है। डॉ॰ राघवन् ने कल्लिनाथ के आधार पर यह मान लिया है कि मतंग ने रुद्रट का उद्धरण दिया है और इसलिए मतंग को रुद्रट के काल के बाद यानी नवीं शताब्दी के बाद रखा जाना चाहिए। मतंग नाम की पौराणिक प्राचीनता और 'बृहद्देशी' के विषय प्रतिपादन को देखते हुए इस काल निर्णय से हम सहमत नहीं हो सकते। अन्य प्रमाणों के अभाव में काल-निर्णय करना अभी असम्भव-सा है, किन्तु नवीं शताब्दी के बाद का काल तो नहीं हो सकता। महामहोपाध्याय पी॰ वी॰ काणे ने भी ७५० ई॰ के पूर्व ही मतंग को स्थान दिया है।

---

[1] यह ग्रन्थ प्रकाशित है। इसके उपलब्ध अंश की विषयसूची हमने इस प्रकरण के अन्त में दी है जिससे इसकी विषय-वस्तु का परिचय हो जाएगा।

नाट्य से स्वतन्त्र-रूप में संगीत का प्रतिपादन करने वाले उपलब्ध ग्रन्थों में 'बृहद्देशी' का नाम सर्वप्रथम आता है। इसलिए संगीत के शास्त्रीय साहित्य में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। भरत ने रागों का वर्णन नहीं किया है, अपितु 'जाति' में ही सब गीत प्रकारों को समाविष्ट कर लिया है, यह बात विद्यार्थी अगले वर्ष के पाठ्य-क्रम में जाति-प्रकरण में समझेंगे। आज उपलब्ध ग्रन्थों में से सबसे पहिले 'बृहद्देशी' में रागों का विस्तृत निरूपण मिलता है। इस दृष्टि से भी इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

मतंग की विचारधारा बहुत अधिक अंश में भरत के अनुकूल ही है और अधिकांश स्थलों में उनके लेखन से भरत के कथन की स्पष्टता और पुष्टि ही होती है। केवल दो स्थानों पर उनका विषय निरूपण भरत से कुछ भिन्न दिखाई देता है। ये स्थल हैं—(१) मूर्च्छना-प्रकरण जहाँ मतंग ने भरत की सप्तस्वर-मूर्च्छना के साथ-साथ द्वादश-स्वर-मूर्च्छना भी बताई हैं और (२) जाति प्रकरण में। भरत ने जातियों की मूर्च्छना नहीं बताई हैं, किन्तु मतंग ने प्रत्येक जाति की मूर्च्छना बता कर कुछ भिन्न परम्परा का परिचय दिया है। जाति और मूर्च्छना को भली भाँति समझे बिना विद्यार्थी इन दोनों स्थलों का मर्म समझ नहीं सकेंगे। इसलिए इतना निर्देश-मात्र करके हम इस विषय को यहीं छोड़ देते हैं। 'प्रणव-भारती' के दूसरे भाग में इन दोनों विषयों की पूरी विवेचना की जाएगी।

नारद

यह नाम पूरा पौराणिक है। वीणा बजा कर हरिकीर्तन करने वाले देवर्षि नारद भारतीय जन-मानस में गान्धर्व-विद्या के दैवी प्रवर्तक के रूप में घुले हुए हैं। किन्तु नारद की इस पौराणिक सत्ता से पृथक् जब हम संगीत-शास्त्रकार नारद का इतिहास खोजने जाते हैं, तब एक से अधिक 'नारद' हमारे सामने आते हैं और वे इस नाम को किसी एक व्यक्तिविशेष से सम्बद्ध नहीं रहने देते। शिक्षा-ग्रन्थों[1] में प्रसिद्ध 'नारदीय शिक्षा' के प्रणेता नारद इनमें से एक हैं। शिक्षा-ग्रन्थों का वैदिक संगीत से सीधा सम्बन्ध होने के कारण 'नारदीय शिक्षा' को ई० पू० के प्राचीन काल की ही रचना मानना पड़ता है। शिक्षा-ग्रन्थों में नारदीय शिक्षा का स्थान प्राचीनतर माना जाता है। भरत के नाट्यशास्त्र में भी एक स्थान पर नारद का नाम आता है। यथा—

> गान्धर्वमेवत् कथितं मया हि, पूर्वं यदुक्तं त्विह नारदेन।
> कुर्याद एवं मनुजः प्रयोगं, सम्मानमग्र्यं कुशलेषु गच्छेत्॥
> (ना० शा० ३१।४८४)

अर्थात्—"पहिले नारद जिस 'गान्धर्व' को बता चुके हैं, वही मैंने यहाँ बताया है।" महाभारत के शान्तिपर्व (१६८।५८) में नारद को गान्धर्ववेद का प्रवर्तक बताया गया है। शायद उन्हीं नारद के लिये नाट्यशास्त्र में यह उल्लेख किया गया हो। गान्धर्ववेद के प्रवर्तक ये नारद, 'शिक्षा' के प्रणेता नारद से भिन्न होने चाहिए, क्योंकि शिक्षा-ग्रन्थों का वैदिक उच्चारण और वैदिक संगीत से ही मुख्यतया संबन्ध होता है। इसलिये शिक्षा-ग्रन्थों को गान्धर्व परंपरा का शास्त्र नहीं मान सकते, यद्यपि उनमें गान्धर्व-संगीत का भी उल्लेख मिलता है। इस प्रकार वैदिक संगीत के समकक्ष गान्धर्व संगीत की धारा के शास्त्रीय प्रवर्तक के रूप में जो नारद प्रसिद्ध हैं, वे नारदीय शिक्षा के प्रणेता से भिन्न रहे

---

१. शिक्षा, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, कल्प और निरुक्त—ये छः वेदांग माने गये हैं। इनमें से शिक्षा का सम्बन्ध उच्चारण से है। इसलिए वैदिक संगीत का शिक्षाग्रन्थों में अत्यधिक विवरण पाया जाता है। भिन्न भिन्न ऋषि-मुनियों के नाम से प्रायः पंचवीस शिक्षा ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

होंगे। इस प्रकार अति प्राचीन काल के दो नारद हमारे परिचय में आते हैं।[१] तीसरे 'नारद' नामक ग्रन्थकार हैं 'संगीत मकरन्द' के प्रणेता। इन्होंने स्वयं इस ग्रन्थ के आरंभ में दिये हुए पूर्वाचार्यों के नामों में 'नारद' का भी उल्लेख किया है। यह उल्लेख नारदीय शिक्षा के प्रणेता अथवा गान्धर्व वेद के प्रवर्तक के लिये समझा जा सकता है। संगीत के शास्त्रीय विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से यह ग्रन्थ बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है, फिर भी इसकी कुछ रुचिकर विशेषताएं निम्नलिखित हैं—

(१) पुरुष राग, स्त्री राग और नपुंसक राग—इस प्रकार रागों का वर्गीकरण और ९३ रागों का निरूपण। मुक्ताङ्गकम्पित (जिनमें कंपित गमक का पूरा प्रयोग है) अर्ध कम्पित (जिनमें 'कम्पित' का न्यून प्रयोग है) और कम्पहीन (जिनमें कम्प का प्रयोग बिल्कुल नहीं)—इन तीन वर्गों में रागों का विभाजन।

(२) गान्धारग्राम का निरूपण (भले ही यह निरूपण बहुत ही अस्पष्ट है)।

(३) श्रुति-नामों की प्रचलित परंपरा से भिन्न नामों का उल्लेख।

(४) भरत के बताये हुए तेंतीस अलंकारों के स्थान पर केवल उन्नीस अलंकारों का निरूपण।

(५) नखज, वायुज, चर्मज, लोहज, और शरीरज—इस प्रकार नाद के पांच भेदों का निरूपण (इसमें नवीनता दिखाई देती है)।

(६) वीणा के अठारह भेदों का निरूपण (यह संख्या अन्य ग्रन्थों को देखते हुए काफ़ी बड़ी है। शार्ङ्गदेव ने भी कुल ग्यारह ही वीणा-भेद बताए हैं।)

'संगीत मकरंद' के काल-निर्णय के संबन्ध में यह माना गया है कि निश्चित रूप से 'संगीत रत्नाकर' (तेरहवीं सदी) से पूर्व की रचना है। इसमें जिन पूर्वाचार्यों के नाम दिये गए हैं, उनमें मातृगुप्त ऐतिहासिक नाम है। मातृगुप्त का काल छठी शताब्दी का उत्तरार्ध अथवा सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना गया है। इसलिये 'संगीत मकरंद' को सातवीं सदी के बाद ही रखना होगा। इस ग्रन्थ में रुद्रट, उद्भट, शंकुक, लोल्लट, अभिनव, नान्यदेव आदि के नाम नहीं मिलते, जो शार्ङ्गदेव के 'संगीत रत्नाकर' में अवश्य मिलते हैं। इसलिये 'संगीत मकरंद' का काल मातृगुप्त (सातवीं सदी) और रुद्रट-उद्भटादि (आठवीं नवीं शताब्दी) के बीच में माना जा सकता है। नारद के नाम से 'चत्वारिंशच्छतरागनिरूपण' नाम का एक छोटा सा अन्य ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ है, किन्तु इसके रचयिता 'संगीत मकरन्द' के रचयिता से भिन्न जान पड़ते हैं, क्योंकि राग-रागिनी निरूपण में ये स्वयं बार-बार 'नारद' के मत का नाम लेते हैं और इस विषय में आधिकारिक मत रखने वाले पूर्वाचार्य नारद तो 'संगीत मकरन्द' के रचयिता ही हो सकते हैं। 'नारद' पौराणिक नाम के यथेच्छ व्यवहार का यह एक अच्छा उदाहरण है।

मतंग ने बृहद्देशी में गान्धारग्राम के लिये जो कहा है कि इसे 'नारद' ने बताया है उसके लिये किसी-किसी ने ऐसी कल्पना की है कि ये नारद 'संगीत मकरन्द' के रचयिता होंगे। किन्तु 'संगीत मकरन्द' का काल देखते हुए और

---

१. नाट्यशास्त्र में, नाट्य प्रयोग में भरत के सहयोगी गन्धर्व के रूप में भी नारद का उल्लेख मिलता है :—

स्वातिनारदसंयुक्तो वेदवेदांगकारणम्।
उपस्थितोऽहं लोकेशं प्रयोगार्थं कृताञ्जलिः॥

(ना० शा० १।५२,५३)

नारदाद्याश्च गन्धर्वा नाट्ययोगे नियोजिताः॥

(ना० शा९ १।५१)

उसका अपेक्षा मतंग की प्राचीनता को ध्यान में रखते हुए यह कल्पना निराधार जान पड़ती है। मतंग का उल्लेख तो 'नारदीय शिक्षा' के प्रणेता प्राचीन नारद के लिये ही हो सकता है। 'नारदीय शिक्षा' में 'गान्धारग्राम' का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार शिक्षा-ग्रन्थ के प्रणेता, गान्धर्ववेद के प्रवर्तक, नाट्य प्रयोग में भरत के सहयोगी, 'संगीत मकरन्द' के रचयिता और 'चत्वारिंशच्छतरागनिरूपण' के लेखक—ये पाँच 'नारद' हमारे परिचय में आते हैं, जिनकी ऐतिहासिकता अनिश्चित सी है।

(३) दत्तिल

भरत के नाट्यशास्त्र में दत्तिल का नाम भरत के पुत्रों-शिष्यों में कोहल के साथ-साथ आता है।[1] और इन दो नामों की अन्यत्र भी जोड़ी-सी दिखाई पड़ती है। इन्हें दत्तिलाचार्य कहकर अभिनवगुप्त ने बहुत बार इनके ग्रन्थ से उद्धरण दिये हैं।

अनन्तशयनसंस्कृतग्रन्थावलि के अन्तर्गत 'दत्तिलम्' नाम का जो छोटा सा ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, उस में नाट्य का तो कोई विषय नहीं है और केवल संगीत की दृष्टि से भी वह बहुत ही अपूर्ण है। भरत की पुत्र या शिष्य-परंपरा में इन का स्थान होने से ऐसा दृढ़ अनुमान होता है कि ये नाट्याचार्य ही रहे होंगे और नाट्य के व्यापक विषय पर इनका विस्तृत ग्रन्थ रहा होगा। किन्तु अब वह ग्रन्थ अप्राप्य है। संगीत संबन्धी जो छोटा सा ग्रन्थ उपलब्ध है, वह या तो इनके मूल ग्रन्थ के संगीत संबन्धी अंश का संक्षिप्त रूपान्तर है और या उसका खण्डितांश है। इसके विषय-प्रतिपादन को देखते हुए यह किसी मूल ग्रन्थ के अंश का संक्षिप्त रूपान्तर ही मालूम पड़ता है। दत्तिल 'मुनि' की प्राचीनता के बारे में कोई संदेह नहीं, क्योंकि मतंग ने कई स्थलों पर इनके नाम से उद्धरण दिये हैं और वे सब उद्धृत श्लोक इस उपलब्ध 'दत्तिलम्' में मिल जाते हैं। यह ग्रन्थ पूरा श्लोकबद्ध है, गद्य के अंश वहीं नहीं हैं। दत्तिल को बहुधा दन्तिल भी कहा गया है।

(४) नन्दिकेश्वर

यह नाम भी पौराणिक है किन्तु साथ ही व्याकरण तथा नाट्य (संगीत तथा रस इसी के अंतर्गत हैं) के महान् आचार्य किसी ऐतिहासिक व्यक्ति से संबद्ध रहा है।

नन्दिकेश्वर का संगीत संबन्धी ग्रन्थ 'नन्दिभरत' 'राइस' की बनाई हुई सूची में उल्लिखित है, किन्तु आज यह अप्राप्य है। मद्रास लाइब्रेरी की सूची में 'नन्दि भरतोक्त संकरहस्ताध्याय' ऐसा 'नन्दिभरत' का एक खण्ड उल्लिखित है। नन्दिकेश्वर और पार्वती के संवाद के रूप में 'भरतार्थचन्द्रिका' नाम का एक ग्रन्थ भी मद्रास लाइब्रेरी में संगृहीत है। नन्दिकेश्वर का कोई एक ग्रन्थ अभिनवगुप्त को भी उपलब्ध नहीं था और उन्होंने प्राचीन टीकाकार कीर्तिधर के आधार पर ही नन्दिकेश्वर के उस ग्रन्थ में से उद्धरण दिये हैं। 'नन्दिमत' नाम का नन्दिकेश्वर का ग्रन्थ अभिनवगुप्त को उपलब्ध था और उन्होंने सीधे उसमें से उद्धरण दिये हैं।

---

१. यथा—

पुत्रानध्यापयं योग्यान् प्रयोगं चास्य तत्त्वतः।
शाण्डिल्यं चापि वात्स्यं च कोहलं दन्तिलं (दत्तिलं) तथा ॥
(ना० शा० १।२५-६)

नन्दिकेश्वर का 'भरतार्णव' नाम का ग्रन्थ संभवतः नाट्य के व्यापक विषय का प्रतिपादक रहा होगा, किन्तु आज उसके एकाध अध्याय की ही पाण्डुलिपि मिलती है (मद्रास तथा तंजोर की लाइब्रेरी में सुरक्षित)। नन्दिकेश्वर का 'अभिनयदर्पण' ही पूर्णरूप में उपलब्ध है और तेलगू तथा देवनागरी लिपि में प्रकाशित है।[1] यह मुख्यतः नृत्य से संबन्धित है। तंजौर लाइब्रेरी में नन्दिकेश्वर के नाम से 'ताललक्षण' नामक ग्रन्थ भी संग्रहीत है।

इस प्रकार हमने देखा कि नन्दिकेश्वर का संगीत-संबन्धी ग्रन्थ 'नन्दिभरत' आज अप्राप्य है और उनके नाट्य-संबन्धी विशाल ग्रन्थ (जो चार हज़ार श्लोकों का माना जाता है) का भी नगण्य सा खण्ड उपलब्ध है (केवल दशम अध्याय प्राप्त है)। इनके काल-निर्णय के बारे में अभी विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं है।

नाट्य तथा संगीत-साहित्य के ऐसे फुटकर नाम जिनके ग्रन्थ उपलब्ध नहीं या जिनके ग्रन्थों के बारे में जानकारी नामों तक ही सीमित है।

इस श्रेणी के अन्तर्गत आने वाले ग्रन्थकारों के नाम अन्य उपलब्ध ग्रन्थों में पाये जाने वाले उल्लेखों से ही जाने जा सकते हैं। नारद का 'संगीत मकरन्द' अभिनवगुप्त की 'अभिनव भारती' और शार्ङ्गदेव का 'संगीत रत्नाकर'—ये तीनों ऐसे उल्लेखों के लिये महत्त्वपूर्ण है। नारद और शार्ङ्गदेव ने तो अपने ग्रन्थों के आरम्भ में ही पूर्वाचार्यों के नामों की सूची दी है और अभिनवगुप्त ने बीच-बीच में नामोल्लेख करके अथवा उद्धरण देकर ऐसे ग्रन्थकारों के बारे में कुछ जानकारी दी है। इन तीनों से हमें जो नाम सूचियां मिलती हैं उन्हें नीचे तालिका के रूप में दे रहे हैं। इस तालिका में कुछ नाम ऐसे है जिन्हें हम भरत के नाट्यशास्त्र के टीकाकारों के रूप में देख चुके हैं। उन्हें पृथक् दिखाने के लिये रेखांकित कर दिया गया है। 'भरत' 'मतंग', 'नारद' 'दत्तिल' और 'नन्दिकेश्वर' को भी रेखांकित किया गया है, क्योंकि इनके ग्रन्थ उपलब्ध होने से इन्हें हम ऊपर कुछ विस्तार से देख चुके हैं।

नारद 'संगीत मकरन्द'	अभिनवगुप्त 'अभिनव-भारती'	शार्ङ्गदेव 'संगीत रत्नाकर'
ब्रह्मा	कश्यप मुनि	सदाशिव
हरि (२ बार)	टीकाकार	शिवा
मतंग	नन्दिकेश्वर	ब्रह्मा
कश्यप मुनि	नारद	भरत
विश्वकर्मा	कोहल	कश्यप मुनि
हरिश्चन्द्र	दत्तिल	मतङ्ग
भरत	मतंग	याष्टिक
कमलास्यक	उद्भट	दुर्गाशक्ति (?) दुर्गा शक्ति
चण्डी	शङ्कुक	शार्दूल

1. तेलगू में प्रकाशित संस्करण का पु० के० कुमारस्वामी ने अंग्रेज़ी अनुवाद भी किया है। डा० मनमोहन घोष ने भी कलकत्ता संस्कृत सीरीज़ में इसे देवनागरी लिपि में प्रकाशित किया है और साथ में अंग्रेज़ी अनुवाद भी दिया है।

व्याल
शार्दूल
नारद
तुम्बुरु
वायु
विश्वावसु
शौरि
आञ्जनेय
अङ्गद
षण्मुख
भृङ्गिदेवेन्द्र
कुबेर
कुशिक मुनि
मातृगुप्त
रावण
समुद्र
सरस्वती
बलि
यक्ष
किन्नरेश
विक्रम

लोल्लट
कीर्त्तिधर
विशाखिल
उत्पलदेव
भट्ट गोपाल
भट्ट मातृगुप्त
प्रियातिथि
श्रीहर्ष
भट्ट सुमनस
शाकलीगर्भ
भट्ट वृद्धि
धंटक
भट्ट यन्त्र

कोहल
विशाखिल
दत्तिल
कम्बल
अश्वतर
वायु
विश्वावसु
रम्भा
अर्जुन
नारद
तुम्बरु
आञ्जनेय
मातृगुप्त
रावण
नन्दिकेश्वर
स्वाति
गण
बिन्दुराज
क्षेत्रराज
राहुल
रुद्रट
नान्यदेव
भोजराज
परमर्दी
सोमेश
लोल्लट
उद्भट
शङ्कुक
भट्ट अभिनवगुप्त
कीर्त्तिधर

इन तीन सूचियों के अतिरिक्त हमें कुछ अन्य नाम नीचे लिखे ग्रन्थों में भी मिल जाते हैं—

(१) नान्यदेव का 'भरतभाष्य' या 'सरस्वतीहृदयालङ्कार'।

(२) शारदातनय का 'भावप्रकाश'।

(३) पार्श्वदेव का 'संगीतसमयसार'।

(४) कल्लिनाथ और सिंहभूपाल की 'संगीत-रत्नाकर' पर टीकाएँ।

इन ग्रन्थों में ऊपर दी हुई तीन सूचियों के अतिरिक्त जो नये नाम मिलते हैं वे इस प्रकार हैं—

नान्यदेव 'भरतभाष्य'	शारदातनय 'भावप्रकाश'	पार्श्वदेव संगीतसमयसार	सिंहभूपाल सं० र० की टीका	कल्लिनाथ सं० र० की टीका
देवराज	वासुकि	दिगम्बर य दिगम्बर सूरि	दक्षप्रजापति	क्षेमराज
आस्तिक	अगस्त्य	शंकर		लोहित भट्टक
छत्रक	सदाशिव			सुमन्तु
बृहत् कश्यप	शिव			
	गौरी			
	पार्वती			
	व्यास			
	गान्धर्वनिर्णय (ग्रंथ-नाम)			
	द्रौहिणि			
	मारुति (आञ्जनेय)			

ऊपर की तालिकाओं में अधिकांश नाम पौराणिक हैं और कुछ ऐतिहासिक भी हैं। इन नामों के बारे में जो भी थोडी बहुत जानकारी उपलब्ध है, उसे विस्तार भय से नीचे तालिका के रूप में ही रख दिया गया है। नीचे की तालिका में नाट्यशास्त्र के टीकाकारों को तथा 'भरत', 'मतंग', 'नारद', 'दत्तिल' और 'नन्दिकेश्वर' को छोड़ दिया गया है, क्योंकि इनके बारे में हम ऊपर विस्तार से लिख चुके हैं। इस तालिका में नीचे लिखे संक्षिप्त संकेतों का प्रयोग किया गया है—

सं० र० = संगीत रत्नाकर। सं० म० = संगीत मकरन्द। ना० शा० = नाट्य शास्त्र। नान्य० = नान्यदेव। कल्लि० = कल्लिनाथ की 'संगीत रत्नाकर' पर टीका। सिंह० = सिंहभूपाल की 'संगीत रत्नाकर' पर टीका। अ० भा० = अभिनव-भारती। भा० प्र० = भावप्रकाश। सं० स० सा० = 'संगीत समय सार'। बृह० = बृहद्देशी।

आचार्य का नाम	किन ग्रन्थों में उल्लेख	पौराणिक या ऐतिहासिक	ग्रन्थ का नाम	अन्य कोई उपलब्ध जानकारी
सदाशिव	सं० र०, मा० प्र० (शिव) मा० प्र०	पौराणिक	(?)	सब विद्याओं, कलाओं के उद्गम-स्रोत के रूप में भारतीय पौराणिक परंपरा में सर्वविदित।
ब्रह्मा	सं० र०, सं० म०	,,	(?)	नाट्यवेद के दैवी प्रवर्तक।
शिव गौरी, पार्वती	सं० र० } मा० प्र० }	,,	(?)	शिव की शक्ति और उन्हीं की भाँति सब विद्याओं कलाओं का मूलस्थान।
हरि	सं० म०	,,	(?)	ब्रह्मा या विष्णु।
चण्डी	सं० म०	,,	(?)	शिवा का दूसरा रूप।
कश्यप मुनि	सं० र०, सं० म०, अ० भा०	वैदिक पौराणिक, किन्तु किसी ऐतिहासिक व्यक्ति से संबद्ध।	(?)	अ० भा० में रसानुकूल गीत-प्रयोग के बारे में उद्धरण। दण्डी के 'काव्यादर्श' की टीका में भी नामोल्लेख। सम्भवतः नाट्य, संगीत, अलंकार के आचार्य।
वृहत् कश्यप	नान्य०	ऐतिहासिक (?	(?)	नान्यदेव के 'भरतभाष्य' में दो जगह उल्लेख।
कोहल	अ० भा०, सं० र०, ना० शा०, कल्लि०	ऐतिहासिक (?)	संगीत मेरु कोहलीय अभिनयशास्त्र, ताल लक्षण (अन्तिम दो की खण्डित पाण्डुलिपियाँ मद्रास लाइब्रेरी में)।	नाट्यशास्त्र में भरत के शिष्य-पुत्रों में नाम। अन्त में ऐसा उल्लेख कि भरत का शेष कार्य कोहल पूरा करेंगे—'शेषमुत्तरतन्त्रेण कोहलः कथयिष्यति'। कल्लिनाथ की टीका में इनके ग्रन्थ का नामोल्लेख और ऐसा भी उल्लेख कि कोहल मतंग को उद्धृत करते हैं। इस उद्धरण से बड़ी उलझन, क्योंकि मतंग स्वयं कोहल के उद्धरण देते हैं। संभावना यही कि ये मतंग से प्राचीन। नाट्य तथा संगीत दोनों क्षेत्रों में एक सी प्रतिष्ठा।
आञ्जनेय	सं० र०, भा० प्र०, कल्लि०	पौराणिक, किन्तु किसी ऐतिहासिक व्यक्ति से सम्बद्ध	(?)	भा० प्र० में तथा कल्लि० द्वारा उद्धरण। मध्ययुगीन दामोदर पंडित के 'संगीतदर्पण' में राग-रागिनी वर्गीकरण के लिए उनके मत का हनुमान् के नाम से उल्लेख। अहोबल द्वारा भी हनुमान् का मतोल्लेख।
शार्दूल	सं० र०, सं० म०, वृह०	(?)	(?)	सं० र० और सं० म० में केवल नामोल्लेख, वृह० में दो उद्धरण।
दुर्गाशक्ति	सं० र०, वृह०	ऐतिहासिक (?)	(?)	वृह० में 'दुर्गशक्ति'।
याष्टिक	सं० र०, वृह०, नान्य०, कल्लि०	ऐतिहासिक (?)	(?)	संभवतः इनका संगीत पर कोई ग्रन्थ रहा होगा।

आचार्य का नाम	किन ग्रन्थों में उल्लेख	पौराणिक या ऐतिहासिक ?	ग्रन्थ का नाम	अन्य कोई उपलब्ध जानकारी
कम्बल, अश्वतर	सं० र०	पौराणिक	(?)	नाग जाति के गन्धर्व, सरस्वती की आराधना करके, वर पाकर शिव के कर्णकुण्डल बन जाने की पौराणिक कथा।
विशाखिल	अ० भा०, सं० र०, दत्तिल	ऐतिहासिक (?)	(?)	दत्तिल से प्राचीनतर क्योंकि 'दत्तिलम्' में उद्धरण।
विश्वावसु	सं० म०, सं० र०, सिंह०, वृह०	,,	(?)	गन्धर्व-जाति का।
रम्भा, अर्जुन	सं० र०	पौराणिक	(?)	तंजोर राजकीय पुस्तकालय में 'अर्जुन भरत' की पाण्डुलिपि।
रावण	सं० म०, सं० र०	,,	(?)	'रावणहस्ता' नाम के वाद्य विशेष से और सामगान से सम्बन्ध।
स्वाति	ना० शा०, सं० र०, अ० भा०	ऐतिहासिक (?)	(?)	'पुष्कर' नाम के अवनद्ध वाद्य के आविष्कारक के रूप में तथा इन्द्र की सभा में नाट्यप्रयोग में भरत के सहयोगी के रूप में नाट्यशास्त्र में उल्लिखित।
दक्षप्रजापति	सिंह०	,, (?)	(?)	कोई ग्रंथ अवश्य रहा होगा जिसमें से सिंह० द्वारा उद्धरण।
उत्पलदेव	अ० भा०	ऐतिहासिक	(?)	अभिनवगुप्त के परम गुरु। यों तो ये प्रत्यभिज्ञा-दर्शन के आदिपुरुष के रूप में अधिक विख्यात, किन्तु अ० भा० में इनके संगीत सम्बन्धी उद्धरण। सम्भवतः संगीत पर इनका कोई ग्रन्थ रहा होगा। समय—नवीं शताब्दी ई० का अन्त, अथवा दसवीं शताब्दी ई० का आरम्भ।
रुद्रट	सं० र०, कल्लि०	ऐतिहासिक	(?)	प्रसिद्ध आलंकारिक, 'काव्यालंकार' के प्रणेता। संभवतः संगीत पर भी ग्रन्थ।
राहुल	सं० र०, अ० भा०	,,	(?)	या तो ना० शा० के टीकाकार और या नाट्य पर विस्तृत ग्रन्थ के निर्माता।
शकलीगर्भ	अ० भा०	ऐति०	(?)	सम्भवतः नाट्य से अधिक सम्बन्ध।
भट्ट वृद्धि	अ० भा०	ऐति०	(?)	सम्भवतः संगीत पर कोई ग्रन्थ। अ० भा० के 'तालाध्याय' में उद्धरण।
भट्ट सुमनस	अ० भा०	ऐति०	(?)	सम्भवतः संगीत पर कोई ग्रन्थ। अ० भा० के 'तालाध्याय' में उद्धरण।

आचार्य का नाम	किन ग्रन्थों में उल्लेख	पौराणिक या ऐतिहासिक ?	ग्रन्थ का नाम	अन्य कोई उपलब्ध जानकारी
घंटक	अ० भा०	ऐति०	(?)	केवल नाट्य-सम्बन्धी उद्धरण।
भट्ट यन्त्र	अ० भा०	ऐति०	(?)	नृत्य-सम्बन्धी उद्धरण।
भट्ट गोपाल	अ० भा०	ऐति०	(?)	ताल-सम्बन्धी उद्धरण।
मातृगुप्त	सं० म०, अ० भा०, सं० र०,	ऐति०	(?)	श्रीहर्ष (राजा) के समकालीन। सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध, महाकवि और बाद में काश्मीर के राजा।
प्रियातिथि	अ० भा०	ऐति०	(?)	नृत्य-सम्बन्धी उद्धरण।
भोजराज	सं० र०, भा० प्र०,	ऐति०	(?)	अलंकार तथा रस-शास्त्र में 'सरस्वतीकण्ठाभरण' तथा 'शृङ्गारप्रकाश' के प्रणेता के रूप में विख्यात। कलाओं के तथा वाद्य के प्रसिद्ध मर्मज्ञ। संगीत-ग्रन्थ का नाम अज्ञात। समय—११ वीं शताब्दी का पूर्वार्ध।
सोमेश्वर	सं० र०, भा० प्र०, सं०रा० रा०	ऐति०		काल-दृष्टि से सन्धि-काल में स्थान। अतः उसी प्रकरण में विवरण।
परमर्दी	सं० र०, सं० स० सा०	ऐति०	(?)	पार्श्वदेव द्वारा प्रबन्धाध्याय में उद्धरण।
बिन्दुराज } क्षेत्रराज }	सं० र०	ऐति (?)	(?)	अन्यत्र कहीं उल्लेख नहीं।
क्षेमराज, लोहित, भट्टक, सुमन्तु	कल्लि०	ऐति (?)	(?)	इन तीनों का कोहल द्वारा उद्धरण, ऐसा कल्लि० का उल्लेख।
तुम्बरु	सं० र०, सं० म०	पौरा०	(?)	नारद के संगी गान्धर्व के रूप में पौराणिक परम्परा में प्रसिद्ध।
वायु	सं० र०, सं० म०	पौरा०	(?)	'वायु' नाद के मुख्य वाहक के रूप में संगीत से सम्बद्ध अथवा वायुपुराण (?)
गण (?)	सं० र०	?	(?)	अन्यत्र कहीं उल्लेख नहीं।
देवराज	नान्य०	ऐति०	(?)	सप्तम अध्याय में 'ग्रह', 'अंश', 'तार' का लक्षण बताते समय उद्धरण।
आपिशलि मुनि	नान्य०	ऐति०	(?)	शिक्षा-प्रकरण में पाणिनि, नारद के साथ नामोल्लेख। ये प्राचीन वैय्याकरण, जिनका पाणिनि द्वारा भी नामोल्लेख।

आचार्य का नाम	किन ग्रन्थों में उल्लेख	पौराणिक या ऐतिहासिक ?	ग्रन्थ का नाम	अन्य कोई उपलब्ध जानकारी
आस्तिक छत्रक	नान्य०	ऐति० (?)	(?)	कश्यप, मतंग, तुम्बरु के साथ-साथ केवल नामोल्लेख (पृ० ६४—सप्तम अध्याय)।
वासुकि	भा० प्र०	पौरा०	(?)	केवल एक उद्धरण, अन्यत्र कहीं कोई उल्लेख नहीं। सं० म० में 'व्याल' सम्भवतः इसी का पर्यायवाची, क्योंकि वासुकि प्रसिद्ध नाग।
अगस्त्य, व्यास, द्रौहिणी	भा० प्र०	पौरा०	(?)	अगस्त्य का कोई उद्धरण नहीं, व्यास से नाट्योत्पत्ति का वर्णन, किन्तु पुराणों में ऐसी कोई कथा नहीं। द्रौहिणी का नाट्य-सम्बन्धी उद्धरण।
दिगम्बर	स० स० सा०	ऐति०	(?)	सम्भवतः पार्श्वदेव के गुरु। काल-दृष्टि से इनका स्थान सन्धि काल में।
शंकर	सं० स० सा०	पौरा (?)	(?)	वाद्याध्याय में उद्धरण।
विक्रम समुद्र	सं० म०, सं० म०,	ऐति० (?)	(?)	अन्यत्र कहीं कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं। कौन से ऐतिहासिक विक्रम संगीताचार्य थे ? 'शनि-माहात्म्य' में दीपक राग गाकर दिये जलाने वालेविक्रम की कथा प्रसिद्ध।
विश्वकर्मा, हरिश्चन्द्र, कमलास्यक, शौरि, अङ्गद, षण्मुख, भृङ्गि-देवेन्द्र, कुबेर, कुशिक मुनि, सरस्वती, बलि यत्र, किन्नरेश,	सं० म०,	पौरा०	(?)	अन्यत्र कहीं कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं।

प्राचीन युग के संगीत-शास्त्र के विवरण का उपसंहार करते समय पुराणों में संगीत-विषय के अल्पाधिक उल्लेख का परिचय पा लेना अस्थानीय न होगा। विष्णुधर्मोत्तर, वायुपुराण तथा मार्कण्डेयपुराण में इस विषय का कुछ उल्लेख मिलता है। विष्णुधर्मोत्तर के १८ वें और उन्नीसवें अध्यायों मे संगीत का विषय मिलता है, जो मुख्यतः सूत्र-शैली के गद्य में है। वायुपुराण के द्वितीय खण्ड के २४ वें और २५ वें अध्याय में संगीत का संक्षिप्त प्रतिपादन है। मार्कण्डेयपुराण में २१ वें अध्याय में कम्बल अश्वतर इन दो गान्धर्वों की कथा के अतिरिक्त संगीत-विषय का सीधा प्रतिपादन नहीं मिलता।

इस प्रकार हमने प्राचीन युग के ग्रन्थकारों का अल्प परिचय पा लिया। नाट्यशास्त्र के विख्यात टीकाकार अभिनवगुप्त इस युग के अन्तिम प्रतिनिधि माने जा सकते हैं, क्योंकि उनका काल दसवीं शताब्दी ही है। अब हम सन्धिकाल (तेरहवीं चौदहवीं शताब्दी) को ले लेते हैं।

२. सन्धिकाल (तेरहवीं, चौदहवीं सदी) इस काल के प्रतिनिधि ग्रन्थकार हैं नान्यदेव, शाङ्र्गदेव, 'संगीत रत्नाकर' के टीकाकार सिंहभूपाल, पार्श्वदेव, सोमेश्वर, शारदातनय तथा विद्यारण्य। इन्हें हम क्रमशः ले लेते हैं।

नान्यदेव

नान्यदेव का अप्रकाशित ग्रन्थ 'भरत भाष्य', नाम से तो भरत के नाट्यशास्त्र का भाष्य सा जान पड़ता है, किन्तु इसके अधुना उपलब्ध अंश में यह भरत के 'गेयाधिकार' (संगीत संबन्धी अध्यायों) के आधार पर रचित स्वतन्त्र ग्रन्थ है। इसकी केवल एक ही पाण्डुलिपि पूनास्थित 'भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीच्यूट' में सुरक्षित है और उसकी फ़ोटो-कॉपी हमारी प्रेरणा से काशी विश्वविद्यालय स्थित श्री कलासंगीत भारती के शोध-विभाग में संगृहीत हुई है। इस फ़ोटो-कॉपी के आधार पर निम्नलिखित सामान्य (Genreal) बातें इस ग्रन्थ के विषय में कही जा सकती हैं:—

(१) अध्यायों के अन्त में ग्रन्थ के लिये 'भरतभाष्य' अथवा 'सरस्वतीहृदयालङ्कार' अथवा 'भरतवार्त्तिक' इन विभिन्न नामों का प्रयोग मिलता है।

(२) कहीं-कहीं अध्यायों के अन्त में 'वाचिकांशे' ऐसा उल्लेख मिलता है, जिससे ऐसा प्रबल अनुमान होता है कि यह ग्रन्थ मूलरूप में बहुत ही विराट् रहा होगा, जिसमें आङ्गिक, वाचिक, सात्विक और आहार्य चारों प्रकार के अभिनय का पूरा विवरण दिया गया होगा। किन्तु उपलब्ध अंश केवल वाचिकाभिनय के अङ्ग संगीत से ही संबन्ध रखता है।

(३) भरत के उद्धरण पग-पग पर देते हुए भी कहीं-कहीं उनसे थोड़ा बहुत मतभेद प्रगट किया गया है।

(४) ग्रन्थ का उपलब्ध अंश बहुत खण्डित अवस्था में है और पाठ भी अधिकांश स्थलों पर बहुत अस्पष्ट है। इस प्रकरण के अन्त में हम ने इस की जो विषय-सूची दी है उसमें यह स्पष्ट किया है कि किस किस स्थान पर यह ग्रन्थ खण्डित है। खण्डित होने के अलावा इसमें क्रम-विपर्यय और पुनरुक्ति की भी भरमार है।

(५) ग्रन्थ में गद्य खण्ड और श्लोक,—दोनों हैं और भरत के अतिरिक्त कश्यप, दत्तिल, नारद, बृहत्कश्यप, मतङ्ग, याष्टिक, विशाखिल, देवराज, कालिकापुराण, भागवतपुराण आदि के अनेकों उद्धरण दिये गए हैं। पाणिनि, नारद के साथ साथ आपिशालि का भी नाम लिया गया है। 'आपिशालि' से संभवतः वही विख्यात प्राचीन वैय्याकरण अभिप्रेत होंगे जिनका पाणिनि ने भी नामोल्लेख किया है।

(६) विषय प्रतिपादन की दृष्टि से ग्रन्थ के बहुत से स्थल महत्वपूर्ण हैं, जिन की चर्चा यहाँ विस्तारभय से छोड़ दी गई है।

(७) ग्रन्थकार ने अनेकों बार अपने नाम नान्यदेव या नान्यपति के साथ 'मिथिलाधिपति', 'महासामन्ताधिपति', 'धर्मावलोक' आदि विशेषणों का प्रयोग किया है।

ये ग्रन्थकार नान्यदेव मिथिला के राजा थे, यह तो ग्रन्थ में आए हुए उल्लेखों से स्पष्ट है और इतिहास में इस नाम के राजा सुविदित हैं। ये मिथिला में कर्णाटक का राज्य स्थापित करने वाले माने गए हैं और इनका राज्यकाल १०९७ ई० से ११४७ ई० कहा गया है। बंगाल के राजा विजयसेन (राज्यकाल १०९५-११५८ ई०) ने इन्हें हराया था ऐसा भी इतिहास में प्रसिद्ध है। इस प्रकार नान्यदेव का काल ११०० ई० के आसपास निश्चित रूप से माना जा सकता है, किन्तु एक बात से बड़ी उलझन खड़ी होती है। एक ओर शार्ङ्गदेव ने 'संगीत रत्नाकर' में पूर्वाचार्यों की सूची में नान्यदेव को स्थान दिया है, और दूसरी ओर नान्यदेव ने अपने ग्रन्थ के आरंभ में ही निःशङ्कदेव (शार्ङ्गदेव का प्रसिद्ध उपनाम) का उल्लेख किया है। यथा :—

लक्ष्यप्रधानं खलु शास्त्रमेत,—न्निःशङ्कदेवोऽपि तदेव वष्टि।

यल्लक्ष्म लक्ष्यप्रतिबन्धकं स्या —,त्तदन्यथा नेयमिति ब्रुवाणः॥

... ...

नोपाधि ददे (नोपाददे) घस्य विकारभेदं निःशङ्कसूरिः खलु कूटताने।

नान्यदेव के राज्य काल के लिये इतिहास का साक्ष्य और शार्ङ्गदेव द्वारा उन्हें पूर्वाचार्यों में स्थान दिया जाना ये दोनों बातें जहाँ एक ओर उन्हें शार्ङ्ग देव का पूर्ववर्ती सिद्ध करती हैं, वहाँ दूसरी ओर ऊपर लिखे उल्लेख इस निष्कर्ष में प्रबल बाधा खड़ी करते हैं। शार्ङ्ग देव का काल निश्चित रूप से १३ वीं शताब्दी माना गया है। इसलिये केवल नान्यदेव के ऊपर दिये हुए उल्लेख के आधार पर शार्ङ्गदेव को नान्यदेव का समकालीन भी नहीं मान सकते। तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में या उस के बाद, यानी शार्ङ्गदेव के काल के बाद कोई 'नान्यदेव' मिथिला के राजा हुए हों ऐसा भी इतिहास में कहीं ज्ञात नहीं इसलिये 'भरतभाष्य' के काल-निर्णय में अभी कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता नीचे लिखे विकल्प ही कहे जा सकते हैं :—

(१) या तो 'भरतभाष्य' में आया हुआ 'निःशङ्कदेव' का उल्लेख प्रक्षिप्त है। यह संभव भी है, क्योंकि पाण्डुलिपि बहुत खण्डित है और पाठ की तुलना के लिये अन्य कोई प्रतिलिपि अभी उपलब्ध नहीं।

(२) या इस उल्लेख के 'निःशङ्कदेव' शार्ङ्गदेव से भिन्न रहे होंगे जो कि नान्यदेव के पूर्ववर्ती होंगे।

(३) या फिर 'नान्यदेव' नामक ऐसे कोई दूसरे मिथिला के राजा रहे होंगे, जो शार्ङ्गदेव के परवर्ती हों और इतिहास में अज्ञात हों। और यही यदि सत्य हो तो फिर शार्ङ्ग देव ने जिन नान्यदेव का उल्लेख किया है, वे भी 'भरतभाष्य' के रचयिता नान्यदेव से भिन्न कोई और होने चाहिए।

नान्यदेव के काल के संबन्ध में एक और बात बहुत ही विचारणीय है, जिसकी ओर संभवतः अब तक विद्वानों का ध्यान नहीं गया है। अभिनव गुप्त ने 'अभिनव-भारती' में नान्यदेव का और उनके ग्रन्थ का नाम लिया है और उद्धरण भी दिया है। यथा—

यदुक्तं नान्यदेवेन स्वभरतभाष्ये—

अत्र वर्णशब्देन गीतिरभिधीयते। नाक्षरविशेषः, नापि षड्जादिसप्तस्वराः पदग्रामे त्वनियमादेव स्वेच्छया प्रयुज्यन्ते। षड्जादि-स्वरान्तानामप्यविशेषेण चावरोहादिधर्माणां प्रत्येव समुपलभ्यते। अतो वर्ण एव गीतिरित्यवस्थितम्। सोऽपि चतुर्विधो मागध्यादिः।

(ना० शा० बड़ोदा संस्करण, प्रथम खण्ड, पृ० २५५)

यह उद्धरण नान्यदेव को अभिनवगुप्त का समकालीन मानने की प्रेरणा देता है क्योंकि दूसरी ओर नान्यदेव ने भी अभिनवगुप्त का नाम लिया है। उस अवस्था में तो नान्यदेव का काल दसवीं शताब्दी के बाद हो ही नहीं सकता। किन्तु मिथिला के राजा 'नान्यदेव' का जो ऐतिहासिक काल स्थिर किया गया है, वह ऐसा मानने में अवश्य बाधक है। दूसरी ओर शार्ङ्गदेव वाली समस्या भी है ही जिसका हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं। जो कुछ भी हो, अभिनवगुप्त का उल्लेख बड़े महत्त्व का है और बहुत संभव है कि आगे चल कर ऐसे अन्य प्रमाण मिल जाएँ जिनसे नान्यदेव को अभिनवगुप्त का समाकालीन माना जा सके। इनका काल अनिश्चित होने के कारण इन्हें सन्धिकाल में रखा गया है। यदि ये अभिनव गुप्त के समाकालीन माने जा सकें, तो इनका स्थान प्राचीन युग में ही होगा।

शार्ङ्गदेव

शार्ङ्गदेव का 'सङ्गीत रत्नाकर' सर्वांगीण और विस्तृत विषय प्रतिपादन की दृष्टि से सचमुच भारतीय सङ्गीत का 'आकर' ग्रन्थ है, जैसा कि इस प्रकरण के अन्त में दी हुई इसकी विषय-सूची से स्पष्ट होगा। इनके काल निर्णय में कोई कठिनाई नहीं होती, क्योंकि ग्रन्थ के मंगलाचरण में ही इन्होंने अपना परिचय निम्नलिखित रूप से दे दिया है।

"मेरा वंश काश्मीर का है, और उसके मूलपुरुष हैं वृषगण। उसी वंश के भास्कर नामक एक पुरुष काश्मीर से दक्षिण भारत में चले आए थे। उनके पुत्र हैं श्रीसोढल, जिनका मैं पुत्र हूँ। श्रीसोढल के आश्रयदाता राजा सिंघण थे।"

राजा सिंघण यादव—राज्य के शासक थे और उनकी राजधानी देवगिरि (आधुनिक दौलताबाद) में थी। उनका राज्यकाल १२१० ई० से १२४७ ई० माना गया है। इसलिए उनके आश्रित सोढल के पुत्र शार्ङ्गदेव का काल भी इसके आसपास ही माना जा सकता है।

'संगीत रत्नाकर' पर प्रायः सात टीकाएँ लिखी गई हैं ऐसी प्रसिद्धि है। किन्तु इस समय तो संस्कृत की दो ही टीकाएँ प्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं—एक सिंहभूपाल की और दूसरी कल्लिनाथ की। इनके अतिरिक्त गंगाधर की रचित एक हिन्दी टीका की हस्तलिखित प्रति, काशीस्थित रामनगर-महल-लाइब्रेरी में सुरक्षित पाण्डुलिपि के आधार पर श्रीकला संगीत भारती के शोध-विभाग में तैयार कराई गई है। किन्तु वास्तव में यह टीका न होकर अनुवाद मात्र है।

सिंहभूपाल

अलंकार शास्त्र में सिंहभूपाल का नाम उनके रचित 'रसार्णव-सुधाकर' के कारण बहुत प्रसिद्ध है। कुछ विद्वानों ने ऐसी शंका की है कि 'संगीत रत्नाकर' के टीकाकार शायद 'रसार्णव-सुधाकर' के रचयिता सिंहभूपाल से भिन्न रहे होंगे। किन्तु प्रमाणों के अभाव में यह शंका निराधार प्रतीत होती है। सिंह भूपाल वेंकटगिरि के राजा अनन्त (अथवा अनपोत) के पुत्र थे।[1] ये लोग स्वयं दो भाई थे और बड़े भाई की मृत्यु के बाद सिंहभूपाल ही पिता के राज्य के उत्तराधिकारी हुए। इनके पिता का राज्य विन्ध्याचल और श्री शैल के मध्यवर्ती भाग में था, ऐसा इन्होंने लिखा है। इनके पिता का राज्यकाल १३४० ई० से १३६० ई० तक माना गया है। इसलिये इनका काल १४ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जा

---

१. रसार्णवसुधाकर' के आरंभ में सिंहभूपाल ने अपने वंश का विस्तार से वर्णन किया है, जिसका अवतरण यहाँ अनावश्यक समझा गया है। केवल एक ही उल्लेख यहाँ रुचिकर होगा और वह यह कि सिंहभूपाल ने अपने वंश को शूद्र जाति का बताया है।

३. दामोदर पंडित—समय १७ वीं शताब्दी का पूर्वार्ध—ग्रंथ का नाम 'संगीत दर्पण'—राग-रागिणी पद्धति का यह प्रमुख ग्रंथ माना जाता है।

३. श्रीनिवास—समय १७ वीं शताब्दी का अन्तिम भाग—ग्रंथ का नाम 'राग-तत्त्व-विबोध'—ये प्रायः सभी विषयों में अहोबल के अनुयायी जान पड़ते हैं।

४. हृदयनारायण देव—समय १७वीं शताब्दी का अन्तिम भाग—ग्रंथों के नाम 'हृदय कौतुक' और 'हृदय प्रकाश'।

५. लोचन—समय निश्चित नहीं।[1] ग्रन्थ का नाम रागतरंगिणी'।

६. भावभट्ट—समय सत्रहवीं शताब्दी का अन्त अथवा अट्ठारहवीं का आरम्भ। ग्रंथों के नाम—'अनूपसंगीत-विलास, 'अनूप संगीत रत्नाकर'—'अनूपसंगीतांकुश'।

'संगीतराज' और महाराणा कुम्भा

मध्ययुग के संगीत ग्रंथों में "संगीतराज" का बहुत अधिक महत्त्व है। इसका केवल एक खंड अनूप संस्कृत लाईब्रेरी बीकानेर से डा० कुन्हन राजा के संपादकत्व में सन् १९४६ में प्रकाशित हुआ था। संपादक ने भूमिका में इस ग्रंथ के बारे में जो जानकारी दी है, उससे यह प्रतीत होता है कि यह ग्रंथ बृहत्-आकार की दृष्टि से और विषय प्रतिपादन की प्रौढ़ता के कारण केवल मध्ययुग में ही नहीं, अपितु हमारे पूरे संगीतशास्त्र में एक विशिष्ट स्थान रखता है। दुर्भाग्यवश इसकी ओर अभी तक विद्वानों का यथोचित ध्यान नहीं जा सका, और इसी कारण इसकी महत्ता अप्रकाशित ही रही है। उसे प्रकाश में लाने के लिये यहाँ हम डा० कुन्हन राजा द्वारा दी गई जानकारी का कुछ अंश उद्धृत करते हैं। आशा है इस उद्धरण से विद्वानों और विद्यार्थियों में इस ग्रंथ की चर्चा होगी, और इसे यथोचित स्थान मिल सकेगा।

अनूप संस्कृत लाईब्रेरी में इस ग्रंथ की बारह पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं जिनमें से केवल एक ही पूर्ण है। ग्रंथ में पाँच रत्नकोश हैं जिनमें से केवल पहला ही प्रकाशित हुआ है। पूरे ग्रंथ में सोलह हजार श्लोक हैं और इस प्रकार इसका आकार 'संगीत रत्नाकर' से प्रायः तिगुना और भरत के नाट्यशास्त्र से प्रायः दुगुना है। यह सम्पूर्ण ग्रंथ जब कभी प्रकाशित होगा तब बृहत् आकार के कारण हमारे उपलब्ध संगीतशास्त्र में बेजोड़ ठहरेगा। इस प्रकरण के अन्त में दी हुई इसकी संक्षिप्त विषय सूची से यह स्पष्ट होगा कि इसका विषय-प्रतिपादन कितना सर्वांङ्गीण है।

इस ग्रंथ के लेखक ने अपने काल में उपलब्ध समग्र साहित्य का अध्ययन करके और तत्कालीन लक्ष्य या प्रचार को ध्यान में रखते हुए आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाया है। इसलिए इसमें केवल गतानुगतिक भाव से परम्परा का अनुसरण नहीं, बल्कि लक्ष्य और लक्षण का या प्रयोग और शास्त्र का समन्वय पाया जाता है, ऐसा संपादक का कहना है। इसलिए इसका पूरा रूप प्रकाशित होने पर तत्कालीन संगीत पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ सकेगा।

इस ग्रंथ की सभी पाण्डुलिपियों में लेखक का नाम कालसेन या कुम्भकर्ण दिया गया है। संपादक ने ऐसा मत स्थापित किया है कि इसके वास्तविक लेखक महाराणा कुम्भा थे और किसी कारण-विशेष से उसकी पाण्डुलिपियों में भिन्न नाम के लेखक का उल्लेख किया गया होगा। जब तक इस विषय पर और अधिक गहन अध्ययन नहीं होता तब तक संपादक

---

1. लोचन कवि ने जयदेव और विद्यापति का नाम लिया है। विख्यात मैथिल कवि विद्यापति का काल चौदहवीं शताब्दी है। इसलिये लोचन कवि का काल चौदहवीं शताब्दी के बाद मानने की प्रवृत्ति हो सकती है। किन्तु उनकी 'रागतरंगिणी' में उसका रचना-काल १०८२ शक संवत् दिया है जो १११६ ई० बैठता है। यदि इसे ठीक समझा जाय तो ऐसा मानना होगा कि लोचन ने जिस विद्यापति का नाम लिया है वे कोई अन्य विद्यापति रहे होंगे।

के मत को मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। महाराणा कुम्भा सन् १४३३ में राज्य सिंहासन पर आरूढ़ हुए थे और तैंतीस वर्ष तक उन्होंने राज्य किया। उनके राज्यकाल का बहुत सा भाग रणक्षेत्र ही में बीता, क्योंकि उनका राज्य गुजरात और मालवा के बीच था और इन दोनों प्रदेशों के सुलतान उन दिनों में बहुत शक्तिशाली थे। राजपूत शासकों में महाराणा कुम्भा का बड़ा ऊँचा स्थान है। वे आजीवन अपराजित रहे, वे पण्डितप्रवर, कवि, उच्चकोटि के लेखक, अद्वितीय संगीतकार, लोकरक्षक, धर्म-पालक, न्याय के पक्षपाती और दृढ़ प्रशासक थे। मन्दिरों और किलों के निर्माण द्वारा उन्होंने स्थापत्य कला के उन्नयन में भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। उनका काल ऐसा था कि कन्नौज के श्रीहर्ष या धार के भोजराज की भाँति उन्हें संस्कृत साहित्य में प्रसिद्धि नहीं मिल पाई। इतिहास की आँखें महाराणाप्रताप और अकबर की लड़ाई पर ही केन्द्रित रहने के कारण इन्हें यथायोग्य ख्याति नहीं मिल सकी। इन्होंने कुछ अन्य ग्रंथ भी लिखे थे जिनमें से नीचे लिखे आज हमारी जानकारी में है।

१—गीतगोविन्द पर टीका, २—सूड प्रबन्ध, ३—चण्डीशतक पर टीका, ४—कामशास्त्र पर एक ग्रंथ जो खण्डित अवस्था में अनूप संस्कृत-लाइब्रेरी में उपलब्ध है। ५—उनके स्वरचित गीत स्तोत्र आदि उन्होंने स्वयं राग-ताल में बाँध कर ऐसी रचनाओं का कोई संग्रह प्रस्तुत किया होगा ऐसा उनके अन्य ग्रन्थों से पता चलता है।

"संगीतराज" के स्थान पर कहीं-कहीं किसी-किसी पाण्डुलिपि में "संगीतमीमांसा" यह नाम भी मिलता है।

दक्षिण भारतीय पद्धति

१. रामामात्य—समय १६ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध—ग्रंथ का नाम 'स्वरमेल-कलानिधि'—यह ग्रंथ दक्षिण पद्धति का आधार-स्तंभ है। मुखारी मेल को शुद्ध स्वर सप्तक मानना और १९ मेलों में सब रागों का वर्गीकरण, ये दो इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं।

२. सोमनाथ—समय १७ वीं शताब्दी का पूर्वार्ध—ग्रंथ का नाम 'राग विबोध'।

३. गोविन्द दीक्षित—समय १७ वीं शताब्दी का पूर्वार्ध—ग्रंथ का नाम 'संगीत सुधा'—इस ग्रंथ में रघुनाथ भूप लेखक के रूप में जुड़े हुए हैं, किन्तु व्यंकटमखी का कहना है कि वास्तव में यह उसके पिता गोविन्द दीक्षित ने लिखा था और अपने आश्रयदाता रघुनाथ भूप को समर्पित किया था।

४. व्यंकटमखी—१७ वीं शताब्दी का पूर्वार्ध—ग्रंथ का नाम 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका'—७२ मेल पद्धति के ये आविष्कारक हैं।

५. तुलजाधिप—समय १८ वीं शताब्दी का पूर्वार्ध—ग्रंथ का नाम 'संगीतसारामृत।'

मध्ययुग के ग्रन्थकारों का अतिशय संक्षिप्त विवरण देने के बाद इस प्रकरण की समाप्ति में नीचे लिखे पाँच ग्रंथों की संक्षिप्त विषय-सूची दी जा रही है—

१. भरत का नाट्यशास्त्र २. मतंग का 'बृहद्देशी' ३. शार्ङ्गदेव का 'संगीत रत्नाकर' ४. नान्यदेव का 'भरतभाष्य' और ५. महाराणा कुम्भा का 'संगीतराज'।

ये विषय सूचियाँ देने का उद्देश्य उन प्रमुख ग्रंथों से विद्यार्थियों का परिचय कराना ही है।

मध्ययुग के बाद उन्नीसवीं शताब्दी से आधुनिक युग का प्रारम्भ माना गया है। इस युग के ग्रंथकारों का विवरण इस ग्रंथमाला के आगामी (छठे) भाग में दिया जाएगा।

भारतीय संगीतशास्त्र के मुख्य उपलब्ध ग्रंथों की विषय-सूची

१. भरत नाट्यशास्त्र

भरत के नाट्यशास्त्र का नाम भारतीय संगीत के सभी विद्यार्थियों ने अवश्य सुना होगा और उसके विषय में कुछ धुँधली सी धारणा बना रखी होगी। यहाँ हम उस समूचे ग्रंथ की संक्षिप्त विषय-सूची दे रहे हैं जिससे संगीत के विद्यार्थियों को उसकी विविध विषय वस्तु की ठोस कल्पना हो सके और वे यह समझ सकें कि भरत को हमारे संगीत का प्रमुख और आदिम आचार्य क्यों और कैसे माना जाता है ? इस विषय-सूची में रस, भाव और काकु संबंधी जितने अंश हैं, उनका बिल्कुल सीधे रूप से संगीत के साथ संबंध आज भले ही दिखाई न दे, किन्तु विद्यार्थियों को यह ध्यान में रखना चाहिये कि ये विषय संगीत से विच्छिन्न नहीं है ; बल्कि इनको यथोचित समझ-पूर्वक संगीत-साधना में स्थान देने से ही संगीत का भाव-पक्ष पुष्ट हो सकता है। भावपक्ष की पुष्टि से ही संगीत का वास्तविक उद्देश्य पूरा हो सकता है यह कहने की आवश्यकता नहीं है।

कई जगह तो भरत ने संगीत के साथ रस का सीधा संबंध जोड़ दिया है जैसा कि इस विषय-सूची से स्पष्ट होगा। किन्तु जहाँ वैसे स्थूल रूप से यह संबंध जुड़ा हुआ दिखाई न भी देता हो वहाँ भी उन-उन विषयों को संगीत से बिल्कुल विच्छिन्न नहीं समझना चाहिये। उस विच्छेद से संगीत की अवनति हुई है और वह सामान्य जनमानस की रुचि को खो बैठा है। इस विच्छेद को दूर करके रस, भाव और काकु के साथ संगीत का संबंध जोड़ना ही आज के शास्त्रकार का परम कर्तव्य है। भरत का नाट्यशास्त्र किस प्रकार एक ओर संगीत के शास्त्र का पूर्ण सारसंग्रह है और दूसरी ओर संगीत के भाव पक्ष का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है, यह दिखाने के अभिप्राय से ही हम उसकी विषय-सूची दे रहे हैं। जिन्हें अभी तक इस ग्रंथ का अध्ययन करने का अवसर नहीं मिला है वे इस विवरण से उसका कुछ परिचय पा जायें और उसके अध्ययन के लिये उनकी जिज्ञासा बढ़े यही प्रयोजन है।

संक्षिप्त विषय सूची

प्रथम अध्याय— नाट्यशास्त्रोत्पत्तिः

इन्द्रादि देवताओं की प्रार्थना से ब्रह्मा द्वारा नाट्यवेद का निर्माण—ऋग्वेद से 'पाठ्य', सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय, अथर्ववेद से रस को लेकर नाट्यवेद की रचना—नाट्य का स्वरूप और विनोद के साथ-साथ हितोपदेश के रूप में उसका लोक-कल्याणकारी उपयोग।

द्वितीय अध्याय—प्रेक्षागृहलक्षणम्।

विभिन्न प्रकार के प्रेक्षागृह की निर्माण-विधि।

तृतीय अध्याय—रङ्गदैवतपूजनम्।

नाट्य के आरम्भ से पूर्व निर्विघ्न सफलता के लिये रङ्ग देवता की पूजा का विधान।

चतुर्थ अध्याय—ताण्डवलक्षणम्।

पूर्वरङ्ग की विधि में अर्थात् नाट्य आरम्भ के पूर्व के क्रिया कलाप में महादेव के ताण्डव नृत्य के आयोजन की विधि और उस नृत्य के अंगों का विस्तृत विवरण।

पञ्चम अध्याय—पूर्वरङ्गविधिः

तीसरे अध्याय में बताई हुई रंग देवता की पूजा का पुनः विस्तार से वर्णन।

षष्ठ अध्याय—रसविकल्पः।

रस का लक्षण और व्याख्या, भाव का लक्षण और व्याख्या, आठ रसों का उनके उपकरणों सहित वर्णन—रसों के देवता और वर्ण।

सप्तम अध्याय—भाव-व्यञ्जनम्।

भाव की सामान्य व्याख्या—विभाव, अनुभाव की व्याख्या—स्थायी और व्यभिचारियों का पार्थक्य—८ स्थायी और ३३ व्यभिचारियों का वर्णन—सात्विक भावों का विवरण।

अष्टम अध्याय—उपांगविधानम्।

अभिनय की व्याख्या और उसके भेद—शिर द्वारा विविध अभिनय—विभिन्न भावों और रसों के अनुकूल दृष्टि द्वारा अभिनय—भ्रू, नासिका, गण्ड (गाल), ओष्ठ, चिबुक (ठोढ़ी), मुखराग (चेहरे का रंग) और ग्रीवा (गर्दन) द्वारा विभिन्न प्रकार के अभिनय।

नवम अध्याय—हस्ताभिनयः।

हाथों द्वारा विभिन्न प्रकार के अभिनय का वर्णन।

दशम अध्याय—शरीराभिनयः।

पार्श्व, जठर, कटि, ऊरू इत्यादि से विभिन्न अभिनय।

एकादश अध्याय—चारीविधानम्।

पैरों के विभिन्न चालन द्वारा अभिनय।

द्वादश अध्याय—मण्डलविधानम्।

एकादश अध्याय में वर्णित चारी से संबंधित अन्य पदचालन।

त्रयोदश अध्याय—गतिप्रचारः।

गति या चाल की विविधता—उत्तम, मध्यम, अधम प्रकृति के पात्रों की भिन्न-भिन्न गति—विभिन्न रसों और भावों के अनुकूल गति के भेद—बाल्य, यौवन आदि अवस्था-भेद से गति-भेद—स्त्री पुरुष का गति-भेद इत्यादि।

चतुर्दश अध्याय—प्रवृत्तिधर्मव्यञ्जनम्।

रंगमंच पर पात्रों के प्रवेश और निर्गमन (बाहर जाने) की विधि तथा रंगमंच के विभाग या कक्षों का विधान।

पञ्चदश अध्याय—वाचिकाभिनये छन्दोविभागः।

वाणी द्वारा अभिनय में पाठ्य (गीत से भिन्न) के भेद और अंग—छन्दविधि—वृत्त-विभाग—छन्दों की प्रस्तार संख्या—आठ गण इत्यादि।

षोडश अध्याय—वृत्तानि सोदाहरणानि।

प्रायः ७० वृत्तों का उदाहरण सहित वर्णन।

सप्तदश अध्याय—वागभिनयः।

काव्य में उपयोगी ३६ लक्षण—४ अलंकार—काव्यदोष—काव्यगुण—अलंकारादि का रस में विनियोग।

अष्टादश अध्याय—भाषाविधानम् ।

संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं का नाट्य के पात्रों के संस्कार-भेद और देश-भेद के अनुसार प्रयोग ।

एकोनविंशति अध्याय—काकुस्वरव्यञ्जनम् ।

नाट्य में पात्रों की सम्भाषण-विधि—७ स्वरों का रसों में विनियोग—३ स्थान—पाठ्य में उनका प्रयोग—४ वर्ण द्विविध काकु—६ अलंकार—६ अंग और उनका रसगत प्रयोग—विराम के भेद और अभिनय में उनका प्रयोग इत्यादि ।

विंश अध्याय—दशरूपविधानम् ।

दश प्रकार के रूपकों का विस्तार से वर्णन ।

एकविंश अध्याय—सन्ध्यङ्गविकल्पः ।

रूपक की पंच संधियों और पच अवस्थाओं का विवरण ।

द्वाविंश अध्याय—वृत्तिविकल्पः ।

नाट्योपयोगी चार वृत्तियों का विस्तार से वर्णन ।

त्रयोविंश अध्याय—आहार्य्याभिनयः ।

परदे के पीछे से किये जाने वाले नाट्यप्रयोग तथा पात्रों की वेशभूषा का विस्तृत विवरण ।

चतुर्विंश अध्याय—सामान्याभिनयः ।

सत्व की व्याख्या और नाट्य में उसका महत्व—सत्त्व-भेद—स्त्रियों के स्वभावज अलंकार आदि—पुरुषों के सत्त्व-भेद—स्त्री पुरुषों के शील-भेद—अष्ट नायिका इत्यादि ।

पञ्चविंश अध्याय—बाह्योपचारः ।

वैशिक पुरुष (कलाओं का विशेषज्ञ अथवा वैश्या में अनुरक्त) के गुण—दूती—उसके कर्म और गुण—स्त्री पुरुष की अनुरक्ति और विरक्ति के कारण—नारियों की त्रिविध प्रकृति—पंचविध पुरुष—स्त्रियों पर साम, दाम, भेद, दंड का उपयोग ।

षड्विंश अध्याय—चित्राभिनयः ।

अंग-अभिनय विवरण में जो अभिनय प्रकार छूट गये हैं उनका वर्णन ।

सप्तविंश अध्याय—सिद्धिव्यञ्जनम् ।

नाट्य की सिद्धियों का वर्णन ।

अष्टाविंश अध्याय—आतोद्यविधिः ।

आतोद्य (वाद्यों) के चार भेद—उनके लक्षण और विविध प्रयोग—स्वरगत विधि—तालगत विधि—स्वर-श्रुति-ग्राम—दो ग्रामों की १४ मूर्च्छनाएँ—८४ मूर्च्छना तानें—साधारण विधि—स्वर-साधारण, जाति-साधारण—जाति, शुद्धा विकृता मिलाकर १८ जातियाँ—उनके ग्रह, अंश, न्यास आदि का विवरण ।

एकोनत्रिंश अध्याय—ततातोद्यविधानम् ।

जातियों का रसानुकूल प्रयोग—वाद्य प्रयोग विहित स्वर-वर्ण अलंकार—गीतालंकार विधि—वर्णविहीन अलंकार—

४ धातु—३ वृत्तियाँ—साधु-वाद्य के लक्षण—वैणव (वीणा संबंधी) विविध वाद्य—भिन्न प्रकार की वीणाएँ और उनकी वादन-विधि ।

त्रिंश अध्याय—सुषिरतोद्यविधानम् ।

सुषिर वाद्यों का वर्णन ।

एकत्रिंश अध्याय—तालव्यञ्जनम् ।

कला, लय—विभिन्न ताल और उनका विवरण ।

द्वात्रिंश अध्याय—ध्रुवाविधानम् ।

ध्रुवा के ५ भेद तथा उनके उदाहरण और छन्दविधि—पंचविध गान—गायक वादकों के गुण ।

त्रयस्त्रिंश अध्याय—वाद्याध्यायः ।

अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति, उनके अंग प्रत्यंग भेद और वादन-विधि—इनके वादन की १८ जातियाँ इत्यादि—वादकों के लक्षण ।

चतुस्त्रिंश अध्याय—प्रकृतिविचारः ।

नाट्य के पात्रों की प्रकृति या स्वभाव का विश्लेषण—उत्तमा, मध्यमा, अधमा तीन प्रकार की प्रकृति, संकीर्ण प्रकृति—चतुर्विध नायक—अन्तःपुर में रहने वाली स्त्रियों के विभाग ।

पञ्चत्रिंश अध्याय—भूमिका-पात्र-विकल्पः ।

किस प्रकार के अभिनेता को नाट्य में कौन से पात्र की भूमिका दी जाय, इसका विवेचन ।

षट्त्रिंश अध्याय—नाट्यावतारः ।

पूर्वरंगविधि में पूजा के विधान की पुनः स्पष्टता—पृथ्वी पर नट-वंश की उत्पत्ति—नाट्यशास्त्र का माहात्म्य ।

नोट :— यह विषय सूची नाट्यशास्त्र के चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ में प्रकाशित संस्करण के आधार पर बनाई गई है ।

ऊपर की विषय-सूची से यह स्पष्ट हुआ होगा कि भरत के नाट्यशास्त्र में २८ वें से ३३ वें अध्याय तक ६ अध्याय संगीत शास्त्र के साथ सीधा संबंध रखते हैं । इनमें से भी २८ वाँ, २९ वाँ ये दो अध्याय बहुत ही महत्व के है क्योंकि स्वर, श्रुति, ग्राम इत्यादि मौलिक विषयों का प्रतिपादन इन्हीं दो में किया गया है । इन ६ के अतिरिक्त नीचे लिखे ३ अध्याय संगीत शास्त्र के लिये विशेष महत्व के हैं :—

रस और भाव का निरूपक ६ ठा और ७ वाँ अध्याय तथा काकुस्वर-व्यञ्जना का प्रतिपादक १९वाँ अध्याय । ये तीनों ही संगीत के भावपक्ष के लिये बहुत उपयोगी हैं यह हम कह ही चुके हैं । इनके अतिरिक्त नायक-नायिका-भेद का विवरण तथा छन्द का निरूपण भी संगीत के लिये महत्व रखते हैं क्योंकि विभिन्न रागों के भावरूप का संबंध नायकनायिका-भेद से जोड़ा जा सकता है और छन्द के साथ तो ताल का अटूट संबंध है ही ।

२. मतंग के 'बृहद्देशी' के उपलब्ध अंश की संक्षिप्त विषय-सूची

इस ग्रंथ के प्रकाशित संस्करण में अध्यायों की संख्या नहीं दी गई है । केवल अन्तिम अध्याय के लिये लिखा है कि वह छठा अध्याय है । इसलिये अध्यायों की संख्या न देते हुए हम प्रकरणों के अनुसार यहाँ विषय-सूची दे रहे हैं ।

चतुर्थ अध्याय—प्रबन्धाध्यायः ।

विषय प्रवेश—गान्धर्व का लक्षण—गान का लक्षण और उसके निबद्ध, अनिबद्ध ये दो भेद—धातु का प्रबन्ध के अवयव के रूप में निरूपण—धातु के भेद—प्रबन्ध के भेद और अंग—प्रबन्धों का जाति-भेद—विभिन्न प्रबन्धों का विस्तार से निरूपण—पंचविध रूपक—गीत के गुण और दोष ।

पञ्चम अध्याय—तालाध्यायः ।

मार्गताल प्रकरणम् ।
प्रकरणाख्य गीत प्रकरणम् ।
देशीताल प्रकरणम् ।

षष्ठ अध्याय—वाद्याध्यायः ।

१. तत वाद्य, उनके भेद, प्रभेद और वादन प्रकार ।
२. सुषिर वाद्य, उनके भेद और वादन-विधि ।
३. अवनद्ध वाद्य, उनके भेद और वादन विधि—वाद्य-प्रबन्ध इत्यादि ।
४. घन वाद्य, उनके भेद, वाद्यों के गुण-दोष, वादकों के गुण दोष ।

सप्तम अध्याय—नर्तनाध्यायः ।

नाट्योत्पत्ति, नाट्य का मोक्ष-साधनत्व—नाट्य, नृत्य और नृत्त की व्याख्या ।
१. शिरोभेदाः—शिर द्वारा विभिन्न अभिनय का विवरण ।
२. हस्तभेदाः—हाथों द्वारा विभिन्न अभिनय ।
३. वक्षोभेदाः—वक्षःस्थल से अभिनय ।
४. पार्श्वभेदाः—पार्श्व द्वारा अभिनय ।
५. कटिभेदाः—कटि द्वारा अभिनय ।
६. चरणभेदाः—विभिन्न प्रकार के पदचालन ।
७. स्कन्धभेदाः—विभिन्न प्रकार के स्कन्धचालन ।
८. ग्रीवाभेदाः—ग्रीवा की विभिन्न स्थिति और गति द्वारा अभिनय ।
९. बाहुप्रकरणम्—बाहुओं द्वारा विभिन्न अभिनय ।
१०. वर्तनाः—बाहुओं की विभिन्न गतियों के परस्पर मिश्रण से बने हुए वर्तनों का विवरण ।
११. चालकभेदाः—बाहों पर विभिन्न मनोहारी क्रियाओं का नाम चालक—इनके भेद और प्रयोग विधि ।
१२. पृष्ठ और उदर का लक्षण ।
१३. जठरभेदाः ।
१४. ऊरुप्रकरणम् ।
१५. जंघाप्रकरणम् ।
१६. मणिबन्धप्रकरणम् ।
१७. जानुप्रकरणम ।
१८. उपांगभेदाः ।
१९. दृष्टिप्रकरणम्—विभिन्न रसों और भावों के अनुकूल दृष्टि-भेद ।

२०. भ्रूप्रकरणम्।
२१. पुष्पकरणम्—विभिन्न रस, भावानुकूल ओठों की अवस्था।
२२. तारकाप्रकरणम्—विभिन्न रस-भावानुकूल आँखों की पुतली की अवस्था।
२३. प्रकालप्रकरणम्।
२४. नासाप्रकरणम्।
२५. अनिलप्रकरणम्—श्वास, उच्छ्वास, निश्वास के भेद।
२६. अधरप्रकरणम्।
२७. दन्तकर्मप्रकरणम्।
२८. जिह्वाप्रकरणम्।
२९. चिबुकप्रकरणम्।
३०. वदनप्रकरणम्।
३१. पार्ष्णि-गुल्फ-करांगुलिभेदानां लक्षणम्।
३२. मुखरागप्रकरणम्।
३३. हस्तप्रचारभेदाः।
३४. नृत्तकरणप्रकरणम्—नृत्त के अंग प्रत्यंगों का विस्तार से वर्णन।
३५. नवरसलक्षणम्—नव रसों का उनके सम्पूर्ण उपकरणों सहित वर्णन।

ऊपर दी हुई 'रत्नाकर' की विषय-सूची देखने से यह विश्वास हो जाता है कि यह सचमुच संगीत का आकर ग्रंथ है जिसमें संगीत के सभी विषयों का पूरे विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। 'संगीत' में गीत, वाद्य, नृत्त—इन तीनों का समावेश मानने के कारण शार्ङ्गदेव ने एक (सातवाँ) अध्याय नर्तन पर लिखा है और नर्तन के अन्तर्गत ही नृत्त, नृत्य और नाट्य को ले लिया है। शार्ङ्गदेव के बाद का अधिकांश संगीत साहित्य केवल गीत से संबंधित रह गया था।

४. नान्यदेव के अप्रकाशित 'भरतभाष्य' की संक्षिप्त विषयसूची

प्रथम अध्याय

मङ्गलाचरण—ग्रन्थ के ३ भाग और तीनों का विषय-संग्रह—नादोत्पत्ति—२२ नाद यानी श्रुतियाँ—श्रुतियों से स्वर—स्वरों की विकृतावस्था—शुद्ध विकृत मिला कर १४ स्वर—गीतभेद—संगीत का माहात्म्य—ग्रंथ के १७ अध्यायों का विषय-वस्तु-संग्रह—चतुर्विध वाद्य—विविध वीणा और उनके भेद—गीत के दोष—भरत के मत से कंठ के दोष—कंठ के गुण—भरत के मत से गान और गायक के गुण।

द्वितीय अध्याय

शिक्षा शब्द की व्युत्पत्ति—वर्णोत्पत्ति—वर्णों के स्थान और प्रयत्न—उदात्त आदि स्वर—वर्णों की सवर्णता—नारद के मत से उदात्त आदि (वैदिक) स्वरों का निरूपण—वैयाकरणों के मत से शब्द का नित्यत्व—स्वर-सारणा।

तृतीय अध्याय

सात स्वरों के वर्ण, जाति, छन्द, ऋषि, देवता, उच्चारण करने वाले, उदात्त आदि संज्ञा, परस्पर विशेष संबंध, उत्पत्ति स्थान—तीन ग्राम—ग्राम का लक्षण—ग्रामों में श्रुति निदर्शन—काकली अन्तर स्वर—भरत के मत से मध्यमग्राम की श्रुतियाँ—गान्धारग्राम स्वर्ग में, उसका निरूपण, उसकी श्रुतियाँ—श्रुति का लक्षण, व्युत्पत्ति, जाति, नाम, उनकी स्वरों में स्थिति।

चतुर्थ अध्याय

मूर्च्छना निरूपण—चतुर्विध मूर्च्छना—तीन ग्रामों में २१ मूर्च्छना—मूर्च्छनाओं के देवता—नारद के मत से मूर्च्छनाओं के नाम—षाडव औडव लक्षण—तान लक्षण—तान संख्या—प्रस्तार—नारद के मत से तीनों ग्रामों की तान संख्या (४९)—भरत के मत से ८४ तानें—कश्यप आदि के मत से तान संख्या।

पञ्चम अध्याय—पाण्डुलिपि में नहीं है। किन्तु 'प्रतिज्ञा' में बताई हुई इसकी विषय-वस्तु (अलंकार और गमक) कुछ अंश में सप्तम अध्याय में मिल जाती है।

षष्ठ अध्याय

जाति निरूपण—शुद्ध-विकृता जातियाँ—ग्रह अंश आदि जाति-लक्षणों का निरूपण—प्रत्येक जाति का ग्रह, (उदाहरण सहित)—कपाल (७) उत्पत्ति—पाणिका लक्षण—१८ पाणिका।

सप्तम अध्याय

प्रसंगवश पुनः सप्त स्वर, तीन ग्राम आदि का कथन—रागोत्पत्ति—स्वर, ग्राम, मूर्च्छना की पुनरुक्ति—जाति-साधारण—स्वर-साधारण—तान—स्वर, श्रुति, श्रुतियों के रस—जाति लक्षण—ग्रह, अंग आदि लक्षण—अलंकार-भेद—४ वर्ण (स्थायी, संचारी आदि)—गीति और वर्ण का अभेद—मागधी आदि चतुर्विध गीति—इनमें से प्रत्येक के ५ भेद (शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, वेसरा और साधारणी)—अलंकार का महत्व—गमक नाम—गमक लक्षण—जाति के अंश के प्रभाव से गीतियों के रस और छन्द—गीतियों के देवता—ग्राम भेद से गान में ऋतु, काल आदि का नियम—शुद्धा आदि गीति-भेद से गान में काल नियम—रागों की अनन्तता—अंश का अभेद होने पर भी रागों में भेद—रागों का दुस्तरत्व (अपारता)—आलापक, रूपक, गमक, राग का लक्षण—ग्रामरागों के भेद, संख्या—भाषा, विभाषा, अन्तर भाषा राग—ग्रामराग और भाषा आदि रागों का विस्तृत विवेचन।

अष्टम अध्याय

ताल की मुख्यता—विदारी का लक्षण और भेद—गीत वस्तु और वस्तु के अंग—वृत्त, द्विविध—वस्तुगत विदारी—ताल के कुछ पारिभाषिक शब्दों का निरूपण—७ प्रकार के गीत—साम और ऋक् का लक्षण सामगान के उदाहरण—उसमें ताल आदि का नियम—भाषा विभाषा आदि के रस—त्रिविध गद्य—वृत्त ताल—वृत्त भेद से ताल भेद—पाठ्य और गेय—तीन स्थान और पाठ्य में उनका प्रयोग—४ वर्ण और उनका रसों में प्रयोग—द्विविधा काकु—६ अलंकार और ६ अंग—रसों में इनका प्रयोग—विराम के भेद और अभिनय में उनका प्रयोग।

नवम अध्याय

पाँच प्रकार के ध्रुवा—ध्रुवावृत्त—ध्रुवावृत्त की जातियाँ—समविषमादि भेद से ध्रुवा की मूल-जाति—संख्या-निरूपण—ध्रुवा के वार्णिक वृत्त (बहुत विस्तार)—ध्रुवा के मात्रावृत्त—गाथा नाम—उन्नीस ध्रुवा नाम—मात्रावृत्तों की विधि—ताल की अनन्तता—ध्रुवादि में मात्रा।

दशम अध्याय

लय—ताल—भिन्न प्रकार की द्विपदी—भंग उपभंगादि का विस्तृत विवेचन (उदाहरण सहित)

एकादश अध्याय

'मार्ग' लक्षण—'मार्ग' से देशी की उत्पत्ति—द्विविध गीताङ्ग—देशी गीतों में नाना देशों की भाषा का अनुकरण कर्तव्य—नानाविध तालात्मक गीत—प्रबन्ध गीत—प्रबन्धों के भेद (विस्तार से वर्णन)—वृत्तियाँ।

द्वादश अध्याय—(ततवाद्य—वीणा) (१)

रावण की तपस्या से वीणा की उत्पत्ति—वीणा का प्रयोजन और महात्म्य—वीणाओं के भेद (विस्तृत वर्णन)—वीणा का वैशिष्ट्य—नानाविध वीणा की निर्माण-विधि—मतंग के मत से वीणावादक का लक्षण—वीणा-वादन की विविध विधियाँ—चार धातु—चार धातुओं के चौंतीस भेद—भरत के मत से धातु के अन्तर्गत जातियाँ।

द्वादश अध्याय—(सुषिर-वाद्य)

सुषिर के भेद—बाँसुरी में ग्राम भेद से श्रुतियों के क्रम के अनुसार छिद्रों में भेद—सात छिद्रों में स्वरों की स्थिति—'व्यक्तादि' अंगुली-भेद से श्रुति संख्या का निरूपण—नारद-मत से उदात्तादि स्वर-भेद से श्रुति-संख्या निरूपण—गान में जो दोष हैं, वे ही दोष वेणु-वाद्यों को भी लागू—वेणुवाद्य में कण्ठदोष—वेणु का शरीरवीणा से एकीभाव—वेणुवादन का फल।

चतुर्दश अध्याय (पौष्कर या अवनद्ध वाद्य)

पुष्कर वाद्यों की उत्पत्ति का हेतु—शब्दलक्षण—शब्दभेद—वाद्यात्मक शब्द-भेद—पुष्करवाद्य में ध्वनिभांडवाद्य—वाद्यभेदों के लक्षण, परिमाण, आकृति—निर्माण-विधि—वादन-विधि—मार्ग का लक्षण—चार मार्ग—सम, विषम प्रचार—चतुर्विध ताल-साम्य—आठ प्रकार का वाद्य-साम्य—भरतोक्त वाद्यों की अठारह जातियाँ—वाद्य-जातियों के दस अंग—इक्कीस अलंकार—'नाट्य' और 'नृत्त' में पाँच वाद्यों का विनियोग-नियम—ताल-योग से वाद्य-नियम—छंद के अनुसार वाद्य-नियम—तालादि विषय में अल्पज्ञ का दोष—वाद्यप्रयोग का समय—फलश्रुति।

इस ग्रंथ के आरम्भ में लेखक ने बताया है कि इसमें कुल १७ अध्याय हैं किन्तु सोलहवाँ और सत्रहवाँ अध्याय पाण्डुलिपि में नहीं है। सोलहवें में छन्द और सत्रहवें में भाषा-विधान (संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश इत्यादि भाषाओं का कब कैसे प्रयोग किया जाय) देने की ग्रंथकार ने आरम्भ में ही प्रतिज्ञा की है। ये दोनों विषय ग्रंथ के उपलब्ध अंश में थोड़े बहुत कहीं-कहीं बिखरे पड़े हैं, किन्तु इन पर स्वतन्त्र अध्याय नहीं मिलते। पाण्डुलिपि में अध्यायों का निर्देश बहुत कम जगह किया गया है यानी कहाँ कौन सी संख्या का अध्याय शुरू हुआ और कहाँ उसका अन्त हुआ यह बहुत ही कम स्थानों पर बताया गया है। यहाँ हमने जो विषय-सूची दी है वह पहले अध्याय के आरम्भ में ही दी हुई ग्रंथकार की 'प्रतिज्ञा' के अनुसार बनाई गई है। कहीं-कहीं वर्णित विषयों का क्रम 'प्रतिज्ञा' के अनुसार नहीं ही मिल पाता है। इस प्रकार के कुछ स्थल ये हैं—

५. महाराणा कुम्भा के 'संगीतराज' की विषय-सूची (अप्रकाशित)

१. पाठ्यरत्नकोशः—(केवल यही प्रकाशित)

(क) अनुक्रमनिर्देशोल्लासः

- (१) कर्तृप्रशंसा
- (२) आत्मसमर्थनम्
- (३) संगीतस्तुति
- (४) अनुक्रमणिका

(ख) पदोल्लासः

- (१) पदपरीक्षणम्
- (२) वाक्यपरीक्षणम्
- (३) प्रकारपरीक्षणम्
- (४) परिभाषा

(ग) छन्दोल्लासः

- (१) अनुष्टुप् परीक्षणम्
- (२) वृत्तपरीक्षणम्
- (३) आर्यावलोकनम्
- (४) प्रस्तारपरिपाटी

(घ) अलंकारोल्लासः

- (१) उद्देशपरीक्षणम्
- (२) लक्षणपरीक्षणम्
- (३) अलंकारपरीक्षणम्
- (४) गुण-दोषपरीक्षणम

२. गीतरत्नकोशः

(क) स्वर

- (१) स्थानादि
- (२) साधारणम्
- (३) वर्णः
- (४) जातिः

(ख) रागः

- (१) ग्रामरागः
- (२) रागाङ्गानि
- (३) भाषाङ्गानि
- (४) क्रियाङ्गानि

(ग) प्रकीर्ण

- (१) [illegible]
- (२) [illegible]
- (३) [illegible]
- (४) [illegible]

(घ) प्रबन्धः

- (१) [illegible]
- (२) सूडः [illegible]
- (३) प्रकीर्णानि
- (४) प्रबन्धाः

३. वाद्यरत्नकोशः

(क) ततम्

- (१) एकतन्त्री
- (२) नकुलादि
- (३) मत्तकोकिला
- (४) किन्नरी

(ख) सुषिरम्

- (१) वंशः
- (२) वंशोत्पत्तिः
- (३) गुणाः दोषाः
- (४) पाठादिः

(ग) घनम्

- (१) मार्गतालः
- (२) देशीतालः
- (३) तालप्रस्तारः
- (४) ताल लक्षणम्

(घ) अवनद्धम्

- (१) पुष्करवाद्यः
- (२) पाटः
- (३) वाद्यप्रबन्धाः
- (४) पटहादिः

४. नृत्यरत्नकोशः

(क) अङ्गानि
- (१) अङ्गानि
- (२) प्रत्यङ्गानि
- (३) उपाङ्गानि
- (४) आहार्याभिनयः

(ख) चारी
- (१) स्थानकानि
- (२) प्रत्यङ्गानि
- (३) देशीचारी
- (४) मण्डलानि

(ग) करणम्
- (१) शुद्धकरणानि
- (२) शुद्धचारी
- (३) अङ्गानि
- (४) रेचकानि

(घ) प्रकीर्णम्
- (१) वृत्तिः
- (२) देशीकरणानि
- (३) लास्याङ्गानि
- (४) पात्रलक्षणानि

५. रसरत्नकोशः

(क) रसः
- (१) रसस्वरूपम्
- (२) रसतत्त्वम्
- (३) रसाश्रयः
- (४) रसलक्षणम्

(ख) विभावः
- (१) नायकः
- (२) नायिका
- (३) चेष्टादि
- (४) उद्दीपनम्

(ग) अनुभावः
- (१) अनुभावः
- (२) अवस्था
- (३) सात्त्विकः
- (४) प्रवासः

(घ) संचारी
- (१) निर्वेदः
- (२) भावावस्थानम्
- (३) रससङ्करः
- (४) ग्रंथसमाप्तिः

शास्त्रीय विवरण

ग्राम

'संगीताञ्जलि' के चौथे भाग में हम षड्जग्राम का बहुत ही संक्षिप्त परिचय दे चुके हैं। यहाँ ग्राम का कुछ विस्तृत विवरण अपेक्षित है। एक बात यहाँ सबसे पहले समझ लेनी चाहिये और वह यह कि ग्राम को हमें दो दृष्टियों से देखना होगा। एक ओर तो प्राचीन भारतीय संगीत की परम्परा के अनुसार हमें उसे समझना होगा और दूसरी ओर आज अंग्रेज़ी शब्द Scale का जो ग्राम कह कर अनुवाद किया जाता है उस दृष्टि से भी ग्राम को समझ लेना होगा।

यहाँ पहले भारतीय परम्परा की दृष्टि से हम ग्राम को समझ लें। 'ग्राम' शब्द के साथ हमारे भारतीय संगीत की प्राचीन परम्परा जुड़ी हुई है। जिन लोगों को संगीत शास्त्र का कोई तात्विक बोध नहीं है वे भी सतसुर के साथ साथ तीन ग्रामों को एक कहानी के रूप में जानते हैं और इस प्रकार यह शब्द सामान्य धारणानुसार प्राचीन संगीत के किसी ऐसे तत्त्व का द्योतक बन बैठा है जिसकी आज के संगीत में कोई उपयोगिता नहीं समझी जाती।[1] मध्ययुग के कुछ प्रसिद्ध गायकों के कई पदों में सतसुर के साथ-साथ तीन ग्राम और इक्कीस मूर्छना अभिन्न रूप से जुड़े हुए पाये जाते हैं। उन पदों के रचयिताओं को इन बातों का कोई तात्विक बोध रहा होगा ऐसी प्रतीति उन पदों से नहीं होती। उसी प्रकार उस काल केभारतीय भाषाओं के कवि भी, काव्य में संगीत का कोई प्रसंग उपस्थित होते ही, इन पारिभाषिक शब्दों का अपनी कविता में अबाध प्रयोग करते थे। उस प्रयोग के पीछे भी कोई शास्त्रीय या तात्विक दृष्टि रही हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। अस्तु।

वास्तव में ग्राम का संगीत में कितना महत्व है यह तो पूरे तौर पर विद्यार्थियों को तभी समझ में आयेगा जब वे ग्राम, मूर्छना और जाति का परस्पर संबंध जान लेंगे और साथ ही यह भी समझ लेंगे कि आज के रागों का मूर्छना, जाति से क्या संबंध है। यह स्पष्टीकरण 'संगीतांजलि' के छठे भाग में ही हो सकेगा।

ग्राम की व्याख्या के लिये अपने प्राचीन शास्त्रों को देखने से पता चलता है कि ग्राम के बारे में नाट्यशास्त्र के संगीत सम्बन्धी अध्यायों में भरत की कोई सामान्य व्याख्या नहीं मिलती, सीधे षड्जग्राम और मध्यमग्राम का वर्णन आ जाता है। लिपिकार का प्रमाद इसका कारण हो सकता है। किन्तु नाट्यशास्त्र के संगीत-संबन्धी अंश से बिल्कुल पृथक् एक स्थल पर 'ग्राम' की प्रासंगिक रूप से कुछ चर्चा मिलती है जो यहाँ उल्लेखनीय है। 'दशरूपविधानम्' नामक बीसवें अध्याय में काव्य की वृत्तियाँ बताते समय भरत ने 'ग्राम' का दृष्टान्त दिया है। यथा :—

जातिभिः (?) श्रुतिभश्चैव स्वरा ग्रामत्वमागताः।
यथा तथा (?) वृत्तिभेदैः काव्यबन्धा भवन्ति हि॥
ग्रामौ पूर्णस्वरौ द्वौ तु यथा वै षड्जमध्यमौ।
सर्ववृत्तिविनिष्पन्नौ काव्यबन्धे तथा त्विमौ॥
ज्ञेयं प्रकरणं चैव तथा नाटकमेव च।
सर्ववृत्तिविनिष्पन्नं नाट्यावस्थासमाश्रयम्॥

(ना. शा. २०।५–७)

---

1. मुख्य रूप से पं० भातखण्डे ने इस धारणा का प्रचार किया है कि प्राचीनों के बताए हुए श्रुति ग्राम, मूर्छना, जाति इत्यादि आजकल जटिल और दुर्बोध बन गये हैं और आज के संगीत में उनका कोई उपयोग नहीं है।

अर्थात्—जाति[1] (?) और श्रुतियों से स्वर ग्रामत्व को प्राप्त होते हैं यानी 'ग्राम' बन जाते हैं। जिस प्रकार (संगीत में) श्रुतिभेद से ग्राम बनते हैं, वैसे ही (साहित्य में) वृत्ति-भेद से काव्यबन्ध बनते हैं। जैसे षड्ज और मध्यम ये दो ही पूर्ण स्वर-ग्राम हैं, वैसे ही सब वृत्तियों से युक्त काव्यबन्ध दो ही हैं—प्रकरण और नाटक।

इस अध्याय में भरत रूपक के दस भेदों[2] का वर्णन करते हैं। आरम्भ ही में वे बताते हैं कि वृत्तियों[3] के प्रयोग के भेद से भिन्न-भिन्न 'काव्यबन्ध' बनते हैं। और इसी के लिए वे संगीत के 'ग्राम' का दृष्टान्त देते हुए समझाते हैं कि जैसे श्रुतिभेद से स्वरों के 'ग्राम' बनते हैं, वैसे ही वृत्ति-भेद से काव्यबन्ध बनते हैं। श्रुति-व्यवस्था से ही ग्राम-रचना होती है यानी मौलिक श्रुति-व्यवस्था में भिन्नता आने से ग्राम भी भिन्न हो जाता है। यह बात अभी कुछ आगे चलकर समझाई जाएगी। वृत्ति भेद को रूपक के दस प्रकारों की भिन्नता का कारण बताते समय भरत ने संगीत के ग्राम का जो दृष्टान्त दिया है, वह साहित्य और संगीत दोनों के विद्यार्थियों के लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। इस दृष्टान्त से दोनों को अपने-अपने विषय की स्पष्टता होगी।

भरत का ग्राम-सम्बन्धी यह उल्लेख दृष्टान्त के रूप में होने से, उसमें ग्राम की सीधी व्याख्या की आशा नहीं की जा सकती। सीधी व्याख्या के लिए मतंग के नीचे लिखे वचन द्रष्टव्य हैं—

> अथ किमुच्यते ग्रामशब्देन। ननु कति ग्रामा भवन्ति।
> कस्मादुत्पद्यते ग्रामः किं वा तस्य प्रयोजनम्।
>
> अत्रोच्यते—
>
> समूहवाचिनौ ग्रामौ स्वरश्रुत्यादिसंयुतौ ॥ ८९ ॥
> यथा कुटुम्बिनः सर्वे एकीभूत्वा वसन्ति हि।
> सर्वलोकेषु स ग्रामो यत्र नित्यं व्यवस्थितः ॥ ९० ॥
> षड्जमध्यमसंज्ञौ तु द्वौ ग्रामौ विश्रुतौ किल।
> गान्धारं नारदो ब्रूते स तु मर्त्यैर्न गीयते ॥ ९१ ॥

---

१. 'जाति' का अर्थ यहाँ अस्पष्ट है। सम्भवतः मूल में कोई अन्य पाठ यहाँ रहा होगा (?)।

२. रूपक के दश भेद हैं—नाटक, प्रकरण, अङ्क, व्यायोग, भाण, समवकार, वीथी, प्रहसन, डिम और ईहामृग।

३. नाट्य में चार वृत्तियाँ मानी गई हैं—सात्वती, आरभटी, कैशिकी और भारती। इनका सम्बन्ध रूपक में कथावस्तु की संघटना के साथ रहता है। शृंगार रस में कैशिकी, वीर में सात्वती एवं रौद्र और बीभत्स में आरभटी का प्रयोग होता है। भारती वृत्ति का प्रयोग सब रसों में विहित माना गया है। रूपक के दश भेदों में से केवल नाटक और प्रकरण ही ऐसे हैं, जिनमें सभी वृत्तियों का उपयोग हो सके। इसके लिए भरत ने संगीत के 'ग्राम' का दृष्टान्त देते हुए कहा है कि पूर्णस्वरग्राम दो ही होते हैं—षड्जग्राम और मध्यमग्राम।

सामवेदात् स्वरा जाताः स्वरेभ्यो ग्रामसम्भवः ।
द्वावेतौ च इमौ ज्ञेयौ षड्जमध्यमलक्षितौ ॥ ९२ ॥
प्रयोजनं च यथा—स्वरश्रुतिमूर्च्छनातानजातिरागाणां ग्रामप्रयोजनम् ।
(बृहद्देशी पृ० २०—१)

अर्थात् ग्राम किसे कहते हैं, ग्राम कितने प्रकार के होते हैं और ग्राम का प्रयोजन क्या है ? इन तीन प्रश्नों को उठाकर मतंग क्रमशः इनका उत्तर देते हैं। ग्राम —यह स्वर, श्रुति आदिका समूहवाची नाम है अर्थात् एक विशेष प्रकार की स्वर श्रुति व्यवस्था के अन्तर्गत जितने भी विभिन्न स्वरसमूह बनते हैं, उन सबको एक ग्राम में समाविष्ट किया जाता है। लोक में भी ग्राम का अर्थ समूहवाची ही होता है। जहाँ अनेकों कुटुम्ब एकत्र होकर रहते हैं उसीको ग्राम कहा जाता है। संगीत में ऐसे दो ही ग्राम प्रसिद्ध हैं —षड्जग्राम और मध्यमग्राम। गान्धार ग्राम को नारद ने बताया है, पर वह मर्त्यलोक में प्रयुक्त नहीं होता। सामवेद से स्वर उत्पन्न हुए हैं और स्वरों से ग्राम बनते हैं।

'ग्राम' के लिये शार्ङ्गदेव ने कहा है :—

ग्रामः स्वरसमूहः स्यान्मूर्च्छनादेः समाश्रयः ।

अर्थात् ग्राम ऐसा स्वरसमूह है जो मूर्च्छना का आश्रय हो या जिसके आधार पर मूर्च्छनाएँ बनाई जाती हों।

यह छोटी सी व्याख्या मतंग के पूरे कथन को समेटे हुए है। ग्राम और मूर्च्छना का अटूट संबंध दिखाते हुए यह व्याख्या मतंग के आशय को ही स्पष्ट करती है। जहाँ ग्राम को मूर्च्छना का आश्रय माना गया है वहाँ मूर्च्छना को भी ग्राम के आश्रित कहा गया है। मतंग की ऊपर उद्धृत व्याख्या भी इसी सत्य की ओर संकेत करती है। उन्होंने कहा है कि ग्राम स्वर, श्रुति आदि का समूह-वाची नाम है। इसका अर्थ यह हुआ कि एक विशेष प्रकार की स्वरश्रुति-व्यवस्था के अन्तर्गत जितने भी विभिन्न स्वरसमूह बनते हैं उन सबका एक ग्राम में समावेश किया जाता है। 'रत्नाकर' में ग्राम को मूर्च्छना का आश्रय कह कर यह बताया गया है कि ग्राम उस मौलिक स्वर व्यवस्था को कहते हैं जिसके आधार पर विभिन्न मूर्च्छनाएँ बनाई जाती हों। इसी बात को कुछ भिन्न शब्दों में मतंग ने इस प्रकार कह दिया है कि ग्राम समूहवाची शब्द है यानी विभिन्न स्वरसमूहों का उसमें समावेश किया जाता है।

इन दोनों व्याख्याओं से यह स्पष्ट है कि हमारे संगीत शास्त्र में ग्राम और मूर्च्छना का अविच्छेद्य संबंध माना गया है अर्थात् ग्राम द्वारा हमारे प्राचीन शास्त्रकारों को ऐसी मौलिक स्वरव्यवस्था अभिप्रेत थी जिसे मूर्च्छनादि प्रयोग में प्रमाण या Standard माना जा सके। इसी प्रसंग में यह भी समझ लेना चाहिये कि ग्राम से उन्हें संगीत प्रयोग का शुद्ध स्वरसप्तक, जिस रूप में उसे हम आज समझते हैं वह अभिप्रेत नहीं था। आज हम अपने शुद्ध स्वर सप्तक को जिस प्रकार अपनी स्वरव्यवस्था के लिये Standard मानते हैं यानी स्वरों की शुद्ध विकृत अवस्था दिखाने के लिये उसे ही प्रमाण मानते हैं उस अर्थ में प्राचीनों ने 'ग्राम' शब्द का प्रयोग नहीं किया था। आगे चल कर जब हम अपने आज के बिलावल अंग के शुद्ध स्वर सप्तक की विवेचना करेंगे और भरतादि प्राचीनों की बताई हुई स्वरव्यवस्था के साथ उसका संबंध जोड़ेंगे तब हम इस बात को कुछ विस्तार से समझेंगे, क्योंकि वहाँ की चर्चा से यह सिद्ध होगा कि जो हमारा आज का शुद्ध स्वर सप्तक है वही भरतकाल का भी प्रयोगिक शुद्ध स्वर सप्तक था ; यद्यपि 'शुद्ध' या 'विकृत' विशेषण उस समय स्वरों के लिये प्रयोग में नहीं लाये जाते थे। अभी हम इतना ही समझ लें कि हमारे प्राचीन संगीतशास्त्र में ग्राम को केवल एक स्वर-सप्तक ही नहीं माना गया था, बल्कि वह एक आधारभूत या मौलिक श्रुतिव्यवस्था का नाम था, जिसके आधार पर मूर्च्छनाएँ बनाई जाती थीं।

भरत ने केवल दो ही ग्रामों का उल्लेख किया है। एक षड्जग्राम और दूसरा मध्यमग्राम। आजकल तीन ग्रामों की बात सामान्य प्रचार में है और ग्राम के साथ ही तीन की संख्या एक परम्परा के रूप में जुड़ी हुई है। परन्तु इस परम्परा का इतिहास खोजने जायें तो पता चलता है कि गान्धर्व-परम्परा में सबसे पहले मतंग ने तीसरे ग्राम का यानी गान्धार ग्राम का उल्लेख किया है और वैदिक परम्परा में 'नारदीय शिक्षा' में भी इसका उल्लेख मिलता है। बाद के सभी लेखकों ने तीन ग्रामों के सिद्धान्त को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया है, किन्तु मतंग और नारद से लेकर सभी ने गान्धार ग्राम की अस्पष्टता या उसका प्रयोग से दूर होना यह कह कर दिखा दिया है कि गान्धारग्राम स्वर्ग में ही रहता है भूतल पर नहीं। इतना ही कह कर प्रायः सभी ने छोड़ दिया है। उसकी जो थोड़ी सी आंशिक व्याख्या नारद के 'संगीत मकरन्द' में या शार्ङ्गदेव के 'संगीत रत्नाकर' में या अन्य छोटे-मोटे ग्रन्थों में मिलती है उससे कोई विशेष स्पष्टता नहीं होती। यानी प्रत्यक्ष क्रिया में गान्धार ग्राम का कैसे उपयोग किया जाता होगा यह कहना कठिन है। जब तक हम इसे सप्रयोग सिद्ध न कर लें, तब तक हमें मौन रहना ही उचित है। इसलिये यहाँ षड्जग्राम और मध्यमग्राम इन दो का ही विवरण दिया जायगा।

षड्जग्राम

भरत ने कहा है :—

> षड्जग्रामे च षड्जस्य संवादः पञ्चमस्य च।
> संवादो मध्यमग्रामे पञ्चमस्यर्षभस्य च॥

अर्थात् षड्जग्राम में षड्ज और पंचम का संवाद है और मध्यमग्राम में ऋषभ पंचम का संवाद है (षड्ज पंचम का नहीं)।

षड्जग्राम में षड्ज पंचम संवाद जो कहा गया है उसका अर्थ यही है कि उसमें सा – प, रि – ध, ग – नि और म – सां ये स्वर जोड़ियाँ षड्जपंचम-भाव से संवाद करती हैं। किन्तु मध्यमग्राम में सा – प संवाद के स्थान पर रि – प संवाद भरत ने बताया है। यह ध्यान रहे कि दोनों ग्रामों में संवाद का यह भेद केवल पंचम की अवस्था पर ही निर्भर है। षड्जग्राम में पंचम चतुःश्रुतिक है और मध्यग्राम में यह त्रिश्रुतिक है। इसीलिए मध्यमग्राम में सा – प संवाद टूट जाता है। षड्जग्राम में षड्ज पंचम संवाद तो है लेकिन ऋषभ पंचम संवाद नहीं है, क्योंकि दोनों स्वरों में १० श्रुति का अन्तर है। मध्यमग्राम में पंचम के त्रिश्रुति होते ही षड्ज-पंचम-संवाद तो भंग हो जाता है, किन्तु सा – म भाव से ऋषभ-पंचम संवाद बन जाता है। षड्ज पंचम-संवाद और षड्ज-मध्यम-संवाद यही दो मुख्य संवाद सभी संगीत पद्धतियों में माने गये हैं। इन्हीं के आधार पर भरत ने दो ग्रामों की रचना की है। दोनों ग्रामों की श्रुति स्वर व्यवस्था स्पष्ट रूप से समझ लेने के बाद दोनों के आधार रूप संवाद को पुनः विस्तार से समझने का हम यत्न करेंगे।

पहले षड्जग्राम को ले लें। इस ग्राम की श्रुतिव्यवस्था के बारे में भरत ने कहा है—

> षड्जश्चतुःश्रुतिर्ज्ञेयः ऋषभस्त्रिश्रुतिः स्मृतः।
> द्विश्रुतिश्चापि गान्धारो मध्यमश्च चतुःश्रुतिः॥
> चतुःश्रुतिः पंचमः स्यात् त्रिश्रुतिर्धैवतस्तथा।
> द्विश्रुतिस्तु निषादः स्यात् षड्जग्रामे स्वरान्तरे॥

अर्थात् षड्ज चार श्रुति का है, ऋषभ तीन का, गान्धार दो का, मध्यम चार का, पंचम चार का, धैवत तीन का और निषाद दो का है—ये षड्जग्राम के स्वरान्तर हैं। इसके अनुसार षड्जग्राम में श्रुतिक्रम ४ – ३ – २ – ४ – ४ – ३ – २ इस प्रकार है। यहाँ यह ध्यान रहे कि प्रत्येक स्वर की श्रुतियों की गिनाई आरोह क्रम से ही की जायगी। यानी 'सा' को जो चतुःश्रुति कहा गया है उसका अर्थ यही है कि निषाद और षड्ज में ४ श्रुतियों का अन्तर है, यह नहीं कि षड्ज और ऋषभ में इतना अन्तर है[1]। इसी प्रकार और सभी स्वरों के लिए निम्नलिखित रूप से समझना चाहिए—

नि – सा – रि – ग् – म – प – ध – नि्

४ ३ २ ४ ४ ३ २

इस ग्राम को पूर्वांग और उत्तरांग में विभक्त करके देखने से दोनों भागों की श्रुतिव्यवस्था बिल्कुल एक सी मिलती है। यथा—

पूर्वांग	उत्तरांग
सा – रि – ग् – म	प – ध – नि् सां
(४) ३ २ ४	(४) ३ २ ४

यह स्वरसमूह आज के काफ़ी जैसा है, किन्तु ठीक वही नहीं है। आज के काफ़ी और प्राचीन षड्जग्राम में मुख्य अन्तर यही है कि काफ़ी में चतुःश्रुति ऋषभ का प्रयोग होता है और षड्जग्राम में त्रिश्रुति का। ऋषभ के स्थान में यह अन्तर होने के कारण काफ़ी का गान्धार भी षड्जग्राम के गान्धार से एक श्रुति ऊँचा होता है। षड्जग्राम में ऋषभ त्रिश्रुति और उससे दो श्रुति बाद गान्धार—इस प्रकार षड्ज से गान्धार का पाँच श्रुति का अन्तर रहता है और काफ़ी में ऋषभ चतुःश्रुति होने से उस ऋषभ के दो श्रुति अन्तर पर गान्धार कोमल रहता है जिसका अन्तर षड्ज से ६ श्रुति का होता है। काफ़ी में धैवत यद्यपि त्रिश्रुति ही है, किन्तु तानपूरे पर पंचम की तार सतत ध्वनित होने के कारण पंचम से षट्श्रुति अन्तर से संवाद करने वाला कोमल निषाद ही उसमें प्रयुक्त होता है, षड्जग्राम वाला पंचश्रुति निषाद नहीं। इसलिए स्थूल मान से षड्जग्राम में काफ़ी दिखाई देने पर भी श्रुत्यन्तर की सूक्ष्म दृष्टि से वहाँ काफ़ी नहीं है।

षड्जग्राम के इस स्वरसमूह का स्थान वीणा पर कहाँ से मिलता है, इस बारे में 'संगीतांजलि' के चौथे भाग में हम कुछ चर्चा कर चुके हैं। यहाँ उसे संक्षेप में दोहरा देना काफ़ी होगा। वीणा ही ग्राम, मूर्च्छना आदि सभी प्रयोगों का प्राचीन काल से साधन रही है। इन सब प्रयोगों के सप्रमाण प्रत्यक्ष प्रदर्शन के लिये यह एक सफल साधन है। इसलिये आज भी हमें उसी का अवलम्ब लेना उचित और आवश्यक है। वीणा आँखों द्वारा प्रत्यक्ष देखी जा सकती है और इसी कारण उसमें चालन (इच्छानुकूल परिवर्तन) की बहुत सुविधा रहती है। इसलिये मनुष्य के कंठ की अपेक्षा वीणा ही ऐसे प्रयोगों के लिये प्रामाणिक मानी गई है।

---

1. यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि स्वर अपनी अन्तिम श्रुति पर अवस्थित रहता है। यानी षड्ज को जब चार श्रुतियाँ कही जाती हैं, तब चौथी श्रुति पर षड्ज का स्थान जानना चाहिए। उस चौथी श्रुति समेत ही निषाद और षड्ज में चार श्रुति का अन्तर कहा जाता है। यदि उसे अलग समझें तो बीच का अन्तराल तीन श्रुति का कहा जा सकता है। कहने के ये दोनों ढंग समझ लेने से कभी कहीं अस्पष्टता नहीं होगी।

चौथे भाग में हम यह देख चुके हैं कि वीणा के मेरु के बाद दूसरे पर्दे यानी आज के मंद्र पंचम को आरम्भ स्थान मानने से भरत के बताये हुए षड्जग्राम की स्वरव्यवस्था हमें सहज ही, पर्दों में कोई भी परिवर्तन किये बिना ठीक से मिल जाती है। षड्ज को जो चार श्रुति का बताया गया है यानी आरम्भ की तीन श्रुतियाँ छोड़कर चौथी पर षड्ज की स्थापना करने को जो भरत ने कहा है वह बात भी वीणा पर के इस आरम्भ-स्थान से पुष्ट और प्रमाणित हो जाती है, क्योंकि मेरु से वही पर्दा (आधुनिक मंद्र पंचम) चतुःश्रुति अन्तर पर है। मेरु को यदि शून्य मान लें तो उसके बाद तीन श्रुतियाँ छोड़ने से चौथी श्रुति पर इस पर्दे का स्थान मिलता है। आगे चल कर मूर्च्छना प्रकरण में हम देखेंगे कि इसी पर्दे से आरम्भ होनेवाली मूर्च्छना को भरतादि ने 'शुद्धषाड्जी' कहा है, क्योंकि उनके षड्जग्राम के शुद्ध षड्ज का स्थान यही है। इस बात से 'शुद्धषाड्जी' इस मूर्च्छना नाम की सार्थकता भी समझ में आ जायगी।

भरत ने २२ श्रुतियों की सिद्धि के लिये चतुःसारणा का प्रयोग बताया है। उसका विवरण देते समय दोनों ग्रामों का अधिक स्पष्टीकरण हो जायगा। अब हम मध्यमग्रामको ले लें।

मध्यमग्राम

मध्यमग्राम के संबंध में भरत का नीचे लिखा हुआ सूत्र ही परवर्ती सभी ग्रंथकारों ने आधार माना है :—

मध्यमग्रामे तु श्रुत्यपकृष्टः पञ्चमः कार्यः।

अर्थात् मध्यमग्राम में पंचम को एक श्रुति अपकृष्ट करना है। मध्यमग्राम के बारे में मध्ययुग के तथा आधुनिक ग्रंथकारों के ग्रन्थों में कुछ उलझनें बनी रही हैं जो इस प्रकार हैं :—

१. वीणा पर मध्यमग्राम का आरम्भ-स्थान कहाँ है ? ऐसी ही उलझन षड्जग्राम के संबन्ध में भी रही है।

२. त्रिश्रुति पंचम वाला स्वरसमूह क्या प्रयोग में लाया जा सकता है ?

भरत के ऊपर लिखे वचन का सबने यही अर्थ लगाया है कि षड्जग्रामिक स्वरसप्तक के पंचम को एक श्रुति उतार देने से मध्यमग्राम बनता है और यह अर्थ लगाकर तदनुसार वीणा पर पंचम की एक श्रुति उतार कर मध्यमग्राम बनाने का यत्न किया गया है। इसी से बहुत सी उलझनें खड़ी हुई हैं। ऊपर उद्धृत वाक्य का शब्दार्थ तो यही निकलता है कि मध्यमग्राम में पंचम को एक श्रुति कम करना है। उसका यह जो अर्थ लगाया गया है कि षड्जग्राम के पंचम को एक श्रुति कम करने से ही मध्यमग्राम हो जायगा, यह ठीक नहीं है। ऐसा करने से तो वीणा बेसुरी हो जायगी, क्योंकि वीणा के पर्दे और तार जिस संवाद-संबंध से मिले रहते हैं, उसका भंग हो जायगा। षड्जग्राम के पंचम को एक श्रुति उतारने की जो बात की गई है वह तो केवल सारणा-प्रक्रिया को ही लागू हो सकती है। आगे चल कर हम देखेंगे कि *प्रथम सारणा की यह प्रथम क्रिया है। उसका अर्थ यह नहीं है कि उतनी क्रिया मात्र से वीणा मध्यमग्राम में वादन के योग्य बन जायगी।* प्रथम सारणा की पहली क्रिया बताते समय भरत ने मध्यमग्राम का उल्लेख केवल यही दिखाने के लिये किया है कि मध्यमग्राम में पंचम त्रिश्रुतिक है और उस पंचम का षड्ज के साथ संवाद नहीं है, अपितु त्रिश्रुति ऋषभ के साथ संवाद है। यह बात सारणा-प्रकरण में अधिक स्पष्ट हो जायगी। पंचम के त्रिश्रुतिक होते ही पंचम की अन्तिम श्रुति धैवत को मिल जाती है और धैवत के अपने स्थान में कोई विकृति न आने पर भी पंचम के उतर जाने से पंचम-धैवत का अन्तराल तीन श्रुति के बजाय चार श्रुति का हो जाता है और इसीलिये कहा जाता है कि तब धैवत चतुःश्रुतिक बन जाता है।

मध्यमग्राम के बारे में एक और भ्रान्त धारणा या मान्यता लोगों में अब तक बनी रही है कि षड्जग्राम के मध्यम को षड्ज मान कर वहाँ से आरम्भ करने पर जो पंचम आये उसे एक श्रुति उतार कर चलने से मध्यमग्राम बन जायगा। इस भ्रान्ति के दो कारण हो सकते हैं :—

१. मध्यमग्राम का मूर्च्छना-क्रम मध्यम से आरम्भ करने को कहा गया है यानी मध्यमग्राम की पहली मूर्च्छना का आरम्भ मध्यम से माना गया है।

२. मध्यमग्राम का नाम मध्यम के साथ सीधा जुड़ा हुआ है।

कारण कुछ भी हो यह भ्रान्ति अभी तक बनी रही है जिसने सभी को उलझाये रखा। इस भ्रान्ति से जो उलझनें खड़ी होती हैं उनका कुछ ब्यौरा देते हुए इस समस्या का ठोस हल हम नीचे देंगे।

षड्जग्राम का मध्यम वीणा पर हमारा आज का 'सा' है। यदि उसे मध्यमग्राम का आरम्भ-स्थान मान कर चलेंगे तो वीणा के पर्दों पर नीचे लिखी स्वरावलि मिलेगी।

षड्जग्रामिक स्वर— म – प – ध – नि – सा – रि – ग – म
मध्यम को 'सा' मानने से प्राप्त स्वरावलि— सा – रि – ग – म – प – ध – नि॒ – सां
४ ३ २ ४ ३ २ ४

स्पष्ट है कि यह स्वरावलि हमारे आज के खमाज जैसी है। इसमें न तो पंचम ही त्रिश्रुति है और न ऋषभ ही। इसी लिये चतुःश्रुति धैवत जो मध्यमग्राम में मिलना चाहिए उसे भी इस स्वरावली में स्थान नहीं है। मध्यम ग्राम में जो ऋषभ-पंचम-संवाद अनिवार्य है वह भी इस स्वरावली में नहीं बन पाता। यदि ऋषभ-पंचम के पर्दे को एक-एक श्रुति उतार देते हैं तो भी काम नहीं बनता क्योंकि सारी वीणा बेसुरी हो जाती है और वह वादन-योग्य नहीं रहती। इसलिए स्वर संवाद और वीणा पर प्रत्यक्ष क्रिया इन दोनों को ध्यान में रखते हुए नीचे लिखी विधि ही मध्यमग्राम के प्रयोग के लिए अपनाई जा सकती है।

षड्जग्राम के मध्यम के बजाय यदि उसके पंचम को जो आधुनिक ऋषभ है, आरम्भ-स्थान मान कर चलें तो मध्यमग्राम के स्वर हमें सहज ही वीणा पर मिल जायेंगे। इस प्रकार जो स्वरावलि आयेगी उसकी श्रुति व्यवस्था नीचे लिखी होगी।

षड्जग्रामिक स्वर— प – ध – नि – सां – रिं – गं* – मं – पं (*अन्तर गान्धार)
आधुनिक स्वर— रि – ग – म – प – ध – नि – सां – रिं
मध्यमग्रामिक स्वर— सा – रि – ग॒ – म – प – ध – नि॒ – सां
तीनों की श्रुति व्यवस्था— ४ – ३ – २ – ४ – ३ – ४ – २ – ४

इसी स्वर व्यवस्था को पृष्ठ ५५ पर दिये हुए सितार के चित्र में विद्यार्थी देख लें, जिससे यह व्यवस्था स्पष्ट हो जायगी।

आधुनिक स्वर	षड्जग्रामिक स्वर	मध्यमग्रामिक स्वर	श्रुति संख्या	
मेरु— म	नि॒	ग॒	०	
प	सा	म	४	षड्ज ग्राम
ध	रि	प	३	
नि॒	ग॒		(२)	
नि	ग (अं०)	ध	४	
सा	म	नि॒	२	
रि	प	सा *	४	मध्यम ग्राम
ग	ध	रि	३	
म	नि॒	ग॒	२	
प	सां	म	४	
ध	रें	प	३	
नि॒	ग॒		(२)	
नि	ग (अं०)	ध	४	
सां	म.	नि॒	२	

* मध्यम ग्राम का आरंभ स्थान यहां है ।

इसके अलावा वीणा पर एक और स्थान से भी मध्यमग्राम की स्वर व्यवस्था मिल सकती है। वीणा की जोड़ की तार के नीचे मेरु से दूसरे पर्दे पर से आरम्भ करने पर भी मध्यमग्रामिक स्वर हमें मिल जायँगे। उस पर्दे को 'सा' मान कर आरम्भ करेंगे। उसके बाद एक पर्दा छोड़ कर दूसरा पर्दा जो बाज के तार के नीचे आज शुद्ध धैवत का स्थान पाता है और षड्जग्रामिक स्वरों में ऋषभ का स्थान पाता है वही यहाँ त्रिश्रुति ऋषभ बन जायगा। उसके बाद हम जोड़ के तार के नीचे पर्दों पर आगे नहीं बढ़ेंगे बल्कि बाज के तार पर चले जायँगे। ऐसा किये बिना हमें वांछित स्वरावलि नहीं मिलेगी। बाज के मुक्त तार का नाद द्विश्रुति गान्धार हो जायगा। उसके बाद मेरु से दूसरा पर्दा जो षड्जग्रामिक षड्ज या आज का मंद्र पंचम है, चतुःश्रुति मध्यम हो जायगा। षड्जग्राम के त्रिश्रुति ऋषभ का पर्दा जो आज का मंद्र धैवत है, वही त्रिश्रुति पंचम का स्थान पा जायगा। षड्जग्राम का अंतर गान्धार[1] या आज का तीव्र निषाद का पर्दा चतुःश्रुति धैवत बन जायगा। षड्जग्राम का मध्यम द्विश्रुति निषाद हो जायगा और अंत में षड्जग्रामिक पंचम या आधुनिक ऋषभ तार षड्ज बन कर सप्तक पूरा करेगा। यह वही स्थान है, जहाँ से हम पहली बार मध्यमग्राम का आरम्भ दिखा चुके हैं। अगले पृष्ठ (५७ पर) दिये हुए चित्र से यह पूरी स्वरावलि ध्यान में आ जायगी।

इस प्रकार पर्दों और तारों में कोई भी परिवर्तन किये बिना हमें वीणा पर मध्यमग्राम के स्वर मिल जाते हैं। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मध्यमग्राम में षड्जग्रामिक स्वर केवल नाम का परिवर्तन पाते हैं, अन्यथा वे ही पर्दे और वही स्वर मध्यमग्राम में भी प्रयुक्त होते हैं। पीछे दिये हुए दोनों चित्रों से पाठकों को यह तो ध्यान में आया ही होगा कि षड्जग्राम का काकली निषाद ही मध्यमग्राम में अन्तर गान्धार बन जाता है और षड्जग्राम का अन्तर गान्धार मध्यमग्राम में चतुःश्रुति धैवत बन जाता है।

हम कह चुके हैं कि षड्जग्राम का अन्तर गान्धार ही मध्यमग्राम में चतुःश्रुति धैवत का स्थान पाता है। भरत का नीचे उद्धृत वचन भी इसी तथ्य को स्पष्ट करता है :—

द्विविधैकमूर्च्छनासिद्धिः, द्विश्रुतिप्रकर्षाद्धैवतीकृते गान्धारे मूर्च्छनाग्रामयोरन्यतरत्वं षड्जग्रामे। तद्वशान्मध्यमादयो निषादादिमत्वं (निषादादित्वं) प्रतिपद्यन्ते। मध्यमग्रामेऽपि धैवतमार्दवात् (धैवतामार्दवात्) निषादोत्कर्षात् (च द्वैविध्यं भवति। तुल्यश्रुत्यन्तरत्वाच्च संज्ञान्यत्वम्। चतुःश्रुतिकमन्तरं पञ्चमधैवतयोः। तद्वद्गान्धारोत्कर्षाच्चतुःश्रुतिकमेव भवति। शेषाश्चापि मध्यमपञ्चमधैवतनिषादषड्जर्षभा मध्यमादिमत्वं (षड्जादित्वं) प्राप्नुवन्ति।[2] (ना. शा. २८)

भरत का यह उद्धरण उस प्रकरण में से है जहाँ कि मूर्च्छनाओं के पूर्णा, षाडवा, औडवा और साधारणीकृता

---

१ 'संगीतांजलि' के चौथे भाग में अन्तर गान्धार और काकली निषाद का परिचय विद्यार्थी पा चुके हैं। ये दो स्वर प्राचीनों ने सात शुद्ध स्वरों के अतिरिक्त माने हैं। स्वर साधारण की प्रक्रिया द्वारा इन दो स्वरों की प्राप्ति मानी गई है। उस प्रक्रिया का ब्यौरा हम आगे मूर्च्छना-प्रकरण में देंगे।

२ नाट्यशास्त्र के 'निर्णयसागर' और 'चौखम्बा' वाले संस्करणों का पाठ मिला कर इस उद्धरण का पाठ शुद्ध किया गया है।

दोनों के पाठ मिलाने पर भी कुछ स्थलों पर भरत के अभिप्रेत अर्थ के साथ पाठ में असमंजसता रह जाती है। अभिप्रेत अर्थ का शुद्ध स्वरूप क्रिया-कुशल गुणियों के समक्ष ही स्पष्ट होता है और उस अर्थ के साथ शब्दों की संगति बिठाने के लिये हमने कोष्ठकों में कुछ पाठान्तर देना आवश्यक समझा है। उन्हीं के अनुसार इस उद्धरण का तात्पर्य दिया गया है।

जोड़ की तार के नीचे पर्दों पर स्वर

	मध्यम ग्रामिक स्वर	षड्ज ग्रामिक स्वर	आधुनिक स्वर
मेरु	नि़	म	सा
*४	सा	प	रे
३	रि	ध	ग

बाज की तार के नीचे पर्दों पर स्वर

आधुनिक स्वर	षड्जग्रामिक स्वर	मध्यमग्रामिक स्वर	श्रुति संख्या
म	नि़	ग़	२
प	सा	म	४
ध	रि	प	३
नि़	ग़		(२)
नि	ग(अं०)	ध	४
सा	म	नि़	२
रि	प	सा	(४)

नोट—जोड़ की तार के नीचे दूसरे और चौथे पर्दे पर क्रमशः मध्यमग्रामिक 'सा' और 'रि' लेने के बाद हमें बाज की तार पर चले जाना है। बाज की मुक्त तार का नाद मध्यम ग्राम का गान्धार हो जाएगा, जिसका ऋषभ से दो श्रुति का अन्तर है। उसके बाद दिखाए हुए पर्दों पर क्रमशः मध्यमग्राम के मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद प्राप्त होते हैं और उसका मन्द्र सप्तक पूर्ण होता है।

---

* मध्यमग्राम का आरंभ यहाँ से करने से षड्ज ऋषभ की श्रुति संख्या इस ओर से दी गई है।

इस प्रकार चार भेद बताये गए हैं। ये चार भेद बताये जाने के ठीक बाद ही ऊपर लिखा वचन मिलता है। इस वचन से यह सिद्ध होता है कि किसी एक ग्राम की मूर्च्छनाविशेष में ही दूसरे ग्राम की मूलभूत स्वरावलि प्राप्त हो जाती है। इस उद्धरण का तात्पर्य विस्तार से नीचे स्पष्ट किया जा रहा है[1]।

एक मूर्च्छना की दो प्रकार सिद्धि की जा सकती है। षड्जग्राम में जब गान्धार को दो श्रुति चढ़ा कर मूर्च्छनाएँ बनाई जाती हैं तब जिस मूर्च्छना में वह चढ़ा हुआ गान्धार, धैवत का स्थान पा जाता है, वहाँ वह स्वरावलि मूर्च्छना होते हुए भी एक 'ग्राम' (मध्यमग्राम) का रूप धारण कर लेती है। हम यह देख चुके हैं कि षड्जग्राम के पञ्चम की मूर्च्छना में 'अन्तर गान्धार' का प्रयोग करने से मध्यमग्राम की स्वरावलि मिल जाती है। इसी बात को भरत ने इस प्रकार कहा है कि षड्जग्राम की जिन मूर्च्छनाओं में अन्तर गान्धार का प्रयोग किया गया हो, उनमें से जिस मूर्च्छना में वह अन्तर गान्धार धैवत का स्थान पा जाएगा, वहीं पर 'मूर्च्छना' और 'ग्राम' का 'अन्यतरत्व' होगा, यानी वह स्वरावलि षड्जग्राम की मूर्च्छना होते हुए साथ ही एक 'ग्राम' (मध्यमग्राम) भी है। यह स्पष्ट है कि 'अन्तर गान्धार' धैवत का स्थान एक ही मूर्च्छना में पाता है और वह है षड्जग्राम के पञ्चम की अन्तरगान्धार सहित मूर्च्छना। इस प्रकार 'धैवतीकृते गान्धारे' (गान्धार को धैवत बना देने पर) और 'मूर्च्छनाग्रामयोरन्यतरत्वम्' (एक ही स्वरावलि में 'मूर्च्छना' और 'ग्राम' दोनों का अस्तित्व यानी एक दृष्टि से वह स्वरावलि एक ग्राम की मूर्च्छना हो और दूसरी दृष्टि से वही एक भिन्न ग्राम का रूप भी हो) ये दोनों वाक्यांश बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। साथ ही भरत ने यह भी कहा है कि उस अवस्था में षड्जग्राम के मध्यमादि स्वर (मध्यमग्राम में) निषादादि बन जाते हैं। हम ऊपर देख ही चुके हैं कि षड्जग्राम का मध्यम, मध्यमग्राम में निषाद बनता है, उसका पञ्चम, षड्ज बनता है और उसका षड्ज, मध्यम बनता है और इसी क्रम से अन्य सभी स्वरों के नाम बदल जाते हैं। षड्जग्राम की मूर्च्छना-विशेष में किस प्रकार मध्यमग्राम का रूप मिलता है, यह बताने के बाद भरत मध्यमग्राम को ले लेते हैं और कहते हैं कि जिस प्रकार षड्जग्राम में चढ़े हुए गान्धार को धैवत बना देने से मध्यमग्राम मिलता है, उसी प्रकार मध्यमग्राम में धैवत का 'अमार्दव' करने से यानी उसे[2] चढ़ी हुई चतुःश्रुतिक अवस्था से नीचे उतार कर द्विश्रुतिक बनाने से भिन्न मूर्च्छनाओं की सिद्धि होगी। और साथ ही उन्हीं मूर्च्छनाओं में से एक मूर्च्छना में षड्जग्राम की पुनः प्राप्ति हो जाएगी। यह मूर्च्छना वह होगी, जिसमें कि मध्यमग्राम का मध्यम षड्ज बन जाए, पञ्चम ऋषभ बन जाए और इसी क्रम से सभी स्वरों के नाम बदल जाएँ। मध्यमग्राम के मध्यम को षड्ज मानने से निम्नलिखित प्रकार से षड्जग्राम के स्वर मिलेंगे। हाँ, इसमें धैवत का अमार्दव आवश्यक है :—

मध्यमग्राम—	म – प – ध[3] – नि – सा – रि – ग
षड्जग्राम—	सा – रि – ग – म – प – ध – नि
दोनों के श्रुत्यन्तर—	४ – ३ – २ – ४ – ४ – ३ – २

---

१. यहाँ 'ग्राम' की स्पष्टता करने के लिए 'मूर्च्छना' का बार-बार उल्लेख करना पड़ा है। इसलिए विद्यार्थियों को हमारी सलाह है कि वे 'मूर्च्छना' प्रकरण को पढ़कर पुनः इस अंश को पढ़ें। उससे विषय की अधिक स्पष्टता हो सकेगी।

२. ध्यान रहे कि 'मार्दव' और 'आयतत्व' ये दो शब्द क्रमशः 'उत्कर्ष' (चढ़ाना) और 'अपकर्ष' (उतारना) के लिए भरत ने व्यवहृत किये हैं। इसलिए 'अमार्दव' का अर्थ होगा 'उत्कर्ष का अभाव'। धैवत का 'मार्दव' तो मध्यमग्राम के मूल रूप में है ही यानी धैवत तो वहाँ चढ़ा हुआ (चतुःश्रुतिक) है ही, इसलिए उसमें कुछ भिन्नता लाने के लिए अमार्दव ही अपेक्षित है, मार्दव नहीं। इसीलिए हमने 'धैवतामार्दवात्' ऐसा पाठ रखा है।

३. यह धैवत चतुःश्रुतिक नहीं, अपितु अमार्दव से प्राप्त हुआ द्विश्रुतिक है।

स्पष्ट है कि दोनों ग्रामों में श्रुत्यन्तर समान रहते हुए भी स्वरों के संज्ञाभेद से ही दोनों का पृथक् स्वरूप खड़ा होता है। संज्ञा भेद का उदाहरण भरत ने यही दिया है कि षड्जग्राम में ऋषभ और अन्तर गान्धार में जो चतुःश्रुतिक अन्तर रहता है, वही मध्यमग्राम में पञ्चम और धैवत के बीच का अन्तर बन जाता है और इस प्रकार 'तुल्यश्रुत्यन्तर' होते हुए भी 'संज्ञाभेद' हो जाता है[1]। मध्यमग्राम के लिये भरत का जो ऊपर का वचन है उसमें 'धैवतामार्दवात्' के साथ-साथ 'निषादोत्कर्षात्' भी ध्यान देने योग्य है। हम जानते हैं कि षड्जग्राम के अन्तर गान्धार और काकलीनिषाद, मध्यमग्राम में क्रमशः धैवत और अन्तर गान्धार बन जाते हैं। इसलिये मध्यमग्राम में एकमात्र नवीन स्वरस्थान उसका काकली निषाद ही हो सकता है। इसीलिये यहाँ 'निषादोत्कर्ष' विशेष रूप से कहा है। षड्जग्राम में जिस प्रकार 'गान्धारोत्कर्ष' का महत्व है, क्योंकि उससे मध्यमग्राम का रूप मिलता है, उसी प्रकार मध्यमग्राम में नवीन स्वरस्थान की प्राप्ति के कारण 'निषादोत्कर्ष' का महत्व है। मध्यमग्राम का काकली निषाद षड्जग्राम का तीव्र मध्यम बन जाएगा, जो कि आधुनिक संज्ञा में 'कोमल ऋषभ' है। यह बात नीचे लिखे ढंग से स्पष्ट होगी :—

मध्यमग्राम—	सा – रि – ग – म – प – ध – नि – का॰ नि॰ – सां
षड्जग्राम —	प – ध – नि – सा – रि – ग – म – म् – प
आधुनिक स्वर—	रि – ग – म – प – ध – नि – सा – रि॒ – रि
दोनों के श्रुत्यन्तर--	(४) – ३ – २ – ४ – ३ – ४ – २ – २ – २

भरत के उद्धरण के तात्पर्य के लिये ऊपर जो चर्चा की गई, उससे यह निःसन्देह रूप से सिद्ध हो जाता है कि वीणा पर मध्यमग्राम का जो स्थान हम ने निश्चित किया है, उसे भरत का आधार पूर्ण रूप से प्राप्त है। इस चर्चा से जो निष्कर्ष निकलते हैं, उन्हें संक्षेप में गिना देना विषय की सुगमता के लिये अच्छा होगा। यथा—

(१) मूर्च्छना और ग्राम में कोई तात्विक अन्तर नहीं है। एक ग्राम की मूर्च्छना विशेष ही अन्य ग्राम का रूप पाती है।

(२) षड्जग्राम के पंचम की मूर्च्छना ही मध्यमग्राम का रूप पाती है, हाँ वहाँ गान्धार का उत्कर्ष आवश्यक है, क्योंकि वही उत्कर्ष प्राप्त गान्धार चतुःश्रुति धैवत बनता है। दूसरी ओर मध्यमग्राम के मध्यम की मूर्च्छना षड्जग्राम का रूप पाती है, वहाँ धैवत का 'अमार्दव' आवश्यक है, क्योंकि उसके बिना षड्जग्राम का 'विशुद्ध' रूप नहीं मिलेगा।

(३) तुल्य श्रुत्यन्तर होते हुए भी दोनों ग्रामों की भिन्न रचना उनके स्वरों के संज्ञा-भेद पर आधृत है। षड्जग्राम के मध्यमादि स्वर मध्यमग्राम में निषादादि बन जाते हैं और मध्यमग्राम के मध्यमादि स्वर षड्जग्राम में षड्जादि बन जाते हैं।

(४) जिस प्रकार षड्जग्राम में 'गान्धारोत्कर्ष' का महत्व है, उसी प्रकार मध्यमग्राम में 'निषादोत्कर्ष' का महत्व है। गान्धारोत्कर्ष से एक भिन्न ग्राम की रचना संभव होती है और 'निषादोत्कर्ष' से एक नवीन स्वर स्थान की प्राप्ति।

वीणा पर दोनों ग्रामों के स्थान के बारे में अब किसी सन्देह को अवकाश नहीं है।

---

१. यों तो ग्राम-भेद के साथ साथ सभी स्वरों का संज्ञा भेद जुड़ा हुआ है, किन्तु भरत ने केवल इसी एक स्थान का उदाहरण इसलिये दिया है कि यही ग्राम-परिवर्तन का मूल है, जहाँ मध्यमग्रामका त्रिश्रुति पंचम और चतुःश्रुति धैवत दिखाई देता है।

स्वर संवाद की दृष्टि से हमने मध्यमग्राम का स्थान वीणा पर सिद्ध कर लिया और भरत के वचनों से उस स्थान की पूरी पुष्टि भी पा ली। अब एक और दृष्टि से भी इस विषय को स्पष्ट कर लें।

षड्जग्राम की एक मुख्य विशेषता है कि उसमें षड्ज-पंचम संवाद रहना ही चाहिये। जहाँ यह संवाद भंग हुआ, वहीं षड्जग्राम मिट जाता है। आगे चलकर मूर्च्छना प्रकरण में दी हुई सारणी को देखने से यह स्पष्ट होगा कि षड्जग्राम की सभी मूर्च्छनाओं में षड्ज और पंचम के बीच त्रयोदश श्रुति का संवादात्मक अन्तर है, केवल पंचम की मूर्च्छना में यह अन्तर द्वादश श्रुति का रह जाने से षड्ज-पंचम संवाद टूट जाता है और वहीं षड्जग्रामिक स्वर व्यवस्था मिट जाती है। उसी मूर्च्छना में मूल गान्धार के स्थान पर अन्तर गान्धार का प्रयोग करने से हमें द्विश्रुति (कोमल) धैवत के बजाय चतुःश्रुति धैवत मिल जाता है और इस प्रकार मध्यमग्रामिक स्वर व्यवस्था पूरी बन जाती है। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि षड्जग्राम के पंचम की मूर्च्छना में अन्तर गान्धार का प्रयोग करने से मध्यमग्राम मिल जाता है। इससे भी यह सिद्ध है कि मध्यमग्राम का आरम्भ-स्थान षड्जग्रामिक पंचम ही होना चाहिये। वहीं से हमें सहज रूप से त्रिश्रुति ऋषभ-पंचम मिल सकते हैं।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि षड्जग्राम के पंचम की मूर्च्छना में अन्तर गान्धार के प्रयोग मात्र से यदि मध्यम ग्रामवाले स्वर मिल जाते हैं तो फिर उन स्वरों को ग्राम के रूप में स्थान देने की क्या आवश्यकता थी? इसका उत्तर यही है कि जहाँ षड्ज पंचम का संवाद भंग होता है और ऋषभ-पंचम या षड्ज मध्यम संवाद बनता है, उसे एक नया स्थान माना गया और फिर षड्ज-पंचम-भाव-युक्त षड्जग्राम की ही भाँति उसे भी ग्राम का मौलिक स्थान दिया गया। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि जिस स्वर समूह में संवाद भेद दिखाई दिया, उसे षड्ज-पंचम संवाद वाले षड्जग्राम की भाँति मौलिक स्थान देने के लिये ही मध्यमग्राम की रचना की गई। केवल षड्जग्राम की मूर्च्छना के रूप में ही यदि यह स्वरावलि पड़ी रहती तो उसे वह महत्त्व न मिल पाता जो ग्राम का रूप देने से मिल पाया है। हम यह कह चुके हैं कि ग्राम ही मूर्च्छना का आधार है। इसलिये ऊपर कही हुई स्वरावलि 'ग्राम' का रूप पाकर ही मूर्च्छनाओं का आधार बन सकती है। केवल एक मूर्च्छना के रूप में ही यदि वह रहती तो वह अन्य मूर्च्छनाओं का आधार नहीं बन सकती थी। उसे 'ग्राम' का रूप देकर भरतादि ने मूर्च्छनाओं के लिये षड्जग्राम से भिन्न एक नये आधार की रचना की।

मध्यमग्राम का नाम 'मध्यम' सार्थक है या नहीं, इस पर भी थोड़ा सा विचार कर लेना रुचिकर होगा। हम यह देख चुके हैं कि षड्जग्राम का षड्ज मध्यमग्राम में मध्यम का स्थान पाता है। हम यह भी समझ चुके हैं कि षड्जग्राम के मध्यम से आरंभ करने पर हमें वांछित स्वरावलि नहीं मिल पाती। इसलिये मध्यमग्राम के नाम की संगति केवल इस प्रकार बिठाई जा सकती है कि जो स्थान षड्जग्राम में षड्ज बनता है, वही मध्यमग्राम में मध्यम बनता है।

नीचे लिखी नन्दिकेश्वर (?) की कारिका से हमारे बतलाये हुए वीणा पर मध्यमग्राम के आरंभस्थान की एक ओर पुष्टि होती है और दूसरी ओर मध्यमग्राम के नाम की सार्थकता का भी एक दूसरा, कुछ भिन्न संकेत मिलता है।

स ग्रामोऽस्त्विति विज्ञेयस्तस्य भेदास्त्रयः स्मृताः।
षड्जर्षभगान्धारास्त्रयाणां जन्महेतवः॥

अर्थात् ग्राम के तीन भेद हैं, जिनके जनक स्वर क्रमशः षड्ज, ऋषभ और गान्धार हैं। षड्जग्राम, मध्यमग्राम, गान्धारग्राम—ग्राम के तीन भेदों का यह क्रम रखने से मध्यमग्राम का आरंभस्थान ऋषभ[1] मिलता है।]

---

1. विद्यार्थी यह भली भाँति समझ चुके हैं कि वीणा पर आज हमारा जो षड्ज है, वह षड्जग्राम का मध्यम है। इसी स्थान को स्वरित (tonic) मान कर गान-वादन की प्रणाली प्राचीन काल से ही प्रचलित थी, यह बात

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि संगीत में 'सा', 'रि', 'ग', ये तीन स्वर मूलभूत माने गये हैं। पूर्वांग में सा, रि, ग की जो अवस्था है, उत्तरांग में ठीक वही अवस्था 'प', 'ध', 'नि' की है। 'मध्यम' स्वर पूर्वांग और उत्तरांग दोनों त्रिकों के मध्य में स्थित होने के कारण 'मध्यम'[1] कहलाता है। इसी प्रकार सा, रि, ग इन तीन मूलभूत स्वरों के मध्य में स्थित होने के कारण ऋषभ को भी 'मध्यम' कहा जा सकता है एवं तदनुसार उस ऋषभ से आरम्भ होने वाले ग्राम की भी मध्यम संज्ञा सार्थक हो जाती है। जोड़ के तार के नीचे मेरु से दूसरे पर्दे से आरम्भ करने को जो कहा गया है वह पर्दा भी जोड़ के तार का ऋषभ ही है और ऋषभ की 'मध्यम' संज्ञा यहाँ भी सार्थक है।

वीणा पर षड्जग्राम और मध्यमग्राम के आरम्भ-स्थान सिद्ध कर लेने के बाद एक बार पुनः संवाद दृष्टि से इन दोनों ग्रामों की मौलिक रचना पर विचार कर लें। इस प्रकरण के आरम्भ में ही हम कह चुके हैं कि षड्ज-पंचम-संवाद और षड्ज मध्यम-संवाद इन दोनों संवादों के आधार पर ही क्रमशः षड्जग्राम और मध्यमग्राम की रचना की गई है। षड्जग्राम की मूल स्वर-व्यवस्था में षड्ज-पंचम संवाद को हम देख ही चुके हैं। मध्यमग्राम के लिये भरत ने कहा है कि इसमें रि-प संवाद होता है। यह स्पष्ट है कि रि-प संवाद षड्ज-मध्यम संवाद की ही दूसरी सीढ़ी है। इसलिये रि-प संवाद का अर्थ सा-म संवाद ही लेना पड़ता है। भरत ने 'सा म' संवाद न कह कर रि-प संवाद का जो नाम लिया है, उसके पीछे यही हेतु हो सकता है कि पंचम की अवस्था में परिवर्तन आने मात्र से ग्राम का भिन्नत्व पैदा होता है यानी मध्यमग्राम की रचना होती है; इसलिये पंचम के इस महत्व को स्पष्ट करने के लिये ही 'सा-म' न कह कर 'रिप' संवाद कहा होगा। इस दृष्टि से मध्यम की स्वर व्यवस्था में संवाद देखने पर पता चलता है कि सा म, रि-प और म-नि इन स्वर जोड़ियों में तो हमें नव-श्रुत्यन्तर संवाद मिल जाता है, किन्तु गान्धार धैवत में यह संवाद नहीं है क्यों कि इन दोनों स्वरों में ग्यारह श्रुति का अन्तर है। किन्तु यदि मध्यमग्राम में उस के अन्तर गान्धार या यानी षड्जग्राम के काकली निषाद का प्रयोग किया जाए तो गान्धार और धैवत में नवश्रुति संवाद बन जाएगा।

म-नि संवाद तो सिद्ध ही है किन्तु प-सां संवाद हमें नहीं मिल सकता क्योंकि सा-प संवाद का भंग करके ही मध्यमग्राम की रचना की गई है और यह भी सच है कि एक सप्तक की मर्यादा लाँघ कर संवाद जाँचना उचित नहीं है। इसी प्रकार षड्जग्राम में षड्ज मध्यम भाव से प-रिं संवाद खोजना भी अनुचित है।

इसी पुस्तक में आधुनिक शुद्ध स्वर सप्तक का विवरण देते समय विस्तार से समझाई जायगी। यहाँ इतना ही समझना पर्याप्त है कि मध्यमग्राम का जो आरम्भ स्थान हम निश्चित कर चुके हैं, वह आधुनिक और प्राचीन प्रयोग के षड्ज (षड्जग्रामिक मध्यम) के संबंध से ऋषभ ही है।

जोड़ के तार के नीचे दूसरे पर्दे से मध्यमग्राम को आरम्भ करने की जो विधि हम ऊपर देख चुके हैं उसमें भी वह स्थान जोड़ के तार का ऋषभ ही है।

1. संगीत के प्रयोग में हम तार षड्ज का उपयोग करके सप्तक को पूरा करते हैं और उस अवस्था में वह सप्तक न रह कर अष्टक बन जाता है। इस अष्टक को जब पूर्वांग और उत्तरांग में — सा रि ग म और प ध नि सां में—विभक्त किया जाता है तब मध्यम स्वर को मध्यवर्ती या बीचोंबीच रहने वाला नहीं कहा जा सकता। उसकी वह अवस्था तो सप्तक ही में रहती है जब कि सप्तक को 'सा रि ग' और 'प ध नि' इस प्रकार दो त्रिकों में विभक्त किया जाता है यथा:—

सा रि ग—म—प ध नि।

इस प्रकार यह तो हमने देख लिया कि दो ग्रामों की रचना के मूल में दो मुख्य संवाद ही है। किसी अकेले ग्राम में दोनों संवाद एक साथ नहीं मिलते। जैसे—षड्ज-ग्राम में षड्ज-पंचम और षड्ज-मध्यम दोनो संवाद पूरे-पूरे एक साथ मिल जायें ऐसी बात नहीं है। दोनों ग्रामों को मिला कर देखने से इन दोनो संवादों का सम्मिलित दर्शन अवश्य होता है।

नीचे की सारिणी से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

षड्जग्राम				मध्यमग्राम			
सा – प संवाद		सा – म संवाद		सा – प संवाद		सा – म संवाद	
अपेक्षित स्वर-जोड़ी	संवाद है या नहीं ?	अपेक्षित स्वर जोड़ी	संवाद है या नहीं ?	अपेक्षित स्वर-जोड़ी	संवाद है या नहीं ?	अपेक्षित स्वर-जोड़ी	संवाद है या नहीं ?
सा – प	है	सा – म	है	सा – प	नहीं	सा – म	है
रि – ध	है	रि – प	नहीं	रि – ध	है	रि – प	है
ग॒ – नि॒	है	ग – ध	नहीं	ग॒ – नि॒	है	[1]ग – ध	है
म – र्सा	है	म – नि॒	है	म – र्सा	है	म – नि॒	है

हमारे आज के शुद्ध स्वर सप्तक में भी षड्जग्राम और मध्यमग्राम के षड्ज-पंचम और षड्ज-मध्यम संवादों का सम्मिलित रूप मिलता है। यह बात आधुनिक शुद्ध स्वर सप्तक के प्रकरण में अधिक स्पष्ट की जायगी। वहीं पर यह भी सिद्ध होगा कि मध्यमग्राम हमारे संगीत में आज भी जीवित है और यह प्रचलित धारणा निराधार है कि मध्यमग्राम प्रयोग से लुप्त हो चुका है और हमारा संगीत षड्जग्राम में ही सीमित रह गया है।

अन्त में इस बात पर विशेष ध्यान दिला देना आवश्यक है कि आज जिस प्रकार हम किसी भी स्वर-सप्तक को, अंग्रेज़ी के scale का अनुवाद करते हुए 'ग्राम' कह देते हैं उस अर्थ में प्राचीनों ने 'ग्राम' शब्द का प्रयोग नहीं किया है। यों तो प्रत्येक मूर्च्छना एक स्वतंत्र स्वर-सप्तक है, किन्तु वह शास्त्रीय दृष्टि से 'ग्राम' नहीं कहला सकती। ग्राम तो वही स्वर समूह कहलायेगा जिसे अन्य मूर्च्छना-प्रयोगों के लिये आधारभूत मान लिया गया हो। ऐसे आधारभूत स्वर-सप्तक दो ही हैं जिन्हें हम षड्जग्राम और मध्यमग्राम के रूप में देख चुके हैं।

---

1. मध्यमग्राम में अन्तर गान्धार के साथ ही उसके धैवत का संवाद हो सकता है, यह हम ऊपर देख चुके हैं।

मूर्च्छना

हम अभी पिछले प्रकरण में यह देख चुके हैं कि प्राचीन ग्रन्थकारों ने 'ग्राम' के रूप में अपनी मूल स्वरावलि स्थिर की है, जिसके आधार पर मूर्च्छनाएँ बनाई गई है। षड्जग्राम और मध्यमग्राम इन दोनों ग्रामों की स्वर-व्यवस्था हम स्पष्ट कर ही चुके हैं। उसी के आधार पर अब हम इन दोनों ग्रामों की मूर्च्छनाएं देख लें।

ग्रन्थों में मूर्च्छना की जो व्याख्याएँ पाई जाती हैं उनमें से कुछेक इस प्रकार हैं :—

क्रमयुक्ताः स्वराः सप्त मूर्च्छनास्त्वभिसंज्ञिताः।

(नाट्यशास्त्र २८)

क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम्।

(संगीत रत्नाकर १।)

आरोहश्चावरोहश्च स्वराणां जायते यदा।
तां मूर्च्छना तदा लोके प्राहुः..................

(संगीत पारिजात)

स्वरः संमूर्च्छितो यत्र रागतां प्रतिपद्यते।
मूर्च्छनामिति तां प्राहुः कवयो...............

मौलिक स्वर-सप्तक पर ही निर्भर रहते हैं। किसी मूर्च्छना के स्वरान्तराल कैसे होंगे, यह उस मूल स्वर-सप्तक पर ही अवलंबित रहेगा, जो ग्राम में सन्निहित है। मूर्च्छना बनाने की क्रिया में नीचे लिखे चार सोपान हमें समझ लेने चाहिए—

(१) सबसे पहिले एक निश्चित श्रुति-व्यवस्था वाले स्वर-समूह की स्थापना करनी होगी।

(२) इस नियत स्वर-समूह के प्रत्येक स्वर को क्रमशः आरम्भ स्थान मानते हुए आरोहावरोह करना होगा।

(३) जब जिस स्वर को आरम्भ स्थान माना हो उसे ही षड्ज या स्थित मान कर तदनुसार सब स्वरों की अवस्था देखनी होगी।

(४) इस प्रकार जो स्वरान्तराल मिलें उनका मध्य-सप्तक में प्रयोग करना होगा।

मूर्च्छनाओं द्वारा प्राप्त विभिन्न स्वरान्तरालों का मध्य सप्तक में प्रयोग बहुत महत्व रखता है। उसके बिना भिन्न-भिन्न स्वरान्तराल सिद्ध ही नहीं हो सकते। क्यों? यह आगे चल कर विकृत स्वरों का ब्योरा देते समय स्पष्ट होगा, जब इस विषय की अधिक चर्चा की जाएगी।

मूर्च्छनाओं द्वारा एक ही स्वरावलि में से विभिन्न स्वरान्तरालों की प्राप्ति कैसे होती है यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए। कुछ उदाहरणों से हम इसको स्पष्ट कर लें। षड्जग्राम की ही स्वरावलि को ले लें। यदि हम इसके ऋषभ से आरम्भ करके सात स्वरों का आरोहावरोह करेंगे तो सब स्वरों के अन्तराल इस प्रकार बदल जाएँगे। यथा—

षड्जग्राम— सा – रि – ग॒ – म – प – ध – नि॒ – सां
(४) ३ – २ – ४ – ४ – ३ – २ – ४ –

ऋषभ मूर्च्छना— रि – ग॒ – म – प – ध – नि॒ – सां – रिं
(३) २ – ४ – ४ – ३ – २ – ४ – ३ –
सा – रि॒ – ग॒ – म – प – ध॒ – नि॒ – सां
(३) २ – ४ – ४ – ३ – २ – ४ – ३ –

स्पष्ट है कि मूल स्वरावलि में जो अन्तराल ऋषभ और गान्धार के बीच था, इस मूर्च्छना में वही अन्तराल षड्ज और ऋषभ के बीच का स्थान पा गया है। उसी प्रकार ऊपर लिखे ढंग से अन्य सभी स्वरों के अन्तराल बदल गए और आधुनिक भैरवी का सा स्वर-रूप खड़ा हो गया। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस मूर्च्छना में जो नये स्वरान्तराल प्राप्त हुए हैं, उनका उसी रूप में प्रयोग तभी हो सकता है जब कि उन सभी अन्तरालों को मध्य सप्तक में लाया जाय यानी मध्य षड्ज से उस प्राप्त स्वरावलि का आरम्भ किया जाय। उदाहरण के लिए मूर्च्छना द्वारा प्राप्त स्वरावलि में षड्ज-ऋषभ, ऋषभ-गान्धार इत्यादि स्वरों के जो भी आपसी अन्तराल हों उन्हीं अन्तरालों वाले स्वरों को मध्य सप्तक में प्रयोग में लाने से ही उस नई स्वरावलि की स्थापना हो सकती है। इसी क्रिया से नये स्वरान्तराल और नये राग-रूप की प्राप्ति होती है। प्रस्तुत कक्षा के विद्यार्थी यह जानते ही हैं कि किसी भी राग में यदि षड्ज को छोड़कर कुछ देर के लिए किसी अन्य स्वर को आरम्भ स्थान मानकर आरोहावरोह-क्रम से आलाप या तान-क्रिया करते हैं तो उतनी सी देर के लिए मूल-षड्ज सुनने वालों के ध्यान से ओझल हो जाता है और जिस स्वर पर आरम्भ स्थान माना गया हो उसी स्थान से बनी हुई स्वरावलि भासित होने लगती है। कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। जैसे, मारवा में ऋषभ को ही षड्ज का स्थान देकर यदि 'रि॒गम॑धनिरिं॒', रिं॒निधम॑गरि॒' इसी आरोहावरोह-क्रम से आलाप या तान क्रिया की जाए तो कुछ देर के लिए मूल षड्ज का तिरोभाव हो जाने से रि॒गम॑धनिरिं॒ ही मालकौंस के सांग॒मध॒नि॒सां के रूप में भासित होने

लगेगा। तद्वत् गुर्जरी तोड़ी में यदि निषाद पर षड्ज की स्थापना करके आरोहावरोह-क्रम से आलपतान लेंगे तो 'निरिग्मधनि' ही 'सारिगपधसां' का रूप लेकर भूपाली या देसकार का दर्शन कराएँगे। उसी प्रकार विहाग के गान्धार को षड्ज का स्थान देकर आलापचारी की जाए तो उसमें भैरवी की सी स्वरावलि प्रतीत होगी। 'प – म् गमग', यह आलाप का टुकड़ा भैरवी के 'ग् – रि सा रिसा' के रूप में सुनाई देगा। किन्तु, हम जानते हैं कि थोड़ी देर ऐसी क्रिया करने के बाद मूल षड्ज दिखाना ही पड़ता है क्योंकि उसी से प्रस्तुत राग की स्थापना हो सकती है। इस प्रकार एक ही राग में से जो भिन्न-भिन्न स्वरावलियाँ हमें दिखाई देती हैं, उनको उसी रूप में स्थिर नहीं बनाया जा सकता क्योंकि मूल राग की रक्षा के लिए मूल षड्ज और उसकी स्वरावलि को स्थिर रखना ही पड़ता है। इसीलिए यह कहा गया है कि किसी भी मूर्च्छना द्वारा जो स्वरान्तराल प्राप्त होते हैं, उनका मध्य सप्तक में प्रयोग करना अनिवार्य है। इसीलिए भरत ने कहा है :—

मध्यमस्वरेण वैणेन मूर्च्छनानिर्देशः कार्यः, अनाशित्वान्मध्यमस्य।

(नाट्यशास्त्र २८)

अर्थात् वीणा के मध्यम स्वर से मूर्च्छनाओं का निर्देश करना चाहिए, क्योंकि मध्यम अविनाशी है।

यहाँ 'मध्यम स्वर' से भरत का अभिप्राय वीणा पर षड्जग्राम के मध्यम से है जो कि आधुनिक मध्य सप्तक का षड्ज है; यह बात आगे चलकर और स्पष्ट हो जाएगी। इसी प्रकार मतंग ने भी कहा है :—

मध्यसप्तकेन मूर्च्छनानिर्देशस्तावन्मन्द्रतारसंसिद्धयर्थम्। मध्यमसप्तकस्याविनाशित्वात्। भरतेनाप्युक्तं मध्यमस्वरेण मूर्च्छनानिर्देशो भवति अविनाशित्वान्मध्यमस्य।

अर्थात्—मध्य सप्तक से मूर्च्छनाओं का निर्देश किया जाता है, क्योंकि मध्य सप्तक अविनाशी है, भरत ने भी कहा है कि मध्यम स्वर से मूर्च्छना-निर्देश होता है, क्योंकि मध्यम अविनाशी है।

भरत और मतंग के वचनों से यह स्पष्ट है कि उनके समय में भी 'मध्य-सप्तक' में ही सभी मूर्च्छनाओं का प्रयोग किया जाता था। भरत के 'मध्यम स्वर' और मतंग के 'मध्य सप्तक', इन दोनों में शब्द-भेद अवश्य है, किन्तु दोनों का तात्पर्य एक ही है और दोनों एक दूसरे की पुष्टि करते हैं। इन दोनों वचनों को एक अन्य रूप से भी समझ सकते हैं।

वीणा पर 'मध्यम' का पर्दा (आधुनिक भाषा में षड्ज) ही एक ऐसा स्थान है जहाँ से एक ही तार पर मन्द्र मध्य और तार इन तीनों स्थानों की सिद्धि हो सकती है और मूर्च्छनादि-प्रयोग सुविधा से किये जा सकते हैं। उसी स्थान को भरत ने 'मध्यम स्वर' कहा है, क्योंकि षड्जग्राम का वह मध्यम है और उसी को मतंग ने 'मध्य सप्तक' कहा है क्योंकि 'मध्य सप्तक' का यह आरम्भ-स्थान है।

इस प्रकार हम ने देखा कि मूर्च्छना का प्रयोजन तभी सिद्ध हो सकता है जब कि उस से प्राप्त विभिन्न स्वरान्तरालों का मध्य सप्तक में प्रयोग किया जाए। इसी तथ्य को शार्ङ्गदेव ने इस प्रकार कहा है:—

षड्जस्थानस्थितैर्न्याद्यै रजन्याद्याः परे विदुः।

(संगीत रत्नाकर १।)

इस का शब्दार्थ यह है कि षड्जस्थानस्थित निषादादि से षड्जग्राम की रजनी आदि मूर्च्छनाएं क्रमशः बनती हैं। इस का सीधा अर्थ यही है कि 'नि', 'ध', 'प' इत्यादि स्वरों को षड्ज के स्थान पर स्थित किया जाए, यानी उन मूर्च्छनाओं के आरम्भ स्वर को षड्ज मानने से जो भिन्न स्वरान्तर प्राप्त होते हैं, उन सब का मध्य षड्ज से प्रयोग किया जाय। इसीलिये कहा है कि निषादादि स्वरों को षड्ज के स्थान पर स्थित किया जाय।

षड्जग्राम और मध्यमग्राम की मूर्च्छनाओं के नाम तथा आरम्भ स्वर भरत के नीचे लिखे वचनों से स्पष्ट होंगे। परवर्ती सभी ग्रन्थकारों ने इन्हीं नामों का प्रयोग किया है :—

आद्या ह्युत्तरमन्द्रा स्यात् रजनी चोत्तरायता।
चतुर्थी शुद्धषड्जा तु पञ्चमी मत्सरीकृता॥
अश्वक्रान्ता तु षष्ठी स्यात् सप्तमी चाभिरुद्‌गता।
षड्जग्रामाश्रिता ह्येते विज्ञेयाः सप्त मूर्च्छनाः॥

तत्र षड्जग्रामे षड्जेनोत्तरमन्द्रा, निषादेन रजनी, धैवतेनोत्तरायता, पञ्चमेन शुद्धषड्जा, मध्यमेन मत्सरीकृता, गान्धारेणाश्वक्रान्ता, ऋषभेणाभिरुद्‌गता इति।

सौवारी हरिणाश्वा च स्यात् कलोपनता तथा।
चतुर्थी शुद्धमध्या तु मार्गवी पौरवी तथा॥
हृष्यका चैव विज्ञेया सप्तमी द्विजसत्तमा।
मध्यमग्रामजा ह्येते विज्ञेया सप्त मूर्च्छनाः॥

अथ मध्यमग्रामे मध्यमेन सौवीरी, गान्धारेण हरिणाश्वा, ऋषभेण कलोपनता, षड्जेन शुद्धमध्यमा, निषादेन मार्गी, धैवतेन पौरवी पञ्चमेन हृष्यका इति।

इस प्रकार दोनों 'ग्रामों' को मिला कर कुल चौदह मूर्च्छना हुईं। यथा:—

षड्जग्राम		मध्यम ग्राम	
आरम्भक स्वर	मूर्च्छना नाम	आरम्भक स्वर	मूर्च्छना नाम
षड्ज[1]	उत्तरमन्द्रा	मध्यम	सौवीरी
निषाद	रजनी	गान्धार	हरिणाश्वा
धैवत	उत्तरायता	ऋषभ	कलोपनता
पञ्चम	शुद्धषाड्जी	षड्ज	शुद्धमध्यमा
मध्यम	मत्सरीकृता	निषाद	मार्गी
गान्धार	अश्वक्रान्ता	धैवत	पौरवी
ऋषभ	अभिरुद्‌गता	पञ्चम	हृष्यका

१. षड्जग्राम के मूर्च्छना-क्रम के आरम्भ-स्थान की कुछ आगे चलकर जो चर्चा की जायेगी उससे यह स्पष्ट होगा कि यहाँ जिसे षड्ज कहा गया है, वह वास्तव में षड्जग्रामिक मध्यम है।

भरत ने गान्धारग्राम का तो उल्लेख ही नहीं किया है, अतः उन्होंने दो ही ग्रामों की मूर्च्छनाएँ बताई हैं। मतंग ने भी गान्धारग्राम को स्वर्ग में ही स्थित बता कर छोड़ दिया है। उसकी मूर्च्छनाओं इत्यादि का उल्लेख नहीं किया है। नारद के 'संगीत मकरन्द' में और शार्ङ्गदेव के 'संगीत रत्नाकर' में गान्धारग्राम की मूर्च्छनाओं का नामोल्लेख मिलता है। यथा :—

नन्दा विशाला सुमुखी चित्रा चित्रावती शुभा।
आलापा चेति गान्धारग्रामे स्युः सप्त मूर्च्छना॥

(संगीत मकरन्द १।१।९५)

नन्दा विशाला सुमुखी चित्रा चित्रावती सुखा।
आलापा चेति गान्धारग्रामे स्युः सप्त मूर्च्छना॥

(संगीत रत्नाकर १।४।२५-२६)

इसी नामोल्लेख के आधार पर लोग 'तीन ग्राम' के साथ-साथ 'इक्कीस मूर्च्छनाओं' की कथा कहते आए हैं। कई ध्रुपद गीतों में विद्यार्थियों ने 'तीन ग्राम' और 'इक्कीस मूर्च्छनाओं' का बात सुनी होगी। आज जब गान्धारग्राम का स्वरूप ही अदृश्य है, अश्रुत है, तब उसकी मूर्च्छनाओं का स्वरूप जानना तो असंभव ही है, क्योंकि मूर्च्छना ग्राम पर ही आधृत होती है। जब तक गान्धारग्राम का स्वर-रूप हमें प्रयोग-सिद्ध नहीं हो जाता तब तक उस के लिये मौन रहना ही हम उचित समझते हैं। इस लिये यहाँ हम क्रमशः षड्जग्राम और मध्यमग्राम की मूर्च्छनाओं का ही विवरण देंगे।

षड्जग्राम और मध्यमग्राम की मूर्च्छनाओं का जो क्रम ऊपर दिया गया है, उस से यह स्पष्ट है कि दोनों ग्रामों में अवरोहि-क्रम से मूर्च्छनाएं बनाई गई हैं, यानी षड्ज के बाद ऋषभ गान्धार मध्यमादि की मूर्च्छना न बना कर निषाद धैवत पंचमादि की बनाई गई हैं। यों तो किसी भी मूर्च्छना में सीधा आरोहावरोह ही रहता है—जैसे कि ऋषभ की मूर्च्छना का रूप 'रिगमपधनिसारि' ही होगा, 'रिसानिधपमगरि' नहीं, किन्तु सातों मूर्च्छनाओं का परस्पर-क्रम अवरोही ही रखा गया है। यह अवरोहि-क्रम रखने के पीछे भरत का जो विशेष हेतु है, वह कुछ आगे चलकर स्पष्ट किया जाएगा।

षड्जग्रामिक मूर्च्छनाएं

षड्जग्राम की मूर्च्छनाओं के सम्बन्ध में सब से पहिले एक बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए, मनमें स्थिरता से जमा लेनी चाहिये कि षड्जग्राम का आरंभस्थान वीणा के मेरु से चौथी श्रुति पर यानी दूसरे पर्दे पर है। इस ग्राम के

मूर्च्छना क्रम में जो चौथी मूर्च्छना है, उस का नाम है शुद्धषाड्जी। 'पञ्चमेन शुद्धषाड्जी' वहाँ ऐसा कहा गया है। इस नाम से ऐसा स्पष्ट है कि इस मूर्च्छना का आरम्भ स्थान ही षड्जग्राम का मूल स्थान या 'शुद्ध षड्ज' होना चाहिए। किन्तु हम जानते हैं कि एक ओर तो यह कहा गया है कि षड्जग्राम का मूर्च्छना-क्रम षड्ज से आरम्भ होता है यानी पहिली मूर्च्छना षड्ज से बनेगी और दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि 'शुद्धषड्जी' का स्थान मूर्च्छना क्रम में पहिला न हो कर चौथा है। इन दोनों बातों की संगति कैसे बिठाई जाए यही प्रश्न है। जिस षड्ज से पहिली मूर्च्छना 'उत्तरमन्द्रा' का आरम्भ करना है, वह षड्ज कौन सा है? तद्वत् 'शुद्धषाड्जी' का आरम्भस्थान 'शुद्धषड्ज' कहाँ है? इतना तो निश्चित है कि दोनों स्थान एक नहीं हो हैं, क्यों कि दोनों से भिन्न-भिन्न मूर्च्छनाएं बनती हैं और एक स्थान से तो एक ही मूर्च्छना बन सकती है। षड्जग्राम का 'शुद्ध षड्ज' यानी चौथी मूर्च्छना का आरम्भस्थान हमें वीणा के दूसरे पर्दे पर ही स्थापित करना हो तो पहिली मूर्च्छना का 'षड्ज' कौन सा होगा, जिस के लिये 'षड्जेन उत्तरमन्द्रा' कहा गया है? भरत के बताए हुए मूर्च्छना-क्रम को देखने से इस उलझन का हल मिल जाएगा। उस क्रम में शुद्धषाड्जी का ठीक २ स्थान तभी मिल सकता है जब कि हम पहिली मूर्च्छना को षड्जग्राम के षड्ज से आरंभ न कर के उस के मध्यम से आरम्भ करें। ऐसा करने से आरोह-क्रम में चौथी मूर्च्छना म, ग, रि, सा, इस क्रम से 'मूल षड्ज' पर मिल जाती है। उसी मध्यम को जब षड्ज मान लेते हैं तो शुद्धषाड्जी का आरम्भ स्थान सा, नि, ध, प इस क्रम में चौथा बन जाता है। और तभी 'पञ्चमेन शुद्धषाड्जी' यह वचन सार्थक होता है। षड्जग्राम के मध्यम को भला षड्ज क्यों कहा गया? इस का उत्तर यही है कि संगीत के प्रयोग पक्ष में भरत ने षड्ज-ग्राम के मध्यम को ही स्वरित का स्थान दिया है। इसीलिए मध्यम को उन्होंने 'अविनाशी' कहा है और सब स्वरों में से प्रवर माना है। उसे सर्वथा अविलोपी कहा गया है, यहाँ तक कि जातियों के औडव षाडव प्रकारों में 'सा' 'प' तक का लोप ग्राह्य माना गया है, किन्तु 'मध्यम' को सर्वथा अलोप्य कहा है। इस से यह सिद्ध है कि मध्यम को उन्होंने स्वरित या 'षड्ज' का स्थान दिया है और यही बात स्पष्ट करने के लिये उन्होंने पहिली मूर्च्छना के आरम्भ स्थान यानी षड्जग्रामिक मध्यम को 'मध्यम' न कह कर षड्ज कहा है। इसे षड्ज कहते ही षड्जग्राम का मूल आरम्भ स्थान पञ्चम बन जाता है। यह स्थान इस प्रकार 'पञ्चम' होने पर भी षड्जग्राम की मौलिक स्वर-व्यवस्था का आरम्भ-स्थान है, इसी तथ्य को स्पष्ट करने के लिये उन्होंने उस स्थान से आरम्भ होने वाली मूर्च्छना को 'शुद्धषाड्जी' नाम दिया है, जिस से षड्जग्राम का मौलिक आरम्भ-स्थान ओझल न हो जाय। दूसरी ओर, षड्ज ग्राम का मध्यम ही स्वरित का स्थान पाता है, इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिये उन्होंने पहिली मूर्च्छना के आरंभ स्थान को मध्यम न कह कर 'षड्जेन उत्तरमन्द्रा' कहा है। इस प्रकार ऊपर लिखी दोनों बातों की संगति ठीक से बैठ जाती है और षड्जग्राम का मूल स्थान भी अक्षुण्ण बना रहता है। यहाँ यह स्पष्ट हुआ होगा कि षड्जग्राम का मूल आरम्भ-स्थान तथा उसी पहिली मूर्च्छना का आरम्भ-स्थान—ये दोनों एक नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, षड्जग्राम के मध्यम को 'सा' का स्थान देने से जो पंचम आएगा, वही 'शुद्धषाड्जी' मूर्च्छना का आरंभस्थान है। वही षड्जग्राम का मूल 'षड्ज' है। अर्थात् षड्जग्राम के मध्यम को 'सा' मान कर आज हम वीणा पर जहाँ से वादन क्रिया करते हैं, वहीं से 'उत्तरमन्द्रा' मूर्च्छना का आरंभ करना चाहिए। तभी इन उलझी हुई बातों की संगति बैठेगी। 'उत्तर मन्द्रा' संज्ञा (मन्द्र जिसके उत्तर में है) भी तभी सार्थक होती है, क्यों कि वहीं से वीणा के बाज के तार पर 'सानिधप' इस अवरोहि-क्रम से मन्द्र में मूर्च्छना-प्रयोग करना सम्भव है। वीणा के प्रथम बाज के तार को सर्वत्र मध्यम ही कहा गया है, षड्ज नहीं। उसे मध्यम मान कर चलने से जहाँ षड्ज आता है, वही हमारा वादन क्रिया का षड्ज है। भरत के वचन 'षड्जेन उत्तरमन्द्रा' का भी वही षड्ज है। षड्जग्राम का वह मध्यम होने पर भी वादन-क्रिया में उसी का महत्त्व है। उसी को षड्ज मान कर चलना है, इसीलिए भरत मतंग ने मध्यम को अविनाशी और अलोप्य कहा है।

ऊपर बताये हुए क्रम से षड्जग्राम की मूर्च्छनाएं बनाने से जो स्वरावलियाँ मिलती हैं, उन का किन-किन आधुनिक रागों से सादृश्य दिखाई देता है, यह अगले पृष्ठ पर दी हुई सारणी से स्पष्ट होगा।

षड्जग्रामिक मूर्च्छनाएँ

मूर्च्छना-क्रम और नाम	आरंभक स्वर: मूल षड्जग्रामिक व्यवस्थानुसार	आरंभक स्वर: षड्जग्राम के मध्यम को षड्ज मानने से	षड्जग्रामिक स्वर	सप्तक या पूरक स्वर	मूर्च्छना के आरंभक स्वर को षड्ज मानने से बनी हुई स्वर – व्यवस्था	सप्तक का पूरक स्वर	किन आधुनिक रागों से स्थूल सादृश्य दिखाई देता है ?
१. उत्तरमन्द्रा	म	सा	म – प – ध – नि – सा – रि – ग ४ – ४ – ३ – २ – ४ – ३ – २	म ४	सा – रि – ग – म – प – ध – नि् ४ – ४ – ३ – २ – ४ – ३ – २	सा ४	खमाज सदृश
२. रजनी	ग	नि	ग – म – प – ध – नि – सा – रि २ – ४ – ४ – ३ – २ – ४ – ३	ग २	सा – रि – ग* – म् – प – ध* – नि २ – ४ – ४ – ३ – २ – ४ – ३	सा २	कल्याण ,,
३. उत्तरायता	रि	ध	रि – ग – म – प – ध – नि – सा ३ – २ – ४ – ४ – ३ – २ – ४	रि ३	सा – रि् – ग् – म* – प – ध् – नि् ३ – २ – ४ – ४ – ३ – २ – ४	सा ३	भैरवी ,,
४. शुद्धषड्जी	सा	प	सा – रि – ग – म – प – ध – नि ४ – ३ – २ – ४ – ४ – ३ – २	सा ४	सा – रि* – ग् – म – प – ध – नि् ४ – ३ – २ – ४ – ४ – ३ – २	सा ४	(षड्ज ग्राम की मौलिक श्रुति-व्यवस्था) काफी सदृश
५. मत्सरीकृता	नि	म	नि – सा – रि – ग – म – प – ध २ – ४ – ३ – २ – ४ – ४ – ३	नि २	सा – रि – ग – म – प – ध* – नि २ – ४ – ३ – २ – ४ – ४ – ३	सा २	बिलावल सदृश
६. अश्वक्रान्ता	ध	ग	ध – नि – सा – रि – ग – म – प ३ – २ – ४ – ३ – २ – ४ – ४	ध ३	सा – रि् – ग् – म – म् – ध् – नि्* ३ – २ – ४ – ३ – २ – ४ – ४	सा ३	पंचम वर्जित दो मध्यम की भैरवी अथवा बहादुरी तोड़ी सदृश
७. अभिरुद्गता	प	रि	प – ध – नि – सा – रि – ग – म ४ – ३ – २ – ४ – ३ – २ – ४	प ४	सा – रि* – ग् – म – प* – ध् – नि् ४ – ३ – २ – ४ – ३ – २ – ४	सा ४	आसावरी सदृश

* तारक चिह्न का तात्पर्य नीचे नोट में स्पष्ट किया गया है।

१. इस मूर्च्छना में षड्ज-पंचम-संवाद का भंग हो जाता है, क्योंकि इसमें षड्ज से पंचम का अन्तर १३ श्रुति का न होकर १२ श्रुति का ही है। ये मध्यमग्राम का आरंभ स्थान नहीं है।

नोट—विशेष रूप से ध्यान दिया जाए कि ऊपर दी हुई सारिणी में जिन स्वरों पर तारक चिह्न लगाया गया है, उनके अन्तराल ऐसे हैं जिन्हें संवाददृष्टि से ज्यों का त्यों मध्यसप्तक में नहीं लाया जा सकता। उदाहरण के लिये—'रजनी' मूर्च्छना में षड्जग्राम का पंचम ही गान्धार का स्थान पा जाता है और उस का मूर्च्छना के षड्ज से आठ श्रुति का अन्तर होता है। यों तो गान्धार का षड्ज से सात श्रुति का अन्तर ही संवादसिद्ध है, किन्तु जब वीणा पर षड्जग्राम के गान्धार के परदे को आरम्भस्थान मान कर आरोहावरोह करेंगे तब षड्जग्राम का पंचम गान्धार का स्थान पा जाएगा और मूर्च्छना के षड्ज से उस का अन्तर आठ श्रुति का होगा। यह अन्तराल संवादविरुद्ध होने पर भी उस मूर्च्छना में कोई विवाद बिल्कुल नहीं खड़ा करता, क्योंकि मूर्च्छना में परदों पर स्थित स्वरों के नाम मात्र में परिवर्तन हुआ है; वीणा के परदे और तार जिस संवाद-संबन्ध से मिले रहते हैं, उस में किसी प्रकार का व्याघात नहीं हुआ है। परदों पर स्वर-स्थानों के नाम के परिवर्तन मात्र से कोई विवाद खड़ा होने का प्रश्न ही नहीं उठता। इस लिये कान को वह स्वरावलि ठीक कल्याण की सी ही सुनाई देगी। किन्तु इसी स्वरावलि को जब मध्यसप्तक में लाएंगे तब मूर्च्छना में आया हुआ षड्ज-गान्धार का आठ श्रुति का अन्तराल प्रयोग में नहीं लाया जा सकेगा, क्यों कि वहाँ पर गान्धार का परदा षड्ज से सात श्रुति के संवादी अन्तराल पर बँधा हुआ है। उस परदे को खिसका कर आठ श्रुति के अन्तराल पर करना एक जबर्दस्त विवाद खड़ा करना होगा जो क्रिया में कदापि मान्य नहीं हो सकता। इसी प्रकार अन्य मूर्च्छनाओं में भी कुछ ऐसे स्वरान्तराल मिलते हैं जो हूबहू उसी रूप में मध्य सप्तक में नहीं लाये जा सकते। मूर्च्छनाओं द्वारा प्राप्त सभी अन्तरालों का मध्य सप्तक में प्रयोग करने का जो सिद्धान्त प्राचीन काल से चला आया है उसका तात्पर्य यही है कि वीणा के परदों की संवादमय स्थिति अक्षुण्ण रखने की मर्यादा के भीतर ही यह प्रयोग हो सकता है, होता है और होना चाहिए।

अब हम मध्यमग्रामिक मूर्च्छनाओं को ले लें।

मध्यमग्रामिक मूर्च्छनाएं

मध्यमग्राम की स्वर-व्यवस्था वीणा पर किस स्थान से मिलती है, इस की विस्तृत चर्चा हम ग्राम प्रकरण में कर चुके हैं। यहाँ उसे संक्षेप में दोहरा लेना अच्छा होगा, जिस से मूर्च्छनाओं को समझने में सुविधा हो। मध्यमग्राम की पहिली मूर्च्छना (सौवीरी) को मध्यम से आरंभ करने को कहा गया है। उस कथन का आज तक प्रायः सभी ने यह अर्थ लगाया है कि षड्जग्राम के मध्यम से मध्यमग्राम की मूल स्वर-व्यवस्था का आरम्भ करना चाहिए। यह एक बहुत बड़ी भ्रांति बनी हुई है। हम यह देख ही चुके हैं कि उस स्थान से मध्यमग्राम की स्वर-व्यवस्था नहीं ही मिल पाती। हम यह भी देख चुके हैं कि षड्जग्राम का पंचम ही एक ऐसा स्थान है, जहाँ से मध्यमग्राम की त्रिश्रुति 'रि–प' संगति की स्वरावलि प्राप्त होती है। ष०ग्राम के पंचम से आरंभ की हुई स्वरावली में ही षड्ज-पञ्चम-भाव टूट जाता है और उसके स्थान पर षड्ज-मध्यम भाव की स्थापना हो जाती है। इसलिये उसी स्थान को यानी षड्जग्राम के पञ्चम (आधुनिक ऋषभ) को ही मध्यम ग्रामका मूल-स्थान—मूल षड्ज निश्चित कर लेने के बाद ही मध्यमग्राम का मूर्च्छना क्रम हम बना सकते हैं। म०ग्राम की प्रथम मूर्च्छना मध्यम से प्रारंभ की जाने का विधान भरत ने दिया है। यथाः—'मध्यमेन सौवीरी' इत्यादिः—इस का अर्थ यही है कि मध्यमग्राम के मूल षड्ज के मध्यम से हमें इस पहिली मूर्च्छना का आरम्भ करना होगा। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि षड्जग्राम का मूर्च्छना-क्रम भी उस ग्राम के मूल स्थान से आरंभ न हो कर

उसके मध्यम से ही आरंभ होता है। तभी चौथी मूर्च्छना शुद्धषाड्जी का ठीक स्थान मिल पाता है। उसी प्रकार मध्यमग्राम का मूर्च्छना-क्रम भी उस के षड्ज से शुरू न हो कर उस के मध्यम से शुरू होता है। ध्यान रहे कि मध्यमग्राम के मध्यम को स्वरित का स्थान प्राप्त नहीं है, इसलिए उसे सीधा मध्यम ही कहा गया है षड्ज नहीं। यहाँ एक बात पुनः ध्यान में रखना उचित होगा कि षड्जग्रामिक मध्यम को स्वरित या 'षड्ज' का स्थान प्राप्त होने से षड्जग्रामिक मूर्च्छना-क्रम के आरम्भ स्थान को 'मध्यम' न कह कर षड्ज ही कहा गया है। मध्यमग्राम की मूर्च्छनाओं में चौथी मूर्च्छना का नाम 'शुद्धमध्यमा' है और 'मगरिसा' इस अवरोह-क्रम से चौथी मूर्च्छना में ही मध्यमग्राम की मौलिक श्रुति-व्यवस्था मिलती है। अतः उसका 'शुद्धमध्यमा नाम 'शुद्धषाड्जी' की ही भाँति सार्थक है। हम यह देख चुके हैं कि मध्यमग्राम का जो आरंभ-स्थान है, उसके अनुसार षड्जग्राम का मूल षड्ज ही मध्यमग्राम के मध्यम का स्थान पाता है। अतः हमें वहीं से मध्यमग्राम की पहिली मूर्च्छना का आरंभ करना होगा।

मध्यमग्राम की मूर्च्छनाओं की सारणी देने से पहिले एक बात का पुनरुल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है। हमने देखा कि दोनों ग्रामों का मूर्छना क्रम उनर ग्रामों के मध्यम से आरंभ होता है अर्थात् दोनों ग्रामों में पहिली मूर्च्छना ग्राम के मध्यम से आरंभ होती है। ऐसा क्रम रखने के पीछे भरत का जो विशेष हेतु प्रतीत होता है, उसी का थोड़ा सा स्पष्टीकरण यहाँ आवश्यक है। यों तो ग्राम के किसी भी स्वर से मूर्च्छना क्रम आरंभ करने से वे ही स्वरावलियाँ मिलेंगी जो उसी ग्राम के किसी अन्य स्वर से आरंभ करने पर मिलतीं। केवल क्रम में भेद रहेगा। किन्तु फिर भी दोनों ग्रामों का मूर्च्छना-क्रम उन के मध्यम से ही आरंभ करने के पीछे भरत का विशेष हेतु है और वह इस प्रकार है। हम जानते हैं कि जिस किसी भी स्वरावलि को आधार मान कर मूर्च्छनाएं बनाई जाएंगी, वह आधारभूत स्वरावलि स्वयं भी उन सात मूर्च्छनाओं में से एक स्थान अवश्य पाएगी। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं- कि जिस 'ग्राम' के आधार पर सात मूर्च्छनाएं बनाई जाएंगी, वह 'ग्राम' स्वयं भी उन सात मूर्च्छनाओं में एक स्थान अवश्य ग्रहण करेगा। भरत ने दोनों ग्रामों की सात सात मूर्च्छनाओं के ठीक बीचोंबीच उन २ ग्रामों की मूल स्वरावलि को स्थान दिया है। इसीलिए षड्जग्राम और मध्यमग्राम दोनों के मूर्च्छना-क्रम में शुद्धषाड्जी और शुद्धमध्यमा का स्थान चौथा है। चौथी संख्या सात के ठीक बीचोंबीच आती है, जिस के दोनों ओर तीन-तीन मूर्च्छनाओं का स्थान है। ग्राम की मौलिक स्वरावलि को मूर्च्छनाओं के बीचोंबीच स्थान देने के लिए ही मूर्च्छना-क्रम को ग्राम के 'मध्यम' से आरंभ किया गया है। प्रत्यक्ष प्रयोग-गत सुविधा इस विधान का एक मुख्य हेतु है। यह तथ्य ध्यान से ओझल न हो इसलिये इतनी स्पष्टता की गई है। यहाँ एक बात दोहरा-देना आवश्यक है कि षड्जग्राम के मूर्च्छना-क्रम का आरंभ-स्थान उस ग्राम का 'मध्यम' होते हुए भी, उसे मध्यम न कह कर षड्ज कहा गया है, कारण उसी 'मध्यम' को प्रयोग में स्वरित का स्थान प्राप्त है।

ऊपर की चर्चा से यह भी स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि दोनों ग्रामों के मध्यम से उनका मूर्च्छना-क्रम आरंभ होने के कारण ही मूर्च्छनाओं का अवरोहि-क्रम रखा गया है। अवरोहि-क्रम से ही 'मगरिसा' इस प्रकार चौथी मूर्च्छना में उभय ग्राम की मूल स्वरावलि को स्थान मिल सकता है।

मध्यमग्राम के मध्यम से उसका मूर्च्छना-क्रम आरंभ करके क्रमशः सातों मूर्च्छनाओं को संलग्न सारणी में दिखाया गया है।

मध्यमग्रामिक मूर्च्छनाएँ

मूर्च्छना-संख्या और नाम	आरंभक स्वर	मध्यमग्रामिक स्वर	मतक का पूरक स्वर	मूर्च्छना के आरंभक स्वर को षड्ज मानने से बनी हुई स्वर व्यवस्था	सतक का पूरक स्वर	किन आधुनिक रागों से स्थूल सादृश्य दिखाई देता है ?
१. सौवीरी	म	म – प – ध – नि – सा – रि – ग ४ – ३ – ४ – २ – ४ – ३ – २	म ४	सा – रि* – ग – म – प – ध – नि् ४ – ३ – ४ – २ – ४ – ३ – २	सां ४	खमाज सदृश
२. हरिणाश्वा	ग	ग – म – प – ध – नि – सा – रि २ – ४ – ३ – ४ – २ – ४ – ३	ग २	सा – रि – ग – म् – प – ध* – नि २ – ४ – ३ – ४ – २ – ४ – ३	सां २	कल्याण ,,
३. कलोपनता	रि	रि – ग – म – प – ध – नि – सा ३ – २ – ४ – ३ – ४ – २ – ४	रि ३	सा – रि् ग् – म – प – ध् – नि् ३ – २ – ४ – ३ – ४ – २ – ४	सां ३	भैरवी ,,
४. शुद्धमध्यमा	सा	सा – रि – ग – म – प – ध – नि ४ – ३ – २ – ४ – ३ – ४ – २	सा ४	सा – रि* – ग – म – प* – ध – नि ४ – ३ – २ – ४ – ३ – ४ – २	सां ४	(मध्यमग्राम की मौलिक श्रुति-व्यवस्था) काफ़ी सदृश
५. मार्गी	नि	नि – सा – रि – ग – म – प – ध २ – ४ – ३ – २ – ४ – ३ – ४	नि २	सा – रि – ग – म – प – ध – नि २ – ४ – ३ – २ – ४ – ३ – ४	सां २	बिलावल ,,
६. पौरवी	ध	ध – नि – सा – रि – ग – म – प ४ – २ – ४ – ३ – २ – ४ – ३	ध ४	सा – रि् – ग् – म – म् – ध् – नि् ४ – २ – ४ – ३ – २ – ४ – ३	सां ४	पंचम वर्जित दो मध्यम की भैरवी अथवा बहादुरी तोड़ी सदृश
७. हृष्यका	प	प – ध – नि – सा – रि – ग – म ३ – ४ – २ – ४ – ३ – २ – ४	प ३	सा – रि – ग् – म* – प – ध् – नि् ३ – ४ – २ – ४ – ३ – २ – ४	सां ३	आसावरी ,,

* चिह्नित स्वरों के अन्तरालों को हूबहू उसी रूप में मुख्य सप्तक में नहीं लाया जा सकता।

ऊपर की सारिणी में एक बात सर्वप्रथम ध्यान देने योग्य है। षड्जग्राम की मूर्च्छनाओं में हम देख चुके हैं कि पंचम की मूर्च्छना में यानी 'मगरिसानिधप' इस क्रम से सातवीं मूर्च्छना में षड्जपंचम संवाद का भंग होता है क्योंकि वहाँ पंचम का षड्ज से बारह श्रुति का ही अन्तराल रह जाता है। मध्यमग्राम में भी पंचम की ही मूर्च्छना में षड्ज-मध्यम संवाद का भंग पाया जाता है, क्योंकि यहाँ मध्यम का षड्ज से दस श्रुति का अन्तराल पाया जाता है। इस प्रकार दोनों ग्रामों के पंचम की ही मूर्च्छना में उन २ ग्रामों के आधारभूत संवादों का भंग पाया जाता है।

इस प्रकार दोनों ग्रामों की चौदह मूर्च्छनाएं हमने देख लीं और उन से पाए जाने वाले भिन्न २ स्वरान्तराल भी देख लिये। उन स्वरावलियों में आज के जिन रागों का स्थूल सादृश्य दिखाई देता है, यह भी हमने देखा। दोनों ग्रामों की मूर्च्छनाओं में सूक्ष्म स्वरान्तरालों की ही भिन्नता है। आधुनिक रागों के साथ स्थूल सादृश्य तो दोनों में एक सा पाया जाता है, किन्तु श्रुत्यन्तर दोनों के भिन्न हैं क्योंकि दोनों ग्रामों की मौलिक श्रुति-व्यवस्था भिन्न है और वही मूर्च्छनाओं का आधार होती है। दोनों ग्रामों की मूर्च्छनाओं की सारिणियां देखने से यह बात विद्यार्थियों को स्पष्ट हुई होगी।

यहाँ ऐसी शंका हो सकती है कि यदि दोनों ग्रामों की मूर्च्छनाओं द्वारा प्रायः एक सी ही स्वरावलियाँ प्राप्त होती हैं, तब तो किसी एक ग्राम की मूर्च्छनाओं से ही काम चल जाता, दो ग्रामों की मूर्च्छनाओं से प्राचीनों को क्या प्रयोजन रहा होगा? इस शंका के समाधान के लिए विद्यार्थियों से हमारा अनुरोध है कि वे दोनों ग्रामों की मूर्च्छनाओं में जहाँ २ तारक चिह्न लगे हैं उन स्थानों को ध्यान से देखें, क्योंकि वे स्वरान्तराल ऐसे हैं जो संवाद दृष्टि से, हूबहू उसी रूप में मध्य सप्तक में नहीं लाये जा सकते। इन स्थानों को ध्यान से देखने से यह स्पष्ट होगा कि एक ग्राम की किसी मूर्च्छना में यदि कोई विवादी अन्तराल है तो दूसरे ग्राम की तत्सदृश मूर्च्छना में वही अन्तराल संवादी है। इसलिये दोनों ग्रामों की मूर्च्छनाओं में स्थूल सादृश्य होने पर भी श्रुत्यन्तरों का जो सूक्ष्म भेद है, उसी के कारण उनकी परम उपयोगिता है; उन्हें निरर्थक या निष्प्रयोजन किसी प्रकार नहीं कहा जा सकता। नीचे दी हुई सारिणी से यह बात अधिक स्पष्ट होगी।

षड्जग्राम			मध्यमग्राम	
मूर्च्छना नाम	मध्यम सप्तक में न लाने योग्य स्वरान्तराल	स्थूल सादृश्य वाला राग	मूर्च्छना नाम	मध्यम सप्तक में न लाने योग्य स्वरान्तराल
उत्तरमन्द्रा	×	खमाज	सौवीरी	ऋषभ (त्रिश्रुतिक)
रजनी	गान्धार (षड्ज से आठ श्रुति के अन्तराल पर) धैवत (चतुःश्रुति)	कल्याण	हरिणाश्वा	धैवत (चतुःश्रुति)
उत्तरायता	मध्यम (षड्ज से दस श्रुति के अन्तराल पर)	भैरवी	कलोपनता	×
शुद्धषाड्जी	ऋषभ (त्रिश्रुति)	काफ़ी	शुद्धमध्यमा	ऋषभ (त्रिश्रुति) पंचम (षड्ज से बारह श्रुति पर)
मत्सरीकृता	धैवत (चतुःश्रुति)	बिलावल	मार्गी	×
अश्वक्रान्ता	निषाद (मध्यम से दस श्रुति के अन्तराल पर)	पंचम वर्जित दो मध्यम की भैरवी अथवा बहादुरी तोड़ी	पौरवी	×
अभिरुद्गता	पञ्चम (षड्ज से बारह श्रुति पर)		हृष्यका	मध्यम (षड्ज से दस श्रुति पर)

ऊपर की सारिणी से यह स्पष्ट है कि एक ग्राम की किसी मूर्च्छना में यदि कोई ऐसा अन्तराल है जो संवाद दृष्टि से मध्यसप्तक में नहीं लाया जा सकता तो दूसरे ग्राम की तत्सदृश (Corresponding) मूर्च्छना में वही अन्तराल संवादसिद्ध रूप में मिल जाता है। केवल दो ही स्थल इस नियम के अपवाद हैं। यथा :—

(१) रजनी और हरिणाश्वा दोनों में धैवत चतुःश्रुति है। इसका कारण यही है कि मध्यमग्राम के गान्धार की मूर्च्छना (हरिणाश्वा) वीणा पर मेरु से आरम्भ होती है और उस अवस्था में धैवत चतुःश्रुति ही होगा। किन्तु मध्य सप्तक में धैवत संवाददृष्टि से त्रिश्रुति ही रहेगा।

(२) शुद्धषाड्जी और शुद्धमध्यमा दोनों में ऋषभ त्रिश्रुति है। ये दोनों मूर्च्छनाएँ दोनों ग्रामों की मौलिक स्वरावलियों की निदर्शक हैं। इसलिए इनका हूबहू उसी रूप में मध्यसप्तक में लाना न तो संभव है और न ही अपेक्षित है।

ऊपर की चर्चा से यह स्पष्ट हुआ होगा कि दोनों ग्रामों की मूर्च्छनाओं में स्थूल सादृश्य दिखाई देने पर भी स्वरान्तरालों की जो सूक्ष्म भिन्नता है वही संवाद दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है और दो ग्रामों की रचना में निहित प्राचीनों की वैज्ञानिकता की परिचायक है।

दोनों ग्रामों की मूर्च्छनाओं द्वारा हमारे आज के कुछेक रागों के स्वरान्तरालों की संवाद-सिद्धि का जो दर्शन हमने ऊपर किया, उतने से ही यह प्रमाणित होता है कि दोनों ग्राम आज भी हमारे संगीत में जीवित हैं। मध्यमग्राम का लोप हो चुका है ऐसा माननेवालों और प्रचार करने वालों की मान्यता और प्रचार इसी से अन्यथासिद्ध हैं।

दो ग्रामों की इन चौदह मूर्च्छनाओं में से प्रत्येक के चार भेद बनाकर १४ × ४ = ५६ मूर्च्छना भेद माने गए हैं। भरत ने इस सम्बन्ध में कहा है :—

षाडवौडुवितसंज्ञिताः पूर्णा साधारणकृताश्चेति चतुर्विधाश्चतुर्दश मूर्च्छनाः। (ना० शा० २८)

अर्थात् चौदहों मूर्च्छनाएं चार प्रकार की होती हैं :—

१. पूर्णा—जिनमें सातों स्वरों का प्रयोग हो।

२. षाडवीकृता—जिनमें छह स्वरों का प्रयोग हो।

३. औडवीकृता—जिनमें पाँच स्वरों का प्रयोग हो।

४. साधारणकृता—जिनमें स्वर-साधारण का प्रयोग हो।

स्वर-साधारण से अन्तर गान्धार और काकली निषाद अभिप्रेत है। भरत ने कहा है :—

साधारणकृताश्चैव काकलीसमलंकृताः।
अन्तरस्वरसंयुक्ता मूर्च्छना ग्रामयोर्द्वयोः॥
(ना० शा० २८)

अर्थात् दोनों ग्रामों में साधारणकृता मूर्च्छना अन्तर गान्धार और काकली निषाद से युक्त होती हैं।

अन्तर गान्धार और काकली निषाद का प्रयोग करने की जो बात यहाँ कही गई है उसका अर्थ यही है कि मूर्च्छना में ग्राम की जिस मौलिक स्वरावलि का उपयोग किया जाता है, उसी में ग्राम के 'शुद्ध'[१] (मौलिक) गान्धार निषाद के

१—'विकृत स्वरों का अवर इतिहास'—इस प्रकरण में कुछ आगे चलकर हम देखेंगे की प्राचीनों ने 'शुद्ध' या 'विकृत' विशेषण का 'स्वर' के लिए प्रयोग ही नहीं किया है। दोनों ग्रामों की मौलिक स्वरावलि के अलावा दो ही स्वरों का उन्होंने नामकरण किया है :—अन्तर गान्धार और काकली निषाद।

अलावा अन्तर गान्धार और काकली निषाद का भी समावेश किया जाए। अन्तर गान्धार और काकली निषाद के लिए 'स्वर-साधारण' संज्ञा के प्रयोग का तात्पर्य यहाँ समझना प्रासंगिक होगा। भरत ने कहा है :—

साधारणं नामान्तरस्वरता। कस्मात्? द्वयोरन्तरस्थं तत्साधारणम्। यथा ऋत्वन्तरे।
छायासु भवति शीतं प्रस्वेदो वा भवति चातपस्थस्य।
न च नागतो वसन्तो न च निःशेषः शिशिरकालः॥

इति कालसाधारणम्।

स्वरसाधारणं काकल्यन्तरस्वरौ। तत्र द्विश्रुतिप्रकर्षान्निषादादयः। काकलीसंज्ञो निषादो न षड्जः। द्वाभ्यामन्तरस्वरत्वात् साधारणत्वं प्रतिपद्यते, एवं गान्धारोऽप्यन्तरस्वरसंज्ञः गान्धारो, न मध्यमः।

(ना० शा० २८)

अर्थात—"अन्तरस्वरता को 'साधारण' कहते हैं क्योंकि 'अन्तर' स्वर स्वरों के मध्य में स्थित होने के कारण 'उभयसाधारण' होता है। उदाहरण के लिये, जैसे ऋतवन्तर के समय अर्थात् दो ऋतुओं के सन्धि-काल में ऐसा लगता है कि छाया में आने से शीत मालूम देता है और धूप में प्रस्वेद होता है, इससे प्रतीत होता है कि अभी वसन्त नहीं आया है और न ही अभी शिशिर समाप्त हुआ है। जैसे यह 'कालसाधारण' हुआ वैसे ही स्वर-साधारण भी समझना चाहिये। निषाद और षड्ज के बीच तथा गान्धार और मध्यम के बीच 'स्वर-साधारण' से काकली निषाद और अन्तर गान्धार अभिप्रेत हैं। दो श्रुति के उत्कर्ष (चढ़ाने) से निषाद की काकली संज्ञा होती है। यह 'काकली' संज्ञा निषाद की होती है, षड्ज की नहीं। 'काकली निषाद' अन्तर स्वर होने के कारण निषाद और षड्ज दोनों से उसका 'साधारणत्व' रहता है। इसी प्रकार गान्धार और मध्यम के बीच स्वर-साधारण होने पर गान्धार की 'अन्तर' संज्ञा होती है, मध्यम की नहीं।"

ऊपर के उदाहरण से यह स्पष्ट है कि निषाद-षड्ज तथा गान्धार-मध्यम इनके चतुःश्रुति अन्तरालों के बीच स्वर-साधारण किया जाता है जिससे काकली निषाद और अन्तर गान्धार की सिद्धि होती है। आजकल प्रयुक्त होने वाले हमारे 'शुद्ध' गान्धार-निषाद यही हैं।

'ग्राम' की मूल स्वरावली में केवल अन्तर गान्धार का, अथवा केवल काकली निषाद का अथवा अन्तर-काकली दोनों का एक साथ समावेश करने से साधारणकृता मूर्च्छना ही सान्तरा, सकाकली और सकाकल्यन्तरा—यों तीन प्रकार की कही जा सकती हैं। सान्तरा और सकाकली में पृथक् पृथक् रूप से वही अन्तराल मिलेंगे जो सकाकल्यन्तरा में एक साथ मिल जाएंगे। फिर भी, 'साधारणकृता' मूर्च्छनाओं द्वारा प्राप्त होने वाले नवीन अन्तरालों को पृथक्-पृथक् और एक साथ यों दोनों प्रकार से रखने के लिए 'साधारणकृता' के सान्तरा, सकाकली और सकाकल्यन्तरा ये उपभेद स्थूल रूप से बनाए जा सकते हैं।

'रत्नाकर'कार ने इन्हीं उपभेदों को लेकर मूर्च्छना भेदों का निरूपण किया है—

चतुर्धा ताः पृथक् शुद्धाः काकलीकलितास्तथा[1]।
सान्तरास्तद्द्वयोपेताः षट्पञ्चाशदितीरिताः॥

(सं० र० १।४।१६)

---

१. 'भरत-भारती' पृ० २२६ पर प्रेस की भूल से यह श्लोक भरत के नाट्यशास्त्र का [illegible] किया गया है।

अर्थात्—मूर्च्छना चार प्रकार की होती है—शुद्धा, सान्तरा, सकाकली और दोनों से युक्त अर्थात् सकाकल्यन्तरा। इस प्रकार मूर्च्छनाओं के ५६ भेद हुए।

स्पष्ट है कि 'रत्नाकर' कार ने 'शुद्धा' मूर्च्छनाएँ तो उन्हें कहा है जिनमें ग्राम की मौलिक स्वरावलि का ही उपयोग हो और 'साधारणकृता' के तीन उपभेदों को ही शेष तीन मूर्च्छना-भेदों का स्थान दे दिया है। भरत की बताई हुई 'पूर्णा' को 'शुद्धा' के समकक्ष मान सकते हैं, किन्तु उसकी औडवीकृता और षाडवीकृता को 'रत्नाकर' के वर्गीकरण में कोई स्थान नहीं मिल पाया है। साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य है कि दोनों ग्रामों में पृथक् रूप से 'सान्तरा', 'सकाकली' इन भेदों को जो स्थान दिया गया है, उससे इस वर्गीकरण में 'संकर' दोष आ गया है। षड्जग्राम का अन्तर गान्धार ही मध्यमग्राम में चतुःश्रुति धैवत बन जाता है, यह हम जानते ही हैं। इसलिए षड्जग्राम की सान्तरा और मध्यमग्राम की शुद्धा मूर्च्छनाएँ एक दूसरे से भिन्न नहीं कहला सकतीं। वैसे ही षड्जग्राम का काकली निषाद ही मध्यमग्राम में अन्तर गान्धार का स्थान पाता है। इसलिए षड्जग्राम की सकाकली और मध्यमग्राम की सान्तरा मूर्च्छना एक ही होंगी। इस प्रकार 'रत्नाकर'कार का यह वर्गीकरण संकर दोष से युक्त है।

विद्यार्थी जानते हैं कि राग-रचना में औडव-षाडव स्वरावलियों का बहुत अधिक महत्त्व रहता है। मूर्च्छनाओं के औडव-षाडव भेदों का पूरा विवरण 'प्रणव-भारती' के दूसरे भाग 'रागशास्त्र' में उपलब्ध होगा। इस विषय की कुछ चर्चा इस ग्रंथमाला के आगामी (षष्ठ) भाग में भी की जाएगी।

दोनों ग्रामों की पूर्णा या शुद्धा मूर्च्छनाएँ तो हम पहिले दिखा ही चुके हैं। 'साधारणकृता' मूर्च्छनाओं का सोदाहरण विवरण इसी ग्रंथमाला के आगामी (षष्ठ) भाग में दिया जाएगा। यहाँ विस्तार भय से उसे छोड़ दिया गया है।

चतुःसारणा

श्रुति की सामान्य व्याख्या संगीताञ्जलि के चौथे भाग में दी जा चुकी है और प्राचीन ग्रामों के तथा अर्वाचीन शुद्ध स्वर सप्तक के श्रुति स्वर विभाजन से विद्यार्थी परिचित हैं। भरत ने २२ श्रुतियों की सिद्धि के लिए चतुःसारणा की विधि बताई है। इस विधि में गणित की कोई आधुनिक प्रक्रिया न होने पर भी इसे संवाद-तत्त्व का दृढ़ आधार प्राप्त है। षड्ज-पञ्चम और षड्ज-मध्यम-संवाद इसका मेरुदण्ड है और संवाद को परखने वाला सूक्ष्मग्राही कान ही इसका सबल साधन है। स्वर-संवाद कर्ण-प्रत्यक्ष होने से उसी का आधार दृढ़मूल है। स्वरों के गणित-मूल्य में भूल हो सकती है, किन्तु अभ्यस्त कानों से संवाद की पूर्णता छूट नहीं सकती। नीचे हम इस विधि के बारे में कुछ प्रारम्भिक जानकारी देकर फिर भरत के ही शब्दों में उसका ब्योरा देंगे। इसी प्रसङ्ग में हम यह भी देखेंगे कि शार्ङ्गदेव ने 'सङ्गीत रत्नाकर' में भरत की बतायी हुई सारणा-विधि से कुछ भिन्न विधि का उल्लेख किया है। इन दोनों विधियों में से कौन सी अधिक स्पष्ट, वैज्ञानिक और संवादसिद्ध है यह भी हम देखेंगे।

सारणा-प्रयोग के लिए बिलकुल एक सी दो वीणा लेने को कहा गया है जिनकी लम्बाई-चौड़ाई, पर्दों और तारों में किञ्चित् भी अन्तर न हो। इन दो वीणाओं में से एक को अचल रखना है यानी उसे ज्यों की त्यों मिली रहने देना है, उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं करना है। इसीलिए उसे अचल वीणा या ध्रुव वीणा कहा गया है। दूसरी वीणा में सारणा की क्रिया की जाती है। इसलिए उसे चलवीणा या अध्रुववीणा कहा गया है। पहली वाली ध्रुव या अचल वीणा का, चलवीणा की सारणा-क्रिया की सिद्धि के हेतु संवाद जाँचने के लिए प्रमाण या स्टैण्डर्ड के रूप में उपयोग होगा और दूसरी चलवीणा पर चतुःसारणा का प्रयोग किया जाएगा।

भरत की चतुःसारणा

अब हम भरत के शब्दों में सारणा की विधि को देख लें। भरत का उद्धरण और उसका सरल अनुवाद पहले देकर फिर हम अपने शब्दों में इस विधि को कुछ विस्तार से समझेंगे। वे कहते हैं—

"द्वे[1] वीणे तुल्यप्रमाणतन्त्र्युपवादनदण्डमूर्च्छने षड्जग्रामाश्रिते कार्ये। तयोरन्यतरीं मध्यमग्रामिकीं कुर्यात् पञ्चमस्यापकर्षात्,[2] तामेव पञ्चमस्य श्रुत्युत्कर्षवशात् षड्जग्रामिकीं कुर्यात्। एवं श्रुतिरपकृष्टा भवति।

---

1. नाट्यशास्त्र के चौखम्बा संस्करण तथा निर्णयसागर संस्करण के पाठों को मिलाकर प्रस्तुत उद्धरण का पाठ बनाया गया है।

२. ना० शा० के दोनों संस्करणों में इस वाक्य में 'श्रुतिं' पाठ है। किन्तु उसका अन्वय किसी प्रकार न बैठ पाने के कारण वह पाठ यहाँ नहीं दिया गया है। मतंग के 'बृहद्देशी' में इस अंश का जो पाठ मिलता है उसमें 'श्रुति' के साथ 'षड्जग्रामिकी' और 'मध्यमग्रामिकी' इन दो विशेषणों का अन्वय होता है, 'वीणा' के साथ नहीं (जैसा कि भरत के वचनों में उपलब्ध है)। श्रुति को ये दो विशेषण लगाने का यहाँ यह तात्पर्य हो सकता है कि पञ्चम की जिस श्रुति के अपकर्ष से वीणा मध्यमग्रामिकी बने वह श्रुति मध्यमग्रामिकी और जिस श्रुति से वीणा पुनः षड्जग्रामिकी बने वह श्रुति षड्जग्रामिकी कहलाये।

पुनरपि तद्वदेवापकर्षान्निषादगान्धाराविततरयां धैवतर्षभौ प्रविशतो द्विश्रुत्यधिकत्वात्। पुनस्तद्वदेवापकर्षाद्धैवतर्षभावितरस्यां पंचमषड्जौ प्रविशतः त्रिश्रुत्यधिकत्वात्। तद्वत्पुनरपकृष्टायां तस्यां पंचममध्यमषड्जा इतरस्यां मध्यमगान्धारनिषादान् प्रवेदयन्ति चतुःश्रुत्यधिकत्वात्। एवमनेन श्रुतिनिदर्शनविधानेन द्वैग्रामिक्यो द्वाविंशतिश्रुतयः प्रत्यवगन्तव्याः।" (ना० शा० २८)

अर्थात्—"एक से 'प्रमाण' (नाप), तन्त्री (तार), 'उपवादन', दण्ड (डाँड) और मूर्च्छना वाली दो वीणाओं को 'षड्जग्रामाश्रित' बना लें। उनमें से एक (वीणा) को, पञ्चम के अपकर्ष द्वारा मध्यमग्रामिकी बना लें। फिर उसी वीणा को पञ्चम के 'श्रुति उत्कर्ष' से षड्जग्रामिकी बनाएँ। इस प्रकार श्रुति अपकृष्ट होती है (यानी अचल वीणा की अपेक्षा चलवीणा के सभी स्वर एक एक श्रुति अपकृष्ट हो जाते हैं)। उसी प्रकार (पुनः) अपकर्ष करने से (चल वीणा के) निषाद गान्धार दूसरी (अचल वीणा) के धैवत ऋषभ में प्रवेश पा जाते हैं, क्योंकि (धैवत से निषाद और ऋषभ से गान्धार) दो ही श्रुति अधिक हैं। उसी प्रकार (पुनः) अपकर्ष करने से (चलवीणा के) धैवत ऋषभ (अचल वीणा के) पञ्चम और षड्ज में प्रवेश पा जाते हैं, क्योंकि (पञ्चम से धैवत और षड्ज से ऋषभ) तीन श्रुति अधिक हैं। उसी प्रकार पुनः अपकर्ष होने पर उस (चल) वीणा के पञ्चम, मध्यम, षड्ज दूसरी (अचल) वीणा के मध्यम, गान्धार, निषाद में प्रवेश पा जाएँगे, क्योंकि (मध्यम से पञ्चम, गान्धार से मध्यम और निषाद से षड्ज) चार श्रुति अधिक हैं। इस प्रकार इस 'श्रुतिनिदर्शन-विधान' से द्वैग्रामिकी बाईस श्रुतियाँ समझनी चाहिए।"

भरत के ऊपर के उद्धरण में 'अपकर्ष' शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वही सारणा क्रिया का प्राण है। अपकर्ष का सीधा अर्थ होता है उतारना। उत्कर्ष और अपकर्ष ये दोनों शब्द क्रमशः चढ़ाने और उतारने की क्रिया के वाचक हैं। हम यह जानते हैं कि संगीत में चढ़ाना और उतारना ये दोनों क्रिया नाद से ही सम्बन्धित हैं, यानी ये नाद की ऊँचाई के बढ़ने या घटने की द्योतक हैं। यहाँ प्रश्न यही होता है कि नाद को चढ़ाने या उतारने के लिए वीणा में कौन-सी क्रिया का सहारा लेना होगा? वीणा पर तार और पर्दे ये दो ही स्वर-निर्देशक साधन हैं। इसलिये स्वर को चढ़ाने या उतारने के लिए हमें इन दो में से किसी एक को लेकर चलना होगा। खूँटी मरोड़ने से यानी तार का खिंचाव बढ़ाने या घटाने से नाद को चढ़ाया या उतारा जा सकता है—यह बात विद्यार्थी जानते हैं। उसी प्रकार पर्दों को मेरु की तरफ ऊपर खिसकाने से नाद उतरता है और घोड़ी की तरफ नीचे खिसकाने से वह चढ़ता है। सारणा-प्रक्रिया में 'अपकर्ष' के लिए हमें तार या पर्दे इन दो में से प्रत्यक्ष प्रयोग की दृष्टि से किसकी 'चालना' करनी है, यह सबसे पहले समझना आवश्यक है।

तारों के अपकर्ष की उलझनों को देखकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि स्वरों की यथार्थता को अक्षुण्ण रखते हुए प्रत्यक्ष प्रयोगगत सुविधा की दृष्टि से पर्दों की ही 'अपकर्ष' किया ग्राह्य है। पर्दों का अपकर्ष दो प्रकार हो सकता है। पर्दों को मेरु की तरफ ऊपर खिसकाने से अथवा अपकर्ष के अपेक्षित स्थान पर नए पर्दे बाँधने से। सारणा क्रिया में हमें श्रुतियों के कर्ण-प्रत्यय के साथ-साथ उनका 'चाक्षुष' (आँखों का) प्रत्यक्ष करना भी अभिप्रेत है। इसलिये इन्हें दोनों प्रकार से प्रत्यक्ष करने के लिए 'अपकर्ष' के अपेक्षित स्थानों पर नए पर्दे बाँधना ही प्रशस्त है।[1]

---

१. सोमनाथ ने 'श्रुति-वीणा' पर बाइस पर्दे बाँधने की जो पद्धति बताई है, उससे हमारा यह विधान नितान्त भिन्न है। यद्यपि कर्णाटकीय संगीत के शास्त्रकार भरत की परम्परा को अक्षुण्ण रखने का दावा करते आए हैं, फिर भी यह सत्य है कि वे भरत की श्रुति स्वर व्यवस्था को ठीक से समझ नहीं सके हैं और उसे वीणा पर स्थापित करने में असमर्थ रहे हैं। इसी कारण सोमनाथ की बताई हुई 'श्रुति-वीणा' पर श्रुतियों के पर्दे बाँधने की पद्धति भरत परम्परा के विरुद्ध, अशास्त्रीय और अवैज्ञानिक है। इसलिए हमारे उपर्युक्त कथन का उस पद्धति के साथ संबंध न जोड़ा जाए, उसके साथ इसे एक न समझा जाए।

भरत ने 'सारणा' या अपकर्ष की क्रिया करने के पूर्व दोनों वीणाओं को 'षड्जग्रामाश्रित' बना लेने को कहा है। इसका क्या तात्पर्य है ? यह समझ कर ही 'सारणा' का प्रत्यक्ष प्रयोग किया जा सकता है। भरत के इस विधान का अर्थ यही है कि वीणा के पर्दों पर षड्जग्रामिक स्वरों की स्थिति सर्वप्रथम निश्चित कर ली जाए। षड्जग्राम में स्वरों के जो श्रुत्यन्तर हैं, उन्हीं के अनुसार बाईस श्रुतियों की सिद्धि करने को भरत ने कहा है। इसलिए दोनों वीणाओं पर षड्जग्रामिक स्वरस्थान निर्धारित करके सर्वप्रथम उन्हें 'षड्जग्रामाश्रित' बना लेने को कहा गया है। प्राचीन या अर्वाचीन भारतीय या कर्णाटकीय वीणा पर या सितार पर स्वर-स्थान यानी पर्दे एक-से ही हैं। पर्दों में या तारों के मिलाने में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। वीणा पर भरतकाल की ही परम्परा आजतक चली आई है। यदि कुछ अन्तर पड़ा है तो वह यही है कि स्वर-स्थानों के नामों में हेरफेर हुआ है। भरत काल में षड्जग्रामिक 'मध्यम' को 'स्वरित' का स्थान प्राप्त था; उसी मध्यम को आज हम षड्ज कहते हैं और इसीलिए षड्जग्रामिक षड्ज आज की हमारी भाषा में 'पञ्चम' कहलाता है। इसलिए वीणा को 'षड्जग्रामिकी' बनाने के लिए हमें और कुछ नहीं करना है, केवल आधुनिक मन्द्र पञ्चम को षड्ज मानना है। उस स्थान से भरत की षड्जग्रामिक स्वर-व्यवस्था हमें सहज प्राप्त होती है।

वीणा पर षड्जग्राम का यह आरम्भ स्थान कर्णाटकीय ग्रंथकारों को उपलब्ध नहीं हो सका है। मेरु से तीन श्रुति छोड़ कर चौथी श्रुति पर षड्ज की स्थापना न करके उन्होंने मुक्त तार के नाद को ही षड्ज मान कर आरम्भ किया है। इसीलिए वीणा पर परंपराप्राप्त पर्दे और तार अविकल रहने पर भी षड्जग्रामिक स्वरों की स्थापना वे लोग यथा-यथ रूप से नहीं कर पाए हैं। इसलिए उनकी वीणा पर 'षड्जग्राम' के स्वर 'असिद्ध' रहे हैं और उनके कल्पित स्वरस्थानों के बीच के अन्तरालों में श्रुतियों की सिद्धि करने के लिए उन्होंने 'श्रुति-वीणा' का जो विधान दिया है, वह भी नितान्त असमंजस और अवैज्ञानिक है। अस्तु।

हमें आधुनिक मन्द्र पञ्चम के पर्दे से आरम्भ होने वाले षड्जग्रामिक स्वर-सप्तक में ही 'सारणा' या अपकर्ष करना है। 'सारणा' की क्रिया चार बार करने का भरत का विधान है। महर्षि ने चतुःसारणा ही करने को क्यों कहा ? इससे अधिक या न्यून क्यों नहीं कहा ? इसका उत्तर यही है कि सप्त स्वरों में सबसे बड़ा अन्तराल चार श्रुति का होने के कारण चार बार एक-एक श्रुति का अपकर्ष करना आवश्यक है।

भरत ने पहली सारणा की पहली क्रिया यह बताई है कि चलवीणा के पञ्चम का एक श्रुति अपकर्ष करके यानी पञ्चम को त्रिश्रुति बनाकर उस 'षड्जग्रामाश्रित' वीणा को मध्यमग्रामिकी बना दिया जाए। भरत का यह विधान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है और पूरी सारणा-क्रिया इसी पर टिकी हुई है।

हम जानते हैं कि सप्तक में चतुःश्रुति अन्तराल वाले तीन स्वर हैं—षड्ज, मध्यम और पञ्चम। ये तीनों स्वर विशेष महत्त्व रखते हैं। वैदिक गान में इन्हीं स्वरों का स्वरित के रूप में मुख्य स्थान था। गान्धर्व गान में भी यही तीन स्वर आधारशिला के रूप में स्वीकृत हैं। भारतीय ही नहीं, अपितु सारे विश्व के संगीत में स्वर-संवाद के यही अवलंब-स्तम्भ हैं। इन्हीं तीन स्वरों पर सारे संगीत का देह जीवित है। किन्तु इन तीनों में से भरत ने पञ्चम को ही सारणा की सर्वप्रथम क्रिया के लिए क्यों चुना होगा ? इसपर विचार करने से भरत की सूक्ष्म और पूर्ण वैज्ञानिकता पर दृढ़ आस्था उत्पन्न होती है। इसलिए इस विषय पर थोड़े से विचार यहाँ प्रस्तुत करना आवश्यक है।

हम जानते हैं कि संगीत के संवाद-तत्त्व में षड्ज-पंचम-संवाद का मुख्य स्थान है। षड्जग्राम की रचना इसी संवाद के आधार पर हुई है और इसी संवाद को भंग करके षड्ज-मध्यम-संवाद के आधार पर मध्यमग्राम की रचना की गई है। सारणा क्रिया में बाईस श्रुतियों की सिद्धि के लिए इन दोनों संवादों का आधार लेना आवश्यक है। इसलिए भरत ने 'ग्राम' की भाषा में ही सारणा की विधि बताई है। दोनों वीणाओं पर षड्जग्रामिकी स्वर-व्यवस्था स्थिर कर लेने के बाद सारणा की पहली क्रिया यही बताई गई है कि पंचम के एक श्रुति अपकर्ष द्वारा चलवीणा को मध्यमग्रामिकी बना दिया

जाए।[1] और उसके बाद अन्य सभी स्वरों का एक-एक श्रुति अपकर्ष कर के वीणा को पुनः षड्जग्रामिकी बना देने को कहा गया है। 'ग्राम' की इस भाषा का तात्पर्य समझ लेने से सारणा-प्रक्रिया की संवादात्मक आधार-भूमि का स्पष्ट दर्शन होगा। सारणा-क्रिया के आरम्भ में जब श्रुति का कोई निश्चित नाप हमें ज्ञात नहीं है, उस अवस्था में पूरे सप्तक में पंचम ही एक ऐसा स्थान है जहाँ से हम संवाद जाँच कर एक श्रुति का अपकर्ष कर सकते हैं। पंचम की एक श्रुति उतारने का परिमाण या नाप क्या है, इस समस्या का हल हमें संवाद-तत्त्व में ही इस प्रकार मिल जाता है कि पञ्चम को उतना उतारा जाए जिससे वह ध्रुववीणा के त्रिश्रुति ऋषभ के साथ षड्ज-मध्यम भाव से संवाद करे। इस प्रकार संवाद के आधार पर जहाँ हमने पहली सारणा-क्रिया सिद्ध कर ली वहाँ फिर शेष सभी सारणा-क्रियाओं के लिए मार्ग प्रशस्त हो जाता है। पञ्चम के अपकर्ष द्वारा वीणा को मध्यमग्रामिकी बना लेने के बाद अन्य सभी स्वरों का एक-एक श्रुति अपकर्ष करके वीणा को पुनः षड्जग्रामिकी बनाना है। अन्य स्वरों के अपकर्ष का नाप अपकृष्ट पञ्चम के आधार पर ही क्रमशः निश्चित किया जा सकता है।

उदाहरण के लिए, षड्ज के अपकर्ष का नाप हम इस प्रकार निश्चित कर सकते हैं कि षड्ज को उतना ही उतारा जाय जिससे अपकृष्ट षड्ज के साथ वह अपकृष्ट पञ्चम षड्ज-पञ्चम-भाव से संवाद करे। फिर अपकृष्ट षड्ज के साथ षड्ज-मध्यम संवाद जाँचते हुए मध्यम का अपकर्ष किया जा सकता है। इसी क्रम से सभी स्वरों का एक-एक श्रुति अपकर्ष करके चल वीणा को पुनः षड्जग्रामिकी बनाने के लिए संवाद-सिद्ध प्रक्रिया की कुञ्जी पञ्चम से ही मिल सकती है, और किसी स्वर से नहीं। इसीलिए भरत ने पञ्चम के अपकर्ष को सारणा में सर्वप्रथम स्थान दिया है। चारों सारणाओं में से प्रत्येक सारणा के सात सात सोपानों का जो ब्यौरा हम नीचे दे रहे हैं, उससे सारणा प्रक्रिया की संवादमय शृङ्खला का समग्र दर्शन होगा। उस शृङ्खला की पहली कड़ी है—पञ्चम का अपकर्ष और उसी के आधार पर शेष सभी कड़ियों की रचना और अस्तित्व टिका हुआ है। पञ्चम के अपकर्ष को यह मौलिक स्थान देने में भरत की जो निगूढ़ वैज्ञानिक संवाद-दृष्टि निहित है, उसका प्रकाश समूची सारणा प्रक्रिया में व्याप्त है। पञ्चम के महत्त्व को विभिन्न पहलुओं से यहाँ पुनः संक्षेप में देख लें। यथा—

(१) षड्ज पञ्चम संवाद सब संवादों में प्रधान है। उसी के आधार पर षड्जग्राम की रचना हुई है और उसी को भंग करके मध्यमग्राम बनाया गया है। इसलिए ग्राम-परिवर्तन का मूल बीज पञ्चम ही है।

(२) स्वरों के सप्तक में पञ्चम ही उत्तरांग का आरंभ स्थान है तथा पूर्वांग और उत्तरांग को जोड़ने वाला स्वर भी वही है।

(३) सारणा क्रिया के आरम्भ में जब श्रुति का कोई नाप गृहीत मानने के लिए हमारे पास कोई आधार नहीं है, तब पञ्चम का अपकर्ष ही संवाद-दृष्टि से सर्वप्रथम सिद्ध किया जा सकता है, क्योंकि ध्रुव वीणा के त्रिश्रुति ऋषभ के साथ उस अपकृष्ट पञ्चम का षड्ज-मध्यम-भाव से संवाद जाँचना सहज संभव है। इसी अपकर्ष के आधार पर पूरी चतुः-

---

1 वीणा को मध्यमग्रामिकी बनाने का यहाँ पर यही अर्थ समझना चाहिये कि षड्जग्रामिक पंचम की एक श्रुति उतारने से जो स्वर सप्तक बना, स्वरों की ठीक वैसी ही अवस्था मध्यमग्राम में होती है। इसका यह अर्थ नहीं ही है कि षड्जग्राम का आरम्भस्थान स्थिर रखते हुए केवल पंचम की एक श्रुति उतारने से ही वीणा पर मध्यमग्राम बन सकेगा। यह तो सारणा-विधि की पहली क्रिया का पहला सोपान मात्र है। वीणा की इसी अवस्था को स्थिर रखते हुए मध्यमग्राम में वादन-क्रिया नहीं हो सकती।

प्रथम सारणा

षड्जग्राम के अनुसार अचल वीणा[1] के मेरुदण्ड पर पर्दों की स्थिति	प्रथम सारणा की सोपान-संख्या	चल वीणा में सारणा-क्रिया से प्राप्त स्वर-स्थान	सारणा-क्रिया से प्राप्त स्वरों की संवाद-शुद्धि जाँचने के लिए उपयोगी स्वर-स्थान	
			चल वीणा पर	अचल वीणा पर
० मेरु — निषाद				
— — — — —	— —	अं० का० नि०	देखें पाद-टिप्पणी ३	
१ला पर्दा — का० निषाद[3]				
— — — — —	द्वितीय	अं० षड्ज	अं० पञ्चम	
२रा पर्दा — — — — षड्ज				
३रा पर्दा — — (स्वरसाधारण[2])	सप्तम	अं० ऋषभ	— — —	९वाँ पर्दा स्वर-साधारण
४था पर्दा — — — — ऋषभ				
	पञ्चम	अं० गान्धार	अं० निषाद	
५वाँ पर्दा — — — — गान्धार				
— — — — —	—·—	अप० अं० गा०	देखें पाद-टिप्पणी ३	
६ठा पर्दा — — — अं० गा०[3]				
— — — — —	तृतीय	अं० मध्यम	अं० षड्ज	
७वाँ पर्दा — मध्यम				
— — — — —	प्रथम	अप० पञ्चम	— — —	त्रिश्रुति ऋषभ
८वाँ पर्दा — पञ्चम				
९वाँ पर्दा — (स्वरसाधारण[2])	षष्ठ	अप० धैवत	— — —	३रा पर्दा स्वर-साधारण
१०वाँ पर्दा — धैवत				
— — — — —	चतुर्थ	अप० निषाद	अप० मध्यम	
११वाँ पर्दा — निषाद				

१. सारणा क्रिया के पूर्व अचल वीणा के सदृश चलवीणा पर भी पर्दों की यही स्थिति रहेगी, क्योंकि भरत के आदेशानुसार सारणा-क्रिया के पूर्व दोनों वीणा समान बनाई गई हैं और इसीलिए दोनों पर समान रूप से परंपरा-प्राप्त पर्दे बँधे हुए हैं। जिस प्रकार तन्त्रीवाद्य-वादक अपने सुरीले कानों से जाँच कर अपने वाद्य की तारें मिलाते हैं, उसी प्रकार साज़ बनाने वाले कारीगर वीणादिक पर्दे वाले वाद्यों पर अपने अभ्यस्त कानों के सहारे परंपरा से पर्दे बाँधते आए हैं। उसी संवादसिद्ध परंपरानुसार बँधे हुए पर्दों को, सारणा क्रिया के पूर्व कर्ण-प्रत्यय द्वारा यथास्थान जाँच कर, दोनों वीणाओं की समानता देखकर सारणा-क्रिया आरंभ करें। ध्यान रहे कि पर्दे बाँधने की यह परंपरा अनपढ़ लोगों के हाथ में जाने पर भी अटकलपच्चू नहीं है, अपितु इसे स्वर-संवाद का दृढ़ आधार प्राप्त है। इस परंपरानुसार बँधे पर्दों पर भरतोक्त षड्जग्रामिक स्वर किस क्रम से मिलते हैं यह प्रस्तुत सारिणी में दिखाया गया है। इसलिए इन स्वर-स्थानों के बारे में अटकलपच्चू कुछ गृहीत मान लेने का प्रश्न ही नहीं उठता।

२. यह भरतोक्त 'स्वर-साधारण' अन्तर काकली से भिन्न है। इसकी स्पष्टता विकृत स्वरों के प्रकरण में देख लें।

३. भरत ने सप्त स्वरों के अन्तरालों की सिद्धि के लिए ही सारणा-क्रिया बताई है। इसलिए अन्तर काकली या

द्वितीय सारणा

प्रथम सोपान—पञ्चम का पुनः अपकर्ष। अचल वीणा के काकली निषाद के साथ इस अपकृष्ट पञ्चम का षड्जपंचम भाव से संवाद जाँचा जा सकता है।

द्वितीय सोपान—षड्ज का पुनः अपकर्ष। इसकी संवादशुद्धि जाँचने के लिए द्वितीय सारणा में अपकृष्ट पञ्चम के साथ इस अपकृष्ट षड्ज का षड्जपञ्चम भाव से संवाद देखा जा सकता है या अचल वीणा के काकली निषाद वाले पर्दे के साथ इसे मिलाया जा सकता है।

तृतीय सोपान—मध्यम का पुनः अपकर्ष। इसी सारणा के अपकृष्ट षड्ज के साथ अपकृष्ट मध्यम का षड्ज—मध्यम—संवाद जाँच लें। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि यह मध्यम अचल वीणा के अन्तरगान्धार में लीन हो जाएगा।

चतुर्थ सोपान—गान्धार का पुनः अपकर्ष। गान्धार का दुबारा अपकर्ष करने के लिए वीणा पर किसी नये स्वर स्थान की आवश्यकता नहीं है। मूल ऋषभ के पर्दे पर ही गान्धार की स्थिति हो जाएगी। अचल वीणा में यही पर्दा ऋषभ का स्थान पाए हुए है। इसी लिए कहा गया है कि द्वितीय सारणा में चल वीणा का गान्धार अचल वीणा के ऋषभ में लीन हो जाता है। इस स्वरस्थान की संवाद-शुद्धि जाँचने के लिए अचलवीणा के धैवत के साथ इसका षड्जपञ्चम भाव से संवाद देखा जा सकता है।

पंचम सोपान—निषाद का पुनः अपकर्ष। यहाँ भी गान्धार के अपकर्ष की भाँति कोई नया पर्दा अपेक्षित नहीं है। चल वीणा के मूल धैवत के पर्दे पर निषाद की स्थिति हो जाएगी। इसीलिए भरत ने कहा है कि द्वितीय सारणा में चल वीणा का निषाद अचल वीणा के धैवत में लीन हो जाता है। इस स्वरस्थान की संवाद-शुद्धि पुनः जाँचने के लिए अचल वीणा के ऋषभ के साथ षड्ज-पञ्चम भाव से संवाद देखा जा सकता है।

षष्ठ सोपान—धैवत का पुनः अपकर्ष। इस अपकर्ष का नाप निश्चित करने के लिए अचल वीणा के गान्धार के साथ षड्ज मध्यम-भाव से संवाद जाँच लें।

सप्तम सोपान—ऋषभ का पुनः अपकर्ष। इस अपकर्ष की संवाद—शुद्धि, चल वीणा पर द्वितीय सारणा के अपकृष्ट धैवत के साथ इस अपकृष्ट ऋषभ का षड्ज—पञ्चम—संवाद देख कर जाँच लें।

उससे भिन्न 'स्वर-साधारण' का अपकर्ष दिखाने का सारणा-क्रिया में प्रयोजन नहीं है। सभी 'स्वर-साधारण' सप्त स्वरों
के अन्तरालों के ही अन्तर्गत हैं, अतः मुख्य सप्त स्वरों के साथ-साथ इनकी सिद्धि अपने आप हो जाती है। इसीलिए
भरत ने इनके अपकर्ष का पृथक् उल्लेख नहीं किया है। किन्तु तृतीय सारणा में हमें पञ्चम के अपकर्ष का नाप निश्चित
करने के लिए प्रथम सारणा के अपकृष्ट काकली निषाद का आश्रय लेना होगा। इसलिए संवाद जाँचने की क्रिया की
सिद्धि के लिए केवल प्रथम सारणा की इस सारिणी में अन्तर-काकली का अपकर्ष दिखा दिया गया है। प्रश्न हो
सकता है कि अन्तर काकली को किस नाप से उतारा जाए। यहाँ हमें भरत का 'धैवतीकृते गान्धारे' पुनः स्मरण कर
लेना चाहिए, जिसका अर्थ है कि षड्जग्राम का 'सा-रि-ग' मध्यमग्राम में 'म-प-ध' बन जाता है। इस वचन के आधार
पर चल वीणा के अपकृष्ट षड्ज को मध्यम मान कर 'म प-ध' करके क्रमप्रत्यय द्वारा अपकृष्ट अन्तर गान्धार का स्थान
निश्चित कर सकते हैं। अपकृष्ट षड्ज के साथ इसका सप्त श्रुति संवाद है भी जाँचा जा सकता है। इस अपकृष्ट अन्तर
गान्धार के साथ षड्जमध्यम संवाद जाँच कर काकली निषाद का अपकर्ष किया जा सकता है।

पंचम सोपान—निषाद का पुनः अपकर्ष। इसका अपकृष्ट गान्धार के साथ षड्ज-पञ्चम संवाद जाँचा जा सकता है।

षष्ठ सोपान—ऋषभ का पुनः अपकर्ष। प्रथम सारणा के अपकृष्ट पञ्चम के साथ इसका षड्ज-पञ्चम संवाद जाँचा जा सकता है।

सप्तम सोपान—धैवत का पुनः अपकर्ष। चौथी सारणा के अपकृष्ट ऋषभ के साथ षड्ज-पञ्चम-भाव से संवाद जाँच लें।

चतुर्थ सारणा से यह सिद्ध हुआ कि षड्ज, मध्यम और पञ्चम चतुःश्रुति ही हैं। यहाँ हमें बारह श्रुतियों की सिद्धि प्राप्त हुई। मतङ्ग का वचन है—"चतुर्थ्यां द्वादशश्रुतिलाभः।"

चतुर्थ सारणा के सातों सोपानों को संलग्न सारणी में दिखाया गया है। उपर्युक्त रीति से दूसरी, तीसरी और चौथी सारणाओं द्वारा क्रमशः चार, छः, बारह और कुल मिलाकर बाईस श्रुतियों की सिद्धि हुई और हम निश्चयात्मक रूप से समझ सके कि एक सप्तक में बाईस ही श्रुतियाँ हैं।

चतुर्थ सारणा

तृतीय सारणा के फल स्वरूप चलवीणा पर स्वर-स्थानों की स्थिति	चतुर्थ सारणा की सोपान-संख्या	चल वीणा में चतुर्थ सारणा-क्रिया से प्राप्त स्वर-स्थान	सारणा-क्रिया से प्राप्त स्वरों की संवाद-शुद्धि जाँचने के लिए उपयोगी स्वर-स्थान	
			चल वीणा पर	अचल वीणा पर
० मेरु — — — — — —	द्वितीय	अप० षड्ज	अप० पञ्चम	निषाद में लीन
१ — षड्ज				
—				
— — — —, —	षष्ठ	अप० ऋषभ	प्र०सा० का अप० पञ्चम	
२ — ऋषभ				
— — — —, —	चतुर्थ	अप० गान्धार	द्वि०सा० का अप० धैवत	
३ — गान्धार				
—				
—				
— — — —, —	तृतीय	अप० मध्यम	मेरुस्थित षड्ज	गान्धार में लीन
४ — मध्यम				
—				
—				
— — — — —	प्रथम	अप० पञ्चम	मेरुस्थित नाद	मध्यम में लीन
५ — पञ्चम				
—				
— — — — —	सप्तम	अप० धैवत	अप० ऋषभ	
६ — धैवत				
— — — — —	पञ्चम	अप० निषाद	अप० गान्धार	
७ — निषाद				
—				
—				
—				

तृतीय सारणा

द्वितीय सारणा के फलस्वरूप चल वीणा पर स्वरस्थानों की स्थिति		तृतीय सारणा की सोपान संख्या	चल वीणा में तृतीय सारणा-क्रिया से प्राप्त स्वर-स्थान	सारणा-क्रिया से प्राप्त स्वरों की संवाद-शुद्धि जाँचने के लिए उपयोगी स्वर-स्थान	
				चल वीणा पर	अचल वीणा पर
० —	मेरु				
		द्वितीय	अप० षड्ज	अप० पञ्चम	
१ —	षड्ज				
		चतुर्थ	अप० ऋषभ		षड्ज में लीन
२ —	ऋषभ				
		षष्ठ	अप० गान्धार		स्वर-साधारण का ९वां पर्दा
३ —	गान्धार				
		तृतीय	अप० मध्यम	अप० षड्ज	
४ —	मध्यम				
		प्रथम	अप० पञ्चम	प्रथम सारणा में अप० का० नि०	
५ —	पञ्चम				
		पञ्चम	अप० धैवत		पञ्चम में लीन
६ —	धैवत				
		सप्तम	अप० निषाद		स्वर-साधारण का ३रा पर्दा
७ —	निषाद				

चतुर्थ सारणा

प्रथम सोपान—पञ्चम का पुनः अपकर्ष। अचल वीणा के मेरु के साथ यानी मुक्त तार पर स्थित निषाद के साथ इस अपकृष्ट पञ्चम का षड्ज-पञ्चम-भाव से संवाद जाँचा जा सकता है। चल वीणा का पञ्चम यहाँ अचल वीणा के मध्यम में प्रवेश पा जाता है। इसलिए अचल वीणा के मध्यम के साथ इसकी एकरूपता भी जाँची जा सकती है।

द्वितीय सोपान—षड्ज का पुनः अपकर्ष। यह षड्ज अचल वीणा के निषाद में लीन हो जाएगा। अचल वीणा में मेरु पर निषाद है। इसलिए चल वीणा पर मुक्त तार का नाद ही षड्ज बन जाएगा।

तृतीय सोपान—मध्यम का पुनः अपकर्ष। यह मध्यम अचल वीणा के गान्धार में लीन हो जाएगा और इसी सारणा के मेरु स्थित षड्ज के साथ षड्ज-मध्यम-भाव से संवाद करेगा। अचल वीणा के ११वें पर्दे पर स्थित निषाद के साथ इसका षड्ज-पञ्चम भाव से संवाद होगा।

चतुर्थ सोपान—गान्धार का पुनः अपकर्ष। दूसरी सारणा के अपकृष्ट धैवत के साथ इसका षड्ज-पञ्चम भाव से संवाद जाँच लें।

पंचम सोपान—निषाद का पुनः अपकर्ष। इसका अपकृष्ट गान्धार के साथ षड्ज-पञ्चम संवाद जाँचा जा सकता है।

षष्ठ सोपान—ऋषभ का पुनः अपकर्ष। प्रथम सारणा के अपकृष्ट पञ्चम के साथ इसका षड्ज-पञ्चम संवाद जाँचा जा सकता है।

सप्तम सोपान—धैवत का पुनः अपकर्ष। चौथी सारणा के अपकृष्ट ऋषभ के साथ षड्ज-पञ्चम-भाव से संवाद जाँच लें।

चतुर्थ सारणा से यह सिद्ध हुआ कि षड्ज, मध्यम और पञ्चम चतुःश्रुति ही हैं। यहाँ हमें बारह श्रुतियों की सिद्धि प्राप्त हुई। मतङ्ग का वचन है—"चतुर्थ्यां द्वादशश्रुतिलाभः।"

चतुर्थ सारणा के सातों सोपानों को संलग्न सारणी में दिखाया गया है। उपर्युक्त रीति से दूसरी, तीसरी और चौथी सारणाओं द्वारा क्रमशः चार, छः, बारह और कुल मिलाकर बाईस श्रुतियों की सिद्धि हुई और हम निश्चयात्मक रूप से समझ सके कि एक सप्तक में बाईस ही श्रुतियाँ हैं।

चतुर्थ सारणा

तृतीय सारणा के फल स्वरूप चलवीणा पर स्वर-स्थानों की स्थिति	चतुर्थ सारणा की सोपान-संख्या	चल वीणा में चतुर्थ सारणा-क्रिया से प्राप्त स्वर-स्थान	सारणा-क्रिया से प्राप्त स्वरों की संवाद-शुद्धि जाँचने के लिए उपयोगी स्वर-स्थान	
			चल वीणा पर	अचल वीणा पर
० मेरु — — — — —	द्वितीय	अप० षड्ज	अप० पञ्चम	निषाद में लीन
१ — षड्ज				
——				
—— — — —	षष्ठ	अप० ऋषभ	प्र०सा० का अप० पञ्चम	
२ — ऋषभ				
—— — — —	चतुर्थ	अप० गान्धार	द्वि०सा० का अप० धैवत	
३ — गान्धार				
——				
—— — — —	तृतीय	अप० मध्यम	मेरुस्थित षड्ज	गान्धार में लीन
४ — मध्यम				
——				
—— — — —	प्रथम	अप० पञ्चम	मेरुस्थित नाद	मध्यम में लीन
५ — पञ्चम				
——				
—— — — —	सप्तम	अप० धैवत	अप० ऋषभ	
६ — धैवत				
—— — — —	पञ्चम	अप० निषाद	अप० गान्धार	
७ — निषाद				
——				
——				
——				

तृतीय सारणा

द्वितीय सारणा के फलस्वरूप चल वीणा पर स्वरस्थानों की स्थिति		तृतीय सारणा की सोपान संख्या	चल वीणा में तृतीय सारणा-क्रिया से प्राप्त स्वर-स्थान	सारणा-क्रिया से प्राप्त स्वरों की संवाद-शुद्धि जाँचने के लिए उपयोगी स्वर-स्थान	
				चल वीणा पर	अचल वीणा पर
०	मेरु				
१	षड्ज	द्वितीय	अप० षड्ज	अप० पञ्चम	
२	ऋषभ	चतुर्थ	अप० ऋषभ		षड्ज में लीन
३	गान्धार	षष्ठ	अप० गान्धार		स्वर-साधारण का ९वां पर्दा
४	मध्यम	तृतीय	अप० मध्यम	अप० षड्ज	
५	पञ्चम	प्रथम	अप० पञ्चम	प्रथम सारणा में अप० का० नि०	
६	धैवत	पञ्चम	अप० धैवत		पञ्चम में लीन
७	निषाद	सप्तम	अप० निषाद		स्वर-साधारण का ३रा पर्दा

चतुर्थ सारणा

प्रथम सोपान—पञ्चम का पुनः अपकर्ष। अचल वीणा के मेरु के साथ यानी मुक्त तार पर स्थित निषाद के साथ इस अपकृष्ट पञ्चम का षड्ज-पञ्चम-भाव से संवाद जाँचा जा सकता है। चल वीणा का पञ्चम यहाँ अचल वीणा के मध्यम में प्रवेश पा जाता है। इसलिए अचल वीणा के मध्यम के साथ इसकी एकरूपता भी जाँची जा सकती है।

द्वितीय सोपान—षड्ज का पुनः अपकर्ष। यह षड्ज अचल वीणा के निषाद में लीन हो जाएगा। अचल वीणा में मेरु पर निषाद है। इसलिए चल वीणा पर मुक्त तार का नाद ही षड्ज बन जाएगा।

तृतीय सोपान—मध्यम का पुनः अपकर्ष। यह मध्यम अचल वीणा के गान्धार में लीन हो जाएगा और इसी सारणा के मेरु स्थित षड्ज के साथ षड्ज-मध्यम-भाव से संवाद करेगा। अचल वीणा के ११वें पर्दे पर स्थित निषाद के साथ इसका षड्ज-पञ्चम भाव से संवाद होगा।

चतुर्थ सोपान—गान्धार का पुनः अपकर्ष। दूसरी सारणा के अपकृष्ट धैवत के साथ इसका षड्ज-पञ्चम भाव से संवाद जाँच लें।

पंचम सोपान—निषाद का पुनः अपकर्ष। इसका अपकृष्ट गान्धार के साथ षड्ज-पञ्चम संवाद जाँचा जा सकता है।

षष्ठ सोपान—ऋषभ का पुनः अपकर्ष। प्रथम सारणा के अपकृष्ट पञ्चम के साथ इसका षड्ज-पञ्चम संवाद जाँचा जा सकता है।

सप्तम सोपान—धैवत का पुनः अपकर्ष। चौथी सारणा के अपकृष्ट ऋषभ के साथ षड्ज-पञ्चम-भाव से संवाद जाँच लें।

चतुर्थ सारणा से यह सिद्ध हुआ कि षड्ज, मध्यम और पञ्चम चतुःश्रुति ही हैं। यहाँ हमें बारह श्रुतियों की सिद्धि प्राप्त हुई। मतङ्ग का वचन है—"चतुर्थ्यां द्वादशश्रुतिलाभः।"

चतुर्थ सारणा के सातों सोपानों को संलग्न सारणी में दिखाया गया है। उपर्युक्त रीति से दूसरी, तीसरी और चौथी सारणाओं द्वारा क्रमशः चार, छः, बारह और कुल मिलाकर बाईस श्रुतियों की सिद्धि हुई और हम निश्चयात्मक रूप से समझ सके कि एक सप्तक में बाईस ही श्रुतियाँ हैं।

चतुर्थ सारणा

तृतीय सारणा के फल स्वरूप चलवीणा पर स्वरस्थानों की स्थिति	चतुर्थ सारणा की सोपान-संख्या	चल वीणा में चतुर्थ सारणा-क्रिया से प्राप्त स्वर-स्थान	सारणा-क्रिया से प्राप्त स्वरों की संवाद-शुद्धि जाँचने के लिए उपयोगी स्वर-स्थान	
			चल वीणा पर	अचल वीणा पर
० मेरु — — — — —	द्वितीय	अप० षड्ज	अप० पञ्चम	निषाद में लीन
१ — षड्ज				
— — — — —	षष्ठ	अप० ऋषभ	प्र०सा० का अप० पञ्चम	
२ — ऋषभ				
— — — — —	चतुर्थ	अप० गान्धार	द्वि०सा० का अप० धैवत	
३ — गान्धार				
— — — — —	तृतीय	अप० मध्यम	मेरुस्थित षड्ज	गान्धार में लीन
४ — मध्यम				
— — — — —	प्रथम	अप० पञ्चम	मेरुस्थित नाद	मध्यम में लीन
५ — पञ्चम				
— — — — —	सप्तम	अप० धैवत	अप० ऋषभ	
६ — धैवत				
— — — — —	पञ्चम	अप० निषाद	अप० गान्धार	
७ — निषाद				

यहाँ एक बात पुनः उल्लेखनीय है कि 'अपकर्ष' क्रिया के लिए हमने पर्दों का उपयोग किया है। यों तो जैसा कि पहले कहा जा चुका है, 'अपकर्ष' के लिए पर्दे सरका कर अथवा अपेक्षित स्थान पर नए पर्दे बाँध कर—इन दोनों प्रकार से काम चलाया जा सकता है। किन्तु बाईसों श्रुतियों का कर्ण-प्रत्यय करने के साथ-साथ 'चाक्षुष' (आँखों का) प्रत्यक्ष करने के लिए नये पर्दे बाँधना ही अधिक प्रशस्त है। चारों सारणाओं में क्रमशः किस प्रकार चल वीणा पर नये स्वरस्थानों (पर्दों) की स्थापना होती है, इसे संलग्न सारिणी में दिखाया गया है। प्रत्येक सारणा के क्रमिक सोपानों को तो हम देख ही चुके हैं। किन्तु चारों सारणाओं द्वारा चलवीणा में जो-जो परिवर्तन होते हैं और जिस क्रम से स्वरों के अन्तरालों में श्रुतियों की सिद्धि होती है, उसे विद्यार्थी एक साथ, एक ही दृष्टि में देख सकें, इस हेतु से नीचे चारों सारणाओं की सम्मिलित सारिणी दी जा रही है।

श्रुति-नाम	अचल वीणा पर स्वर-स्थान	चलवीणा पर प्रथम सारणा में स्वर-स्थान	चल वीणा पर द्वितीय सारणा में स्वर-स्थान	चलवीणा पर तृतीय सारणा में स्वर-स्थान	चलवीणा पर चतुर्थ सारणा में स्वर-स्थान
० क्षोभिणी	० मेरु – निषाद	० मेरु —	० मेरु —	० मेरु —	० मेरु षड्ज
१. तीव्रा	—	१ला पर्दा का.नि.	१ला पर्दा —	१ला पर्दा षड्ज	—
२. कुमुद्वती	१ला पर्दा का.नि.	२रा ,, —	२रा ,, षड्ज	२रा ,, —	—
३. मन्दा	—	३रा ,, षड्ज	३रा ,, —	३रा ,, —	ऋषभ
४. छन्दोवती	२रा ,, षड्ज	४था ,, —	४था ,, —	४था ,, ऋषभ	—
५. दयावती	—	—	५वाँ ,, ऋषभ	५वाँ ,, —	गान्धार
६. रञ्जनी	३रा ,, (स्वर-साधारण)	५वाँ ,, ऋषभ	६ठा ,, —	६ठा ,, गान्धार	—
७. रक्तिका	४था ,, ऋषभ	६ठा ,, —	७वाँ ,, गान्धार	७वाँ ,, —	—
८. रौद्री	—	७वाँ ,, गान्धार	८वाँ ,, —	८वाँ ,, —	—
९. क्रोधा	५वाँ ,, गान्धार	८वाँ ,, —	९वाँ ,, —	९वाँ ,, —	मध्यम
१०. वज्रिका	—	९वाँ ,, अं. गा.	१०वाँ ,, —	१०वाँ ,, मध्यम	—
११. प्रसारिणी	६ठा ,, अं. गां.	१०वाँ ,, —	११वाँ ,, मध्यम	११वाँ ,, —	—
१२. प्रीति	—	११वाँ ,, मध्यम	१२वाँ ,, —	१२वाँ ,, —	—
१३. मार्जनी	७वाँ ,, मध्यम	१२वाँ ,, —	१३वाँ ,, —	१३वाँ ,, —	पंचम
१४. क्षिती	—	—	— —	१४वाँ ,, पंचम	—
१५. रक्ता	—	—	१४वाँ ,, पञ्चम	१५वाँ ,, —	—
१६ सन्दीपनी	—	१३वाँ ,, पञ्चम	१५वाँ ,, —	१६वाँ ,, —	धैवत
१७. अलापिनी	८वाँ ,, पञ्चम	१४वाँ ,, —	१६वाँ ,, —	१७वाँ ,, धैवत	—
१८. मदन्ती	—	—	१७वाँ ,, धैवत	१८वाँ ,, —	निषाद
१९. रोहिणी	९वाँ ,, (स्वर साधारण)	१५वाँ ,, धैवत	१८वाँ ,, —	१९वाँ ,, निषाद	—
२०. रम्या	१०वाँ ,, धैवत	१६वाँ ,, —	१९वाँ ,, निषाद	२०वाँ ,, —	—
२१. उग्रा	—	१७वाँ ,, निषाद	२०वाँ ,, —	२१वाँ ,, —	—
२२. क्षोभिणी	११वाँ ,, निषाद	१८वाँ ,, —	२१वाँ ,, —	२२वाँ ,, —	षड्ज

ऊपर दी हुई सारिणी में नीचे लिखी बातें ध्यान देने योग्य हैं—

(१) प्रत्येक सारणा में नये स्वर-स्थान स्थापित करने यानी नये पर्दे बाँधने का क्रम वही रहेगा, जैसा कि ऊपर प्रत्येक सारणा के सोपानों में दिखाया गया है।

(२) अपकृष्ट अन्तर गान्धार और काकली निषाद का स्थान केवल प्रथम सारणा में ही प्रयोजनीय है, क्योंकि उसी के आधार पर तृतीय सारणा में पंचम के अपकर्ष का नाप जाँचा जाएगा। प्रथम सारणा के बाद अन्य सारणाओं में 'अन्तर-काकली' का अपकर्ष दिखाना निष्प्रयोजन है, यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है।

(३) तृतीय सारणा में ही पर्दों की बाईस संख्या पूर्ण हो जाती है, किन्तु उसमें चल-वीणा के षड्ज, मध्यम और पंचम (चतुःश्रुति स्वर) का अचल वीणा के स्वरों में 'प्रवेश' नहीं होता। इसलिए इन तीनों चतुःश्रुतिक स्वरों के अन्तराल सिद्ध करने के लिए चतुर्थ सारणा अपेक्षित है। चतुर्थ सारणा में 'अपकर्ष' का अभिप्राय यही है कि सभी स्वरों की स्थिति पूर्व ४ के पर्दों पर मान ली जाए और मेरु से पुनः षड्जग्रामिक स्वर-सप्तक की स्थापना की जाए। ध्यान रहे कि चारों सारणाओं में प्रत्येक बार वीणा को 'षड्जग्रामिकी' बनाने का जो विधान है, वह केवल सारणा-क्रिया में ही प्रयोजनीय है। इसलिए चौथी सारणा में जो यह कहा गया है कि मेरुस्थित निषाद में षड्ज लीन हो जाता है, उसका यह अर्थ कदापि न लिया जाए कि षड्जग्राम की मूल स्थापना मेरुस्थित नाद से आरम्भ होती है। वह तो चतुर्थ सारणा की क्रिया मात्र है। उस अवस्था में वीणा षड्जग्राम में वादन योग्य नहीं ही बन सकती।

चतुःसारणा के सरल दिग्दर्शन के लिए नीचे एक सारिणी पुनः दी जा रही है।

अचल वीणा पर स्वर (श्रुति नाम सहित)	चल-वीणा पर सारणा-क्रिया के परिणाम			
	प्रथम सारणा	द्वितीय सारणा	तृतीय सारणा	चतुर्थ सारणा
० (मेरु—क्षोभिणी-निषाद)	<—	<—	<—	षड्ज
१. तीव्रा			षड्ज	
२. कुमुद्वती		षड्ज		
३. मन्दा	षड्ज			ऋषभ
४. छन्दोवती ... षड्ज	<—	<—	ऋषभ	
५. दयावती ...		ऋषभ		गान्धार
६. रञ्जनी ...	ऋषभ		गान्धार	
७. रक्तिका ... ऋषभ	<—	गान्धार		
८. रौद्री ...	गान्धार			
९. क्रोधा ... गान्धार	<—	<—	<—	मध्यम
१०. वज्रिका			मध्यम	
११. प्रसारिणी		मध्यम		
१२. प्रीति	मध्यम			
१३. मार्जनी ... मध्यम	<—	<—	<—	पञ्चम
१४. क्षिति ...			पञ्चम	
१५. रक्ता ...		पञ्चम		
१६. सन्दीपनी ...	पञ्चम			धैवत
१७. आलापिनी... पञ्चम	<—	<—	धैवत	
१८. मदन्ती ...		धैवत		निषाद
१९. रोहिणी ...	धैवत		निषाद	
२०. रम्या ... धैवत	<—	निषाद		
२१. उग्रा ...	निषाद			
२२. क्षोभिणी ... निषाद				

शार्ङ्गदेव की चतुःसारणा

हम पहले ही बता चुके हैं कि शार्ङ्गदेव ने 'संगीत रत्नाकर' में चतुःसारणा की विधि भरत से कुछ भिन्न बनाई है। अब हम उनके शब्दों में ही उसे देख लें। वे कहते हैं :—

द्वे वीणे सदृशे कार्ये यथा नादः समो भवेत्।
तयोर्द्वाविंशतिस्तन्त्र्यः प्रत्येकं तासु चादिमा॥
कार्या मन्द्रतमध्वाना द्वितीयोच्चध्वनिर्मनाक्।
स्यान्निरन्तरता श्रुत्योर्मध्ये ध्वन्यन्तराश्रुतेः॥
अधराधरतीव्रास्तास्तज्जो नादः श्रुतिर्मतः।
वीणाद्वये स्वराः स्थाप्या तत्र षड्जश्चतुःश्रुतिः॥
स्थाप्यस्तन्त्र्यां तुरीयायामृषभस्त्रिश्रुतिस्ततः।
पञ्चमीतस्तृतीयायां गान्धारो द्विश्रुतिस्ततः॥
अष्टमीतो द्वितीयायां मध्यमोऽथ चतुःश्रुतिः।
दशमीतश्चतुर्थ्यां स्यात् पञ्चमोऽथ चतुःश्रुति॥
चतुर्दशीतस्तुर्यायां धैवतस्त्रिश्रुतिस्ततः।
अष्टादश्यास्तृतीयायां निषादो द्विश्रुतिस्ततः॥
एकविंश्या द्वितीयायां वीणैकात्र ध्रुवा भवेत्।
चलवीणा द्वितीया तु तस्यां तन्त्रीस्तु सारयेत्॥
स्वोपान्त्यतन्त्रीमानेयास्तस्यां सप्तस्वरा बुधैः।
ध्रुववीणास्वरेभ्योऽस्यां चलायां ते स्वरास्तदा॥
एकश्रुत्यपकृष्टा स्युरेवमन्याऽपि सारणा।
श्रुतिद्वयलयादस्यां चलवीणागतौ गनी॥
ध्रुववीणोपगतयो रिधयोर्विशतः क्रमात्।
तृतीयस्यां सारणायां विशतः सपयो रिधौ॥
निगमेषु चतुर्थ्यां तु विशन्ति समपाः क्रमात्।
श्रुतिद्वाविंशतावेवं सारणानां चतुष्टयात्॥
ध्रुवाश्रुतिषु लीनायामियत्ता ज्ञायते स्फुटम्।
अतःपरं तु रक्तिघ्नं न कार्यमपकर्षणम्॥

(सं० र० १।३।१०)

अर्थात् "बिल्कुल समान नाद की एक सी दो वीणा ले लें, जिनमें प्रत्येक पर बाईस तारें लगी हों। (उन बाईस तारों में से) पहला तार 'मन्द्रतम' ध्वनि में मिलाया जाए, (उसके बाद का) दूसरा तार उससे 'मनागुच्च'

यानी कुछ ऊँची ध्वनि में मिलाएँ और इसी प्रकार कुछ-कुछ ऊँची ध्वनियों में बाईसों तार मिला लिए जाएँ। क्रमशः ऊँची ध्वनि इस प्रकार रखी जाए कि एक तार और दूसरे तार के नाद में 'निरन्तरता' रहे यानी दोनों नादों के बीच अन्य कोई नाद सुनाई न दे। ये 'अधराधर' तार (जो एक के बाद एक नीचे होते गये हैं यानी जिनकी लम्बाई क्रमशः कम होती चली गई है) क्रमशः 'तीव्र' (ऊँचे नाद वाले) होते हैं और इनसे उत्पन्न नाद 'श्रुति' कहलाते हैं।

टि०—इस उद्धरणांश में चार बातें विचारणीय हैं—(१) 'मन्द्रतम' (२) 'मनागुच्च' (३) 'निरन्तरता' और (४) 'श्रुति'। इन पर अब हम क्रमशः विचार करें—

(१) 'मन्द्रतम' का अर्थ टीकाकारों ने यही लगाया है कि 'मन्द्रतम' ध्वनि उसे समझना चाहिए जिससे नीची अन्य ध्वनि रञ्जक न हो। यथा—'स मन्द्रतमो यस्मान्नीचो मन्द्रोऽन्यो नादो रञ्जको न निष्पद्यते।' पहले तार को यदि इस प्रकार 'मन्द्रतम' ध्वनि में मिला लिया जाए तो सारणा-क्रिया में उस तार का 'अपकर्ष' करने की गुंजाइश ही नहीं रह जाती, क्योंकि उससे अपकृष्ट (नीची) ध्वनि तो रञ्जक न होने के कारण संगीतोपयोगी ही नहीं है।

(२) 'मनागुच्च'—इस 'उच्चता' का कोई निश्चित परिमाण शार्ङ्गदेव ने नहीं बताया है। स्वर-संवाद जो संगीत का प्राण है उसके लिए तो नादों का निश्चित नाप अनिवार्य है। 'मनागुच्च' के अटकलपच्चू ढंग से कभी संवादी ध्वनियाँ नहीं मिल सकतीं।

(३) 'निरन्तरता'—दो तारों की ध्वनियों में 'निरन्तरता' की जो शर्त शार्ङ्गदेव ने लगाई है वह भी अभ्यास-सिद्ध नहीं है, क्योंकि तार मिलाने के अभ्यासी जन यह जानते हैं कि दो तार मिलाते समय कई एक सूक्ष्म ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। ये सूक्ष्म ध्वनियाँ संवादसिद्ध न होने के कारण शास्त्रीय दृष्टि से 'श्रुतियाँ' नहीं मानी जातीं। फिर भी उनका अस्तित्व निर्विवाद है। इसलिए तार मिलाने के लिए नादों की 'निरन्तरता' की शर्त लगाना प्रत्यक्ष अनुभव के विरुद्ध है और क्रियागत (Practical) रूप से असंभव है।

(४) 'श्रुति'—विशेष आश्चर्य की बात तो यह है कि शार्ङ्गदेव ने 'अधराधर' तारों पर अटकलपच्चू मिले हुए नादों को ही 'श्रुति' कह दिया है। इससे यह स्पष्ट है कि उन्होंने पहले श्रुतियाँ गृहीत मान कर फिर स्वरों की 'स्थापना' की है, जब कि वैज्ञानिक और शास्त्रीय प्रक्रिया तो यह है कि संवादसिद्ध स्वरों के अन्तराल जाँचते हुए 'श्रुतियों' को सिद्ध किया जाए, जैसा कि भरत ने किया है। क्रमिक विकास के सार्वभौम सिद्धान्त को देखते हुए भी यही मानना पड़ता है कि स्वर के आधार पर ही श्रुति की सिद्धि हो सकती है। इस दृष्टि से शार्ङ्गदेव का उपर्युक्त विधान नितान्त चिन्त्य है।

अब हम शार्ङ्गदेव के उद्धरण के शेष अंश को देख लें। वे कहते हैं—

"दोनों वीणाओं पर स्वरों की स्थापना इस प्रकार करनी चाहिए—चतुःश्रुति षड्ज को चौथे तार पर, त्रिश्रुति ऋषभ को सातवें तार पर, द्विश्रुति गांधार को नवें तार पर, चतुःश्रुति मध्यम को तेरहवें तार पर, चतुःश्रुति पञ्चम को सत्रहवें तार पर, त्रिश्रुति धैवत को बीसवें तार पर और द्विश्रुति निषाद को बाईसवें तार पर स्थापित करना चाहिए।"

टि०—'मनागुच्च' की रीति से तथा 'निरन्तरता' की शर्त रखते हुए जो बाईस तार मिलाए गए हैं, उन्हीं पर षड्जग्राम की भरतोक्त श्रुति-स्वर-व्यवस्थानुसार चौथी, सातवीं आदि संख्याओं के तारों पर षड्ज ऋषभादि स्वरों की स्थापना करने को शार्ङ्गदेव ने कहा है। यहाँ 'स्थापना' का क्या अर्थ होगा? पूर्वापर विचार करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि उन २२ तारों पर उन ७ स्वरों की स्थिति मान ली जाए। अर्थात् 'मनागुच्च' और 'निरन्तरता' के सहारे पहले जो बाईस श्रुतियाँ मिलाई गई हैं, उन्हीं पर निश्चित संख्यानुसार स्वरों की स्थिति मान ली जाए। स्वरों की 'स्थापना' के समय संवाद-सिद्धि के लिए तारों को उतारने या चढ़ाने की किसी क्रिया का उल्लेख शार्ङ्गदेव ने नहीं ही किया है।

इसलिए 'स्थापना' का यदि यह अर्थ लगाया जाए कि संवाद बाँधते हुए, सातों स्वरों को, अटकलपच्चू मिली हुई तारों पर पुनः मिलाना है तो इस अर्थ की शार्ङ्गदेव के 'मन्द्रतमध्वाना', 'मनागुच्चध्वनि', 'निरन्तरता' और 'अधराधरतीव्रास्तासज्जो नादः श्रुतिर्मतः' इन शब्दों के साथ किसी प्रकार संगति नहीं बैठती, उसके बनाए हुए पूरे ढाँचे में यह अर्थ खप नहीं सकता और न ही उसके साथ मेल खाता है। यदि 'स्थापना' द्वारा स्वरों को संवादमय रूप से मिलाना शार्ङ्गदेव को अभिप्रेत होता तो उन्होंने सबसे पूर्व सातों स्वरों को ही संवाद बाँधकर मिलाने को कहा होता, स्वर से पहले श्रुतियाँ मिलाने को जो कहा है, वह न कहा होता।

अब आगे शार्ङ्गदेव क्या कहते हैं ? देख लें—

"इन दो वीणाओं में से एक तो ध्रुव या अचल रहेगी और दूसरी अध्रुव या चल होगी। चलवीणा में तारों की 'सारणा' की जाएगी।"

टि०—'तन्त्रीषु सारयेत्' यह जो कहा गया है, इसमें 'सारयेत्' का अर्थ टीकाकारों ने 'अपकर्ष' लिया है—'सारयेदपकर्षयेत्'। सारणा क्रिया में अपकर्ष ही किया जाता है यह सर्वविदित है, क्योंकि स्वरों के अन्तरालों में श्रुतियों की गिनाई का अवरोहि-क्रम ही स्वीकृत है और उस अवरोहि-क्रम के अनुसार श्रुतियों की सिद्धि स्वरों के अपकर्ष द्वारा ही की जा सकती है। इसलिए 'सारयेत्' का 'अपकर्ष' अर्थ लेना ही टीकाकारों के लिए स्वाभाविक था, किन्तु बाईस तारों पर जब 'श्रुतियाँ' पहले से ही मिली रखी हों, तब अपकर्ष क्रिया का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। सारणा द्वारा स्वरों का जो क्रमशः 'अपकर्ष' अभिप्रेत है उसके लिए शार्ङ्गदेव के ऊपर के वचनों में कोई स्थान नहीं है, क्योंकि प्रत्येक स्वर की श्रुतियाँ पहिले से ही तारों पर मिली रखी हैं। अस्तु, अब हम शार्ङ्गदेव की चतुःसारणा देख लें।

"(पहली सारणा में) उन स्वरों को 'उपान्त्य तन्त्री' पर यानी अपने अपने तार से पूर्व-पूर्व के तारों पर ले आना चाहिए। इस प्रकार ध्रुववीणा के स्वरों की अपेक्षा चलवीणा के स्वर एक-एक श्रुति अपकृष्ट हो जाएंगे।"

टि०—'उपान्त्य तन्त्री' पर स्वरों को 'ले आने' का ('आनेया' का) यही तात्पर्य लिया जा सकता है कि 'उपान्त्य' तारों पर स्वरों की स्थिति मान ली जाए। 'आनेया'—इस कथन से तारों को उतारने की कोई क्रिया यहाँ अभिप्रेत नहीं हो सकती और यह निष्प्रयोजन भी है क्योंकि सभी स्वरों के पूर्व की ध्वनियाँ पहिले से ही तारों पर मिली रखी हैं।

"इसी प्रकार दूसरी सारणा भी करनी चाहिए। दूसरी सारणा में दो श्रुतियों का अपकर्ष होने से चलवीणा के गान्धार और निषाद क्रमशः अचल वीणा के ऋषभ और धैवत में मिल जाएँगे। तीसरी सारणा में चल वीणा के ऋषभ धैवत क्रमशः अचलवीणा के षड्ज पंचम में मिल जाएंगे (प्रवेश पा जाएंगे)। चौथी सारणा में चलवीणा के षड्ज, मध्यम और पंचम क्रमशः अचलवीणा के निषाद, गान्धार और मध्यम में प्रवेश पा जाएंगे। इस प्रकार चार सारणाओं द्वारा बाईस श्रुतियों की इयत्ता ज्ञात हुई। इसके आगे और अपकर्ष नहीं करना चाहिए, क्योंकि उस से 'रञ्जकता' का नाश होगा।"

टि०—दूसरी, तीसरी और चौथी सारणाओं में चलवीणा के जिन 'स्वरों' का अचल वीणा के 'स्वरों' में प्रवेश बताया गया है, ये सभी 'स्वर' अटकलपच्चू मिले हुए तारों पर 'कल्पित' हैं। वे संवादसिद्ध नाद नहीं हैं, यह ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि चौथी सारणा में षड्ज के 'अपकर्ष' के लिए स्थान नहीं है यानी चौथी सारणा में षड्ज को 'उपान्त्य' तार पर ले जाने की गुंजाइश ही नहीं है, क्योंकि तीसरी सारणा में ही षड्ज प्रथम तार पर पहुँच जाता है। उसके बाद चौथी सारणा में षड्ज के लिए न तो कोई 'उपान्त्य' तार है और न ही प्रथम तार को उतार

सकते हैं, क्योंकि वह तो मन्द्रतम ध्वनि में मिला हुआ है और उसका अपकर्ष शार्ङ्गदेव के ही कथनानुसार 'रतिघ्न' है। नीचे दिये चित्र से यह बात अधिक स्पष्ट हो जाएगी।
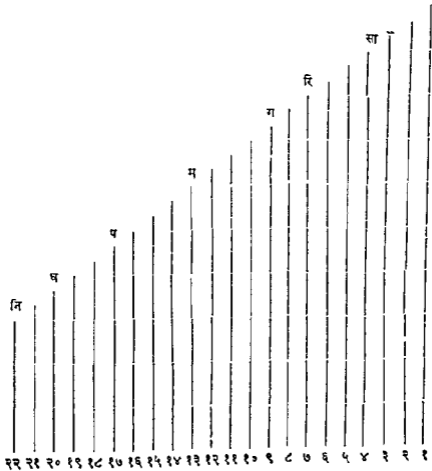
वीणा के मेरुदण्ड पर बाईस तारों की यह स्थिति देखने से स्पष्ट होता है कि षड्ज के पूर्व केवल तीन ही तार हैं जो षड्ज की तीन सारणाओं के लिए उपयोगी है, चौथी सारणा में षड्ज का निषाद में प्रवेश अपेक्षित है। उसके लिए षड्ज से पूर्व निषाद का तार नहीं है। अचल वीणा का बाईसवाँ तार निषाद का स्थान पाये हुए है, किन्तु उसमें षड्ज का प्रवेश असंभव है क्योंकि चतुर्थ सारणा में तो बाईसवें तार के नाद का आधा नाद यानी मन्द्र निषाद अपेक्षित है और उसका प्रत्यक्ष प्रयोग करने के लिए वीणा पर कोई स्थान नहीं है। शार्ङ्गदेव की चतुःसारणा-विधि की इस अपूर्णता की ओर सम्भवतः लोगों का कम ध्यान गया है।

शार्ङ्गदेव की बताई हुई सारणा-विधि के अनुसार प्रत्यक्ष प्रयोग करने में जो मौलिक उलझनें सामने आती हैं, उनका उल्लेख हम ऊपर टिप्पणी के रूप में कर चुके हैं हमारा एतत्सम्बन्धी वक्तव्य एकत्रित रूप से नीचे प्रस्तुत है—

१—भरत ने सारणा की पहिली क्रिया में पञ्चम के अपकर्ष को स्थान दिया है और इस प्रकार पूरी सारणा क्रिया की संवादसिद्ध शृंखला की पहली कड़ी स्थापित की है। पञ्चम के अपकर्ष को सर्वप्रथम स्थान देने में भरत की जो निगूढ़ संवाद-दृष्टि निहित है, उसके बारे में हम पृष्ठ ७९–८० पर उल्लेख कर चुके हैं। शार्ङ्गदेव की सारणा-क्रिया को उस प्रकार का कोई संवादसिद्ध आधार प्राप्त नहीं है। उन्होंने पूर्वापर क्रम रखे बिना सभी स्वरों का अपकर्ष एक साथ कह दिया है। भरत ने 'ग्राम' की भाषा में जिस सुबोध, सरल और शास्त्रीय रीति से सारणा-क्रिया की विधि बताई है, उस रीति का दर्शन शार्ङ्गदेव के शब्दों में नहीं होता।

२—सारणा-क्रिया के पूर्व ही अन्दाज़ से बाइस श्रुतियाँ तारों पर मिला ली गई हैं, फिर उन्हें सिद्ध करने या उनकी 'इयत्ता' को ज्ञात करने का प्रश्न ही कहाँ उठता है ?

३—ध्रुववीणा पर भी चलवीणा की ही भाँति बाईस तार बाँधने को कहा गया है। ऐसी अवस्था में ध्रुववीणा किस प्रकार चलवीणा की सारणा प्रक्रिया के लिये 'स्टैंडर्ड' का काम देगी ? इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं मिलता। भरतोक्त विधि में ध्रुववीणा जिस प्रकार चलवीणा पर स्वरों के अपकर्ष का माप निश्चित करते समय संवाद जाँचने के लिए आधार या प्रमाणभूत 'स्टैंडर्ड' का काम देती है, वैसा कोई प्रयोजन शार्ङ्गदेव की ध्रुववीणा द्वारा सिद्ध नहीं होता।

४—स्वर की 'स्थापना' के पूर्व 'मनागुच्च' और 'निरन्तरता' के सहारे बाईस तारों पर बाईस 'श्रुतियाँ' मिला लेने का शार्ङ्गदेव ने जो विधान दिया है, उसी के कारण कुछ आधुनिक विचारकों में यह भ्रान्ति उत्पन्न हुई है कि सभी श्रुतियों का समान (एक-सा) नाप या परिमाण है। यह एक बहुत बड़ा भ्रम है जिसकी विवेचना अगले ही प्रकरण में की जाएगी।

शार्ङ्गदेव की सारणा-विधि की अस्पष्टता और असामंजसता के लिए यदि कोई यह तर्क करे कि प्राचीन ग्रन्थकार अपने ग्रन्थ में ऐसी 'ग्रन्थियाँ'(गाँठें) रखा करते थे जिनका रहस्य समझना या सुलझाना असंभव-सा होता है, तो यह तर्क वास्तव में ग्रन्थकार की स्तुति न हो कर 'व्याजस्तुति' का ही रूप धारण करेगा। और इस प्रकार स्तुति के 'व्याज' (बहाने) से उनकी निन्दा ही प्रस्तुत होगी। ऐसी 'स्तुति' की अपेक्षा तो ग्रन्थकार के साथ न्याय करने का यही सरल मार्ग है कि उनके वचनों की अस्पष्टता को प्राञ्जल भाव से स्वीकार कर लिया जाए। अस्पष्टता का आरोप 'ग्रन्थि-प्रयोग' वाली स्तुति से कहीं अधिक न्यायसंगत है।

इस प्रकार हमने भरत और शार्ङ्गदेव की बताई हुई सारणा-प्रक्रिया को तुलनात्मक दृष्टि से देखा और यह प्रतीति पा ली कि भरतोक्त विधि ही शास्त्रीय, क्रियासिद्ध, वैज्ञानिक, संवादसिद्ध, समंजस, स्पष्ट और सुबोध है।

श्रुतियों का मान

चतुःसारणा की विधि द्वारा बाईस श्रुतियों की सिद्धि देख लेने के बाद श्रुतियों के मान या नाप की विवेचना आवश्यक है। यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि श्रुतियों का मान सम है या विषम, यानी बाईसों श्रुतियाँ एक-से नाप की हैं या भिन्न-भिन्न नाप की ? इस प्रश्न पर दो मत हैं--एक समानतावाद और दूसरा असमानतावाद। इस प्रकरण में हम इन दोनों पक्षों पर विचार करेंगे और यह देखेंगे कि कौन-सा पक्ष स्वर-संवाद की सर्वमान्य और सार्वभौम कसौटी पर खरा उतरता है।

हम जानते हैं कि हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने श्रुतियों के मान को नापने-जोखने की कोई गणित-प्रक्रिया नहीं बताई है। उसकी उन्हें कोई आवश्यकता भी नहीं थी। किन्तु भरत नाट्यशास्त्र, जिसे अधुना उपलब्ध संगीतशास्त्र-ग्रन्थों में आदिम स्थान प्राप्त है, उसमें बाईस श्रुतियों की संवादमय सिद्धि के लिये चतुःसारणा की जिस विधि का प्रतिपादन किया गया है, उस विधि के आधार पर आज गणित द्वारा प्राचीनोक्त श्रुतियों का मान निश्चित किया जा सकता है। इस आधुनिक गणित-प्रक्रिया का विवरण देने के पूर्व उन गणित विधियों की सामान्य जानकारी विद्यार्थियों के लिए दे देना यहाँ आवश्यक है, जिनका आज मुख्य रूप से उपयोग किया जाता है। वे विधियाँ निम्नोक्त हैं :—

भिन्न-पद्धति अथवा अपूर्णांक पद्धति--इसमें 'सा' से 'सां' तक का अन्तराल १:२ है। इस १:२ के बीच के सभी स्वरान्तरालों को भिन्न यानी अपूर्णांक द्वारा दिखाया जाता है। इस पद्धति में स्वरों के अन्तरालों के जोड़-घटाव में यह विशेषता रहती है कि दो अन्तरालों को जोड़ने के लिए उन्हें गुना करना होता है और दो अन्तरालों को घटाने के लिए बड़े में छोटे का भाग दिया जाता है। उदाहरण के लिए सा-प का अन्तराल ३/२ है और सा-म का ४/३। अब यदि सा-प के अन्तराल में से सा-म अन्तराल को घटाना हो तो ३/२ ÷ ४/३ यानी ३/२ × ३/४ = ९/८ यह म-प का अन्तराल निकल आएगा। उसी प्रकार सा-म के अन्तराल ४/३ में यदि म-प का अन्तराल ९/८ जोड़ना हो तो ४/३ × ९/८ = ३/२ इस प्रकार सा-म के अन्तराल को म-प अन्तराल से गुना देने पर सा-प अन्तराल ३/२ निकल आएगा। इस पद्धति के अनुसार मुख्य स्वरान्तरालों को निम्नलिखित ढंग से भिन्न या अपूर्णांक द्वारा दिखाया जाता है :—

(१) चतुःश्रुतिक स्वर या गुरु-स्वर या पाश्चात्य 'मेजर टोन' = ९/८।

(२) त्रिश्रुतिक स्वर या लघु-स्वर या पाश्चात्य 'माइनरटोन' = १०/९।

(३) द्विश्रुतिक स्वर या अर्ध-स्वर या पाश्चात्य 'सेमीटोन' = १६/१५।

इन स्वरान्तरालों में श्रुतियों का मान भी इस पद्धति के अनुसार भिन्न या अपूर्णांक संख्याओं द्वारा ही दिखाया जाता है।

(२) **सेवर्ट-पद्धति**—एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक के नाम पर इस पद्धति का नामकरण हुआ है। भिन्न या अपूर्णांक पद्धति में दो उलझनें सामने आती हैं, एक तो यह कि स्वरान्तरालों के जोड़-घटाव के लिए गुणा-भाग करना होता है और दूसरे यह कि भिन्न वाली अपूर्णांक संख्या को देखकर यह कहना कठिन होता है कि कौन-सा अन्तराल बड़ा है और कौन-सा छोटा। इन उलझनों से बचने के लिए 'लॉगरिदम'[1] के आधार पर सेवर्ट पद्धति बनाई गई है जिसमें दो अन्तरालों को सीधे जोड़ा जाता है या घटाया जाता है और अन्तरालों का छोटा-बड़ापन स्पष्ट दिखाई देता है।

---

१. 'लागरिदम' का स्पष्ट विवरण 'ध्वनि और संगीत' (लेखक प्रो० ललित किशोर सिंह) में पृ० ७२ पर देखा जा सकता है।

इस पद्धति में एक सतक का अन्तराल ३०१ सेवर्ट होता है और मुख्य अन्तरालों का नाप इस प्रकार दिखाया जाता है—

		सेवर्ट
गुरु-स्वर	(९/८)	५१
लघु-स्वर	(१०/९)	४६
अर्धस्वर	(१६/१५)	२८

सेन्ट पद्धति—पाश्चात्य वैज्ञानिक एलिस की सेण्ट पद्धति में एक सतक का अन्तराल १२०० सेन्ट होता है। इस माप में मुख्य स्वरान्तराल इस प्रकार है—

सप्तक	१२०० सेण्ट
गुरुस्वर	२०३'७ ,,
लघुस्वर	१८२'६ ,,
अर्धस्वर	१११'६ ,,

सेन्ट का जोड़-घटाव भी सेवर्ट की तरह सीधा होता है। यह पद्धति Tempered scale या 'सम-संस्कृत-ग्राम' के स्वरान्तरालों को निदर्शित करने के लिए अधिक उपयोगी है, क्योंकि उस ग्राम में बारह अर्धस्वर समान नाप के होते हैं।

संगीत के स्वरान्तरों या श्रुत्यन्तरों को निदर्शित करने की तीनों प्रमुख विधियों का सामान्य परिचय पा लेने के बाद अब हमें समानतावाद और असमानतावाद—इन दोनों पक्षों के अनुसार बाईस श्रुतियों के गणित-मूल्य निर्धारित करने की प्रक्रिया देख लेनी चाहिए। किन्तु उसके पूर्व एक उल्लेख आवश्यक है जो निम्नोक्त है।

समानतावादियों का मुख्य आधार शार्ङ्गदेव माने जाते हैं, क्योंकि उन्होंने बाईस तारों पर श्रुतियाँ मिलाने के लिए 'मनागुच्च' और 'निरन्तरता' का जो विधान दिया है, उसका यह अर्थ लगाया गया है कि उन्होंने तारों पर समान रूप से श्रुतियाँ मिला लेने को कहा है। असमानतावादियों को भरत का आधार प्राप्त है, क्योंकि भरत की संवादसिद्ध चतुःसारणा के अनुसार गणित द्वारा श्रुतियों का विषम नाप सिद्ध होता है। भरत-पद्धति की यह विशेषता आज सर्वमान्य है। किन्तु पं० भातखण्डे ने भरत की 'प्रमाण-श्रुति' का अर्थ-विपर्यय करके शार्ङ्गदेव के साथ-साथ उन पर भी समानतावाद का आरोप लगाया है। यह आरोप और उसका परिहार यहाँ संक्षेप में उल्लेखनीय है। पं० भातखण्डे कहते हैं—

नाट्यशास्त्रे तथा रत्नाकरग्रन्थेऽपि सर्वथा।
श्रुतयः स्युः समानास्ता इति संगीतविन्मतम्॥

(लक्ष्यसंगीत ८)

अर्थात् "'नाट्यशास्त्र' और 'रत्नाकर' दोनों ग्रन्थों में श्रुतियाँ समान हैं, ऐसा संगीतविद् व्यक्तियों का मत है।"

भरत की 'प्रमाण-श्रुति' का अर्थ-विपर्यास करके पं० भातखण्डे ने ऐसी मान्यता का प्रचार किया है कि भरत को 'प्रमाणश्रुति' का ही नाप बाईसों श्रुतियों के लिए समान रूप से अभिप्रेत था। (देखें मराठी हिं० सं० पद्धति भाग २ पृ० ३४)। इस अर्थ-विपर्यय को यथार्थ रूप से समझने के लिए हम भरत के ही शब्द सर्वप्रथम देख लें—

मध्यमग्रामे तु श्रुत्यपकृष्टः पञ्चमः कार्यः, पञ्चमश्रुत्युत्कर्षापकर्षाद्वा यदन्तरं मार्दवादायतत्वाद्वा तत्प्रमाणश्रुतिः ।

अर्थात्—"मध्यमग्राम में पञ्चम को एक श्रुति अपकृष्ट करना चाहिये । पंचम के श्रुति-उत्कर्ष से या श्रुति-अपकर्ष से अथवा 'मार्दव' (उत्कर्ष) या 'आयतत्व' (अपकर्ष) से जो अन्तर (उपलब्ध होता है) वह 'प्रमाणश्रुति' है ।"

पंचम का 'अपकर्ष' और 'उत्कर्ष' यहाँ सम्यक् रूप से समझ लेना आवश्यक है । षड्जग्राम में पंचम चतुःश्रुतिक होता है यानी मध्यम से चौथी श्रुति पर पंचम रहता है । मध्यमग्राम में पंचम चौथी श्रुति से अपकृष्ट होकर तीसरी श्रुति पर आ जाता है । इस अपकर्ष का नाप उतना ही होता है जिससे वह अपकृष्ट पंचम त्रिश्रुति ऋषभ के साथ षड्ज-मध्यम भाव से संवाद करे । यह पंचम के अपकर्ष का अन्तर हुआ । पंचम का 'उत्कर्ष' तब होता है जब प्रथम सारणा की सर्व-प्रथम क्रिया द्वारा यानी पंचम के अपकर्ष द्वारा चलवीणा को मध्यमग्रामिकी बनाने के बाद उसे पुनः षड्जग्रामिकी बनाया जाता है । वीणा को षड्जग्रामिकी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि पंचम को पुनः चतुःश्रुतिक बनाया जाए । अपकृष्ट पंचम तभी चतुःश्रुतिक बन सकता है जब कि मध्यम अपने स्थान से एक श्रुति उतर जाए और मध्यम की वह चौथी श्रुति पंचम को मिल जाए । मध्यम का अपकर्ष होते ही मध्यम पंचम के बीच पुनः चतुःश्रुति अन्तराल स्थापित हो जाएगा । पंचम के प्रथम अपकर्ष से जो अन्तराल त्रिश्रुतिक रह गया था, वही अन्तराल जब मध्यम के अपकर्ष से पुनः चतुःश्रुतिक बन जाता है तब पंचम का 'उत्कर्ष' कहा जाता है । ध्यान रहे कि पंचम का 'उत्कर्ष' मध्यम पंचम के बीच के अन्तराल से ही संबन्ध रखता है ; उससे पंचम का स्थान-परिवर्तन अभिप्रेत नहीं है, जबकि अपकर्ष द्वारा तो पञ्चम का स्थान च्युत होता है और उसी च्युति के कारण पञ्चम-मध्यम का अन्तराल त्रिश्रुतिक रह जाता है ।

पञ्चम के 'अपकर्ष' और 'उत्कर्ष' को समझ लेने के बाद भरत की 'प्रमाण-श्रुति' का स्पष्टीकरण सरल हो जाता है । पञ्चम को त्रिश्रुतिक बनाने के लिए जितना अपकर्ष करना होता है, ठीक उतना ही मध्यम का अपकर्ष करने से पञ्चम का 'उत्कर्ष' होता है । इसीलिए भरत ने कहा है कि पञ्चम के 'उत्कर्ष' या 'अपकर्ष' का जो 'अन्तर' या नाप है, (वह एक-सा है और) वही 'प्रमाण-श्रुति' है, अर्थात् वह 'अन्तर', 'प्रमाण' है और वही श्रुति है । 'प्रमाण' के दो अर्थ हैं :—

(१) नाप—'प्रकृष्टं मीयतेऽनेन इति प्रमाणम्' ।

अर्थात्—जिसके द्वारा प्रकृष्ट रूप से नापा जाए, वह प्रमाण है ।

(२) 'स्टैंडर्ड' या प्रमाणभूत ।

यहाँ दूसरा अर्थ ही अभिप्रेत है, क्योंकि नाप का अर्थ तो 'अन्तर' से ही निकल आता है । यदि भरत को ऐसा अभिप्रेत होता कि श्रुति का यह एक ही नाप है तब तो वे कह सकते थे कि 'यदन्तरं तच्छ्रुतिः' । उन्होंने 'प्रमाण श्रुति' ऐसा जो कहा है, उसका यही तात्पर्य है कि पञ्चम के उत्कर्ष या अपकर्ष का जो अन्तर या नाप है, वह स्टैंडर्ड श्रुति है । इस नाप को 'स्टैण्डर्ड' मानने के दो आधार हैं :—

(१) षड्जग्रामाश्रित 'वीणा' को 'मध्यमग्रामिकी' बनाने के लिये पञ्चम का जो 'अपकर्ष' करना होता है, उस अपकर्ष का नाप और मध्यमग्रामिकी वीणा को पुनः षड्जग्रामिकी बनाने के लिए पञ्चम का जो 'उत्कर्ष' करना होता है उस उत्कर्ष का नाप ये दोनों समान हैं । वीणा पर उभय ग्राम की सिद्धि करने का साधन यही नाप है, इसलिए वह प्रमाण श्रुति है ।

(२) सारणा-प्रकरण में हम देख चुके हैं कि सारणा-क्रिया के आरम्भ में जब श्रुति का कोई भी नाप हमें ज्ञात नहीं है, उस अवस्था में पञ्चम का अपकर्ष ही एकमात्र ऐसी क्रिया है, जिसमें 'अपकर्ष' का नाप, ऋषभ-पञ्चम-संवाद के आधार पर निश्चित किया जा सकता है । इस 'अपकर्ष' के बाद वीणा को पुनः षड्जग्रामिकी बनाने के लिए पञ्चम का

'उत्कर्ष' (यानी मध्यम का एक श्रुति अपकर्ष) किया जाता है। इस 'उत्कर्ष' का नाप भी अपकर्ष' जितना ही है। इस नाप को 'स्टैंडर्ड' इसीलिए कहा गया है क्योंकि पूरी सारणा-क्रिया का आधार-स्तम्भ यही 'अपकर्ष' और 'उत्कर्ष' की क्रिया है। इसके बिना सारणा-क्रिया में अग्रसर होना असंभव है। इसीलिए पञ्चम के इस 'अपकर्ष' या 'उत्कर्ष' के नाप को या 'अन्तर' को प्रमाण श्रुति कहा है। सारणा-किया की इस पहिली कड़ी से आरंभ करके जब आगे बढ़ेंगे तब द्वितीय और तृतीय सारणा में श्रुति के अन्य दो नाप स्वाभाविक रूप से उपलब्ध हो जाएंगे, क्योंकि द्वितीय सारणा में चलवीणा के गान्धार निषाद अचल वीणा के ऋषभ-धैवत में लीन हो जाते हैं और तृतीय सारणा में चल वीणा के ऋषभ-धैवत अचल वीणा के षड्ज-पञ्चम में लीन हो जाते हैं। द्वितीय और तृतीय सारणाओं के संबन्ध में यह सुस्पष्ट विधान रहने के कारण द्वितीय और तृतीय अपकर्ष का नाप निश्चित करने में कोई कठिनाई नहीं होती। प्रथम अपकर्ष का नाप पञ्चम से ही निश्चित होता है, इसीलिए पञ्चम के 'अपकर्ष' और 'उत्कर्ष' के नाप को भरत ने 'प्रमाण-श्रुति' कहा है। जब तक प्रथम अपकर्ष का नाप ज्ञात न हो, तब तक द्वितीय और तृतीय अपकर्ष करना असंभव है, इसलिए यह प्रथम अपकर्ष 'प्रमाण' या 'स्टैंडर्ड' है।

ऊपर की विवेचना से यह स्पष्ट हुआ होगा कि 'प्रमाण श्रुति' का यह अर्थ कदापि नहीं है कि सभी श्रुतियों का यह एक ही नाप है। 'प्रमाण-श्रुति' से यह तात्पर्य निकालना कि सभी श्रुतियों का यही एक नाप भरत को अभिप्रेत था, यह तो भरत के साथ नितान्त अन्याय करना होगा। अपने पूर्वग्रह के अनुसार किसी ग्रन्थकार के शब्दों का अर्थ-विपर्यास करना कहाँ तक न्याय कहला सकता है ? अब हम श्रुतियों के नाप को समानतावाद और असमानतावाद इन दोनों पक्षों के दृष्टिकोण से देख लें।

(१) समानवावाद

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, इस पक्ष के मुख्य आधार शार्ङ्गदेव हैं। उन्होंने चतुःसारणा की विधि में बाईसों तारों को 'मनागुच्च' और 'निरन्तरता' के सहारे मिला लेने का जो विधान दिया है, उसी के आधार पर श्रुतियों के सम मान की कल्पना हुई है। समानतावाद के अनुसार श्रुतियों का नाप निश्चित करने की गणित-विधि नीचे के उद्धरण में दी जाती है।

"यदि शार्ङ्गदेव के संकेत पर श्रुतियों का मान एक दूसरे के बराबर माना जाए तो एक सप्तक, अर्थात्— सा – र्सा का अन्तराल २२ समान भागों में बँट जाता है। भिन्न-पद्धति में सा – र्सा का अन्तराल २ होता है। इसलिए २२ श्रुतियों का परस्पर गुणा करने से २ के बराबर होना चाहिए। अर्थात् यदि एक श्रुति के मान को 'श' मान लिया जाए तो—

$$(श \times श \times \cdots\cdots \times \text{बाईसवाँ } श) = २$$

$$\text{या } (श)^{२२} = २$$

$$\text{या } श = {}^{२२}\!\!\sqrt{२}$$

अर्थात् एक श्रुति का अन्तराल २ के बाईसवें मूल के बराबर हुआ। यह मूल निकालने पर।

$$श = १\cdot०३२ = \frac{१३२}{१२८}$$

पर सेवर्ट की पद्धति से यह सारी गणना बड़ी सरल हो जाती है। इसलिए ऊपर भिन्न का संकेत करके अब आगे सेवर्ट में ही गणना की जाएगी।

अस्तु, सा — सां का अन्तराल ३०१ सेवर्ट होता है। इसलिए एक श्रुति का अन्तराल

श = ३०१/२२ = १३·७ सेवर्ट ।

इस हिसाब से

चतुःश्रुतिक स्वर = १३·७ × ४ = ५४·८ सेवर्ट

त्रिश्रुतिक स्वर = १३·७ × ३ = ४१·१ ,,

द्विश्रुतिक स्वर = १३·७ × २ = २७·४ ,,

आधुनिक स्वरों के साथ तुलना करने पर पता चलता है कि चतुःश्रुतिक स्वर गुरुस्वर (मेजर टोन) से लगभग चार सेवर्ट ऊँचा है ; त्रिश्रुतिक स्वर लघुस्वर (माइनरटोन) से लगभग ५ सेवर्ट नीचा है और द्विश्रुतिक स्वर अर्धस्वर (सेमीटोन) के लगभग बराबर है । इस हिसाब से शार्ङ्गदेव का शुद्ध ग्राम ऐसा निकलता है —

सा	रि	ग	म	प	ध	नि	सां
०	४१·१	६८·५	१२३·३	१७८·१	२१९·२	२४६·६	३०१

इसमें 'म' इष्ट मध्यम से लगभग २ सेवर्ट नीचा और 'प' इष्ट पंचम से २ सेवर्ट ऊँचा है। ग और नि भी आधुनिक कोमल ग और कोमल नि से लगभग १० सेवर्ट उतरे हुए हैं। ये ग ३/२ और नि ९/५ से भी लगभग ५ सेवर्ट छोटे हैं।

इस स्वर-प्रबन्ध में, जो किसी भी ज्ञात स्वर-प्रबन्ध से नहीं मिलता, विचारने की मुख्य बात यह है कि इसका चतुःश्रुतिक अन्तराल गुरुस्वर से भी ३·८ सेवर्ट या लगभग एक 'कोमा' ऊँचा है। यह गुरुस्वर मध्यम और पंचम का अन्तराल है और वे दोनों ही स्वर प्राकृतिक हैं जो सभी देशों और सभी कालों में एक से पाए जाते हैं। इसलिए यह मानना पड़ता है कि शार्ङ्गदेव जैसे आचार्य इसके मान में त्रुटि नहीं कर सकते। जो हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि शार्ङ्गदेव की श्रुतियाँ शुद्ध गणित की दृष्टि से बराबर नहीं हैं और न ही उनका आधार सम-सान्तर ग्राम की रचना ही था, जो आधुनिक पाश्चात्य संगीत में संहति की एक विशेष समस्या लेकर अवतरित हुआ है।"

('ध्वनि और संगीत' पृ० १७०-७१)

शार्ङ्गदेव की चतुःसारणा-विधि में उल्लिखित 'मनागुच्च' और 'निरन्तरता' के आधार पर आधुनिक युग में 'समानतावाद' की जो कल्पना की गई है, उस का गणितरूप हम ने ऊपर के उद्धरण में देखा और उस से प्राप्त 'स्वरों' की विकलता भी देखी। स्वर-संवाद के सार्वभौम और वैकालिक सिद्धान्त का जहाँ ऐसा घोर उल्लंघन होता हो, उस कल्पना की असामंजस्यता स्वयंसिद्ध है। इस कल्पना के लिए शार्ङ्गदेव के शब्दों में अवकाश है ऐसा कहने वालों का प्रत्याख्यान (मुंह बन्द) करने के लिए शार्ङ्गदेव के अपने शब्दों में से अथवा टीकाकारों की भाषा में से कोई सामग्री उपलब्ध नहीं होती यह सत्य है। साथ ही एक और बात उल्लेखनीय है कि श्रुतियों के सम मान की गणना कागज पर करना भले ही संभव हो, किन्तु प्रत्यक्ष प्रयोग में सम नाप से तारों पर श्रुतियाँ मिलाना कोरे कान से असंभव है। कान तो स्वर-संवाद के आधार पर ही काम कर सकता है। गणित के सम नाप को कान नहीं ही सिद्ध कर सकता।

शार्ङ्गदेव के 'मनागुच्च' और 'निरन्तरता' से सम या विषम किसी भी नाप का सीधा अर्थ नहीं निकलता, इसलिए सम नाप का अर्थ लेकर कहीं हम 'रत्नाकर' जैसे विराट् और आकर ग्रन्थ के प्रणेता के साथ अन्याय न कर बैठें इसी विवेक बुद्धि के वशीभूत होकर हमने शार्ङ्गदेव की चतुःसारणा-विधि की उलझनों को समझते हुए भी 'प्रणव-भारती' के पृ० ८५-१८०-८१ पर शार्ङ्गदेव का पक्ष लेते हुए ऐसी स्थापना करने का यत्न किया था कि श्रुतियों का सम मान स्वीकार करने से

जो संवाद-विरुद्ध 'स्वर' मिलते हैं, वे उन्हें कभी भी अभीष्ट नहीं रहे होंगे, किन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि शार्ङ्गदेव के शब्दों में किसी संवाद सिद्ध प्रक्रिया को स्थान नहीं मिला है। 'संगीत रत्नाकर' के तत्संबन्धी अंश का पुनः २ परिशीलन करने से और पूरी गहराई में उतर कर विचार करने से अब हम दृढ़ता से इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वीणा के तारों पर स्वरों की रत्नाकरोक्त 'स्थापना' से तार मिलाने की किसी संवादसिद्ध प्रक्रिया का अर्थ नहीं लिया जा सकता है। उसी निष्कर्ष को हमने चतुःसारणा प्रकरण में निर्भीकभाव से लेखबद्ध कर दिया है।

किसी भी ग्रन्थकार के लेखन में पूर्व-विधि की अपेक्षा पर-विधि ही बलवान् होती है। इसलिए प्रस्तुत ग्रन्थ में लेखबद्ध हमारे विचारों को ही 'पर-विधि' समझ कर तदनुसार मान्यता दी जाए, ऐसा पाठकों से अनुरोध है।

(२) असमानतावाद

इस पक्ष के आधार भरत हैं। भरत की चतुःसारणा में निम्नोक्त रीति से श्रुतियों का विषम मान प्रमाणित होता है।

भरतोक्त विधि के अनुसार हमें स्वरों का मान पहले निश्चित करना है और उसके बाद स्वर-मान के आधार पर ही श्रुतियों का नाप निकालना है। स्वरों का मान निश्चित करने के लिए हमें निम्नलिखित संवादसिद्ध अन्तराल ध्यान में रखने होंगे :—

(१) सा – प अन्तराल = $\frac{३}{२}$ – त्रयोदश श्रुति
(२) सा – म ,, = $\frac{४}{३}$ – नव श्रुति
(३) सा – ग ,, = $\frac{५}{४}$ – सप्त श्रुति
(४) सा – ग् ,, = $\frac{६}{५}$ – षट् श्रुति

पञ्चम-मध्यम के चतुःश्रुति अन्तराल का मान 'सा – प' अन्तराल में से 'सा – म' अन्तराल को घटाने से मिल जाएगा। यथा—$\frac{३}{२} \div \frac{४}{३} = \frac{३}{२} \times \frac{३}{४} = \frac{९}{८}$ यह चतुःश्रुति अन्तराल का मान हुआ। त्रिश्रुति अन्तराल का मान निकालने के लिए सा – ध अन्तराल पहले निकाल लें। सा – ध अन्तराल निकालने के लिए सा – म अन्तराल को सप्तश्रुति अन्तराल के मान से गुणा करें। सा – म अन्तराल = $\frac{४}{३}$, सप्तश्रुति अन्तराल = $\frac{५}{४}$ इसलिए सा – ध अन्तराल = $\frac{४}{३} \times \frac{५}{४} = \frac{५}{३}$। पञ्चम-धैवत का त्रिश्रुति अन्तराल निकालने के लिए सा – ध अन्तराल में से सा – प अन्तराल घटाना होगा। इसलिए प – ध अन्तराल = $\frac{५}{३} \div \frac{३}{२}$ यानी $\frac{५}{३} \times \frac{२}{३} = \frac{१०}{९}$। द्विश्रुति अन्तराल का मान निकालने के लिए सा – नि् अन्तराल पहले निकाल लें और सा – नि् अन्तराल में से सा – ध अन्तराल घटा दें। निषाद का मध्यम से नव श्रुति अन्तराल है। इसलिए सा – नि् अन्तराल निकालने के लिए सा – म अन्तराल में पुनः नवश्रुति अन्तराल जोड़ दें। इसलिए सा – नि् अन्तराल = $\frac{४}{३} \times \frac{४}{३} = \frac{१६}{९}$। इसलिए द्विश्रुति अन्तराल = सा – नि् अन्तराल—सा – ध अन्तराल यानी $\frac{१६}{९} \div \frac{५}{३}$ यानी $\frac{१६}{९} \times \frac{३}{५} = \frac{१६}{१५}$। इस प्रकार स्वरों का निम्नलिखित मान निश्चित हुआ।

(१) चतुःश्रुति अन्तराल = $\frac{९}{८}$
(२) त्रिश्रुति ,, = $\frac{१०}{९}$
(३) द्विश्रुति ,, = $\frac{१६}{१५}$

ये मान निश्चित हो जाने पर भरत का षड्जग्राम इस प्रकार बनता है :—

सा		रि		ग		म		प		ध		नि		सां
१		$\frac{१०}{९}$		$\frac{३२}{२७}$		$\frac{४}{३}$		$\frac{३}{२}$		$\frac{५}{३}$		$\frac{१६}{९}$		२
	$\frac{१०}{९}$		$\frac{१६}{१५}$		$\frac{९}{८}$		$\frac{९}{८}$		$\frac{१०}{९}$		$\frac{१६}{१५}$		$\frac{९}{८}$	

इस प्रकरण के आरंभ में बताया जा चुका है कि सेवर्ट पद्धति के अनुसार ये स्वरान्तराल इस प्रकार दिखाये जाते हैं :—

चतुःश्रुति स्वर . $\frac{९}{८}$ = ५१ सेवर्ट

त्रिश्रुति स्वर $\frac{१०}{९}$ = ४६ „

द्विश्रुति स्वर $\frac{१६}{१५}$ = २८ „

पहली सारणा में चलवीणा का प्रत्येक स्वर अचलवीणा के प्रत्येक स्वर की अपेक्षा एक श्रुति उतरता है। पहली सारणा की पहली क्रिया में पञ्चम के अपकर्ष द्वारा वीणा को मध्यमग्रामिकी बनाया जाता है। इसी 'अपकर्ष' को 'प्रमाण-श्रुति' कहा गया है। इस 'अपकर्ष' से पञ्चम त्रिश्रुति ऋषभ का संवादी बन जाता है। इसलिए त्रिश्रुति पञ्चम का मान = सा-म अन्तराल + त्रिश्रुति अन्तराल यानी $\frac{४}{३} \times \frac{१०}{९} = \frac{४०}{२७}$ त्रिश्रुति प का अन्तराल निकल आने पर एक श्रुति के अपकर्ष का नाप अनायास निकाला जा सकता है, क्योंकि अपकृष्ट श्रुति = चतुःश्रुति (षड्जग्रामिक) प—त्रिश्रुति (मध्यमग्रामिक) प यानी $\frac{३}{२} \div \frac{४०}{२७}$ यानी $\frac{३}{२} \times \frac{२७}{४०} = \frac{८१}{८०}$ या ५ सेवर्ट। यह चतुःश्रुति स्वर और त्रिश्रुति स्वर का अन्तर हुआ जिसे 'कोमा' (Comma) कहते हैं। प्रथम सारणा में अन्य स्वरों के साथ चलवीणा के गान्धार-निषाद अचलवीणा के ऋषभ-धैवत में मिल जाते हैं। इसलिए द्विश्रुति अन्तराल में से प्रथम सारणा के अपकर्ष का मान घटाने से द्वितीय अपकर्ष का मान निकल आएगा। यथा :—$\frac{१६}{१५} \div \frac{८१}{८०}$ यानी $\frac{१६}{१५} \times \frac{८०}{८१} = \frac{२५६}{२४३}$। यह अपकर्ष २३ सेवर्ट का है और इस अन्तराल को लीमा (limma) कहते हैं। इन दोनों अपकर्षों से चलवीणा के 'रि' और 'ध' एक अर्धस्वर या २८ सेवर्ट उतर गए। तीसरी सारणा में 'रि' और 'ध' क्रमशः 'सा' और 'प' में लीन हो जाते हैं। इसलिए तीसरे अपकर्ष का मान = त्रिश्रुति अन्तराल—द्विश्रुति अन्तराल यानी $\frac{१०}{९} \div \frac{१६}{१५}$ यानी $\frac{१०}{९} \times \frac{१५}{१६} = \frac{२५}{२४}$ या १८ सेवर्ट। इसे minor semitone या लघु अर्धस्वर कहते हैं। अब तक षड्ज, मध्यम और पञ्चम इन चतुःश्रुतिक स्वरों के ५ + २३ + १८ = ४६ सेवर्ट उतर चुके। इसलिए अब चौथे अपकर्ष में पुनः ५ सेवर्ट का ही अपकर्ष अभीष्ट है, क्योंकि उससे ४६ + ५ = ५१ सेवर्ट का अपकर्ष हो जाने पर षड्ज मध्यम और पंचम क्रमशः निषाद, गान्धार और मध्यम में मिल जाएँगे। इसका अर्थ यह हुआ कि चौथी श्रुति भी एक 'कोमा' के बराबर है। ऊपर की प्रक्रिया का निष्कर्ष संक्षेप में इस प्रकार है :—

चतुःश्रुतिक स्वर = कोमा + लीमा + लघु अर्ध० + कोमा = $\frac{८१}{८०} \times \frac{२५६}{२४३} \times \frac{२५}{२४} \times \frac{८१}{८०}$ = ५ + २३ + १८ + ५ = ५१ सेवर्ट = $\frac{९}{८}$।

त्रिश्रुतिक स्वर = कोमा + लीमा + लघु अर्ध. = ५ + २३ + १८ = ४६ सेवर्ट = $\frac{१०}{९}$

द्विश्रुति स्वर = कोमा + लीमा = ५ + २३ = २८ सेवर्ट = $\frac{१६}{१५}$।

इन श्रुति-मानों को यदि षड्जग्राम में सजा दिया जाए तो निम्नलिखित क्रम बनता है।

सा			रि		ग		अं.ग.		म				प			ध		नि			का.नि.	
	ल	ली	को	ली	को	को	ल	ली	को	को	ल	ली	को	ल	ली	को	ली	को	को	ल	ली	को

ऊपर के विवरण में श्रुति-मान का जो क्रम नियत किया गया है, उस के बारे में एक बात विचारणीय है। यह

षड्जग्रामिक षड्ज का पर्दा मेरु से चौथी श्रुति पर है और त्रिश्रुति ऋषभ के पूर्व इस 'स्वर-साधारण' का पर्दा मेरु से छठी श्रुति पर है। यह पर्दा परंपरा से एक स्वर-स्थान के रूप में स्वीकृत चला आ रहा है और भरत ने 'स्वर-साधारण' के रूप में इस स्थान का विशेष उल्लेख किया है। ऐसी अवस्था में षड्जग्रामिक षड्ज से इस 'स्वर-साधारण' का द्विश्रुति अन्तराल $\frac{१६}{१५}$ सिद्ध होना ही चाहिए। तभी वीणा के मेरु से इस का षट्श्रुति का संवादात्मक अन्तराल $\frac{६}{५}$ सिद्ध होगा। मेरु से षड्ज का चतुःश्रुति अन्तराल $\frac{९}{८}$ और षड्ज से इस स्वर-साधारण का द्विश्रुति अन्तराल है $\frac{१६}{१५}$। इन दोनों को जोड़ने से ही $\frac{६}{५}$ हो सकता है $\frac{९}{८} \times \frac{१६}{१५} = \frac{६}{५}$। उसी प्रकार पंचम धैवत के बीच भी समझना चाहिए। श्रुतियों का जो क्रम ऊपर रखा गया है, उस में षड्ज-ऋषभ और पञ्चम-धैवत के त्रिश्रुति अन्तराल $\frac{१०}{९}$ को एक इकाई माना गया है। किन्तु इन त्रिश्रुति अन्तरालों के बीच में एक-एक द्विश्रुति स्वर भी विद्यमान है। आधुनिक स्वर-नामों के अनुसार यह मन्द्र कोमल धैवत और मध्य कोमल गान्धार का स्थान पाता है। मेरु के साथ तीसरे पर्दे का और षड्जग्रामिक मध्यम (आधुनिक षड्ज) के साथ नवें पर्दे का षट्श्रुति संवाद सिद्ध होना ही चाहिए। इस संवाद-सिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि इन दोनों 'स्वर-साधारण' के अन्तराल का मान $\frac{१६}{१५}$ हो। भरत की चतुःसारणा विधि के आधार पर षड्जग्रामिक श्रुति-क्रम नियत करने के जो प्रयत्न आज तक हुए हैं, उन में इन दो स्वरों की सिद्धि को लक्ष्य में नहीं लिया गया है। उस प्रचलित प्रक्रिया से भी विद्यार्थी अपरिचित न रहें इसलिए ऊपर उसी गणित-प्रक्रिया को प्रथम दिखा दिया गया है। उस प्रक्रिया के अनुसार ऊपर षड्ज- ऋषभ और पञ्चम-धैवत के अखण्ड अन्तराल $\frac{१०}{९}$ को एक साथ यानी एक इकाई मान कर सिद्ध किया गया है। इन त्रिश्रुति अन्तरालों के बीच में जिन दो द्विश्रुतिक स्वरस्थानों का अभी उल्लेख किया गया, उन्हें सिद्ध करने की उस प्रक्रिया में आवश्यकता नहीं समझी गई थी। इसलिए ये दो अन्तराल वहाँ सिद्ध नहीं हो पाए हैं। यथा :—

(चतुःसारणा के अवरोहि-क्रम से) त्रिश्रुति अन्तराल = कोमा + लीमा + ल० अ० यानी $\frac{८१}{८०} \times \frac{२५६}{२४३} \times \frac{२५}{२४} = \frac{१०}{९}$ इसी को आरोहि-क्रम में रख कर देखने से $\frac{२५}{२४} \times \frac{२५६}{२४३} \times \frac{८१}{८०} = \frac{१०}{९}$ अब इस त्रिश्रुति अन्तराल के बीच यदि प्रथम दो श्रुतियों को लेकर एक पृथक् स्वरान्तराल बनाएँ तो $\frac{२५}{२४} \times \frac{२५६}{२४३} = \frac{६४००}{५८३२}$ यह अन्तराल बनता है। ऊपर दिखाया जा चुका है कि द्विश्रुति स्वरान्तराल में ली + को रहता है तभी वह $\frac{१६}{१५}$ बनता है। इसलिए ऊपर के त्रिश्रुति अन्तराल के बीच में द्विश्रुति स्वरान्तराल सिद्ध करने के लिए श्रुतियों का निम्नलिखित क्रम अपेक्षित है :—

ली + को + ल० अ० यानी $\frac{२५६}{२४३} \times \frac{८१}{८०} \times \frac{२५}{२४} = \frac{१०}{९}$ त्रिश्रुति अन्तराल $\frac{१०}{९}$ तो इस क्रम से भी अविकल रहता है, किन्तु इससे त्रिश्रुति अन्तराल के आरम्भ में $\frac{१६}{१५}$ भी बन जाता है। त्रिश्रुति अन्तराल में से द्विश्रुति अन्तराल घटा देने से $\frac{१०}{९} \div \frac{१६}{१५} = \frac{१०}{९} \times \frac{१५}{१६} = \frac{२५}{२४}$ यह तीसरी श्रुति का मान निकल आता है।

इस श्रुति-क्रम से षड्ज-ऋषभ और पंचम धैवत के अन्तरालों के बीच स्वर साधारण का द्विश्रुतिक अन्तराल भी सिद्ध हो जाता है और मेरु से तथा षड्जग्रामिक मध्यम से इन दोनों स्वर-साधारणों का षट्श्रुति संवादात्मक अन्तराल $\frac{६}{५}$ भी प्राप्त होता है।

'प्रणव-भारती' में पृ० २१७ पर षड्जग्राम के श्रुति-क्रम के आन्दोलन प्रमाण सहित जो सारिणी दी गई है, उसमें भी षड्ज-ऋषभ और पंचम धैवत के त्रिश्रुति अन्तरालों को समग्र रूप से ही लिया गया है, बीच के दो स्वर-साधारणों की सिद्धि की वहाँ अपेक्षा नहीं रखी गई थी, इसलिए प्रस्तुत विवरण के अनुसार षड्जग्रामिक श्रुति-क्रम की सारिणी यहाँ पुनः दी जा रही है। त्रिश्रुतिक अन्तरालों के बीच में जिस भरतोक्त विशेष 'स्वर-साधारण' का नवीन उल्लेख ऊपर किया गया है, उसकी भी सिद्धि इस सारिणी में प्राप्त होगी।

ध्यान रहे कि त्रिश्रुतिक अन्तराल में जो श्रुति-क्रम अभी नियत किया गया, उसके अनुसार ऋषभ-धैवत का प्रथम अपकर्ष कोमा न होकर लघु अर्धस्वर होगा, दूसरा अपकर्ष लीमा न होकर कोमा होगा और तीसरा अपकर्ष लघु अर्धस्वर न होकर लीमा होगा।

षड्जग्राम का श्रुति-क्रम
(छन्दोवती से छन्दोवती तक)

श्रुति-संख्या और नाम	श्रुत्यन्तरों का क्रम	श्रुत्यन्तरों का गुणोत्तर प्रमाण	आन्दोलन प्रमाण	षड्जग्राम के स्वर-स्थान	श्रुतियों का परस्पर संवाद-सम्बन्ध	स – प भाव से संवादी श्रुतियाँ
१. तीव्रा	कोमा	$\frac{८१}{८०}$	२१६		$\frac{३२४}{१} \times \frac{१}{२१६} = \frac{३}{२}$	१४. क्षिती
२. कुमुद्वती	लघु अर्ध॰	$\frac{२५}{२४}$	२२५	का. निषाद	$\frac{६७५}{२} \times \frac{१}{२२५} = \frac{३}{२}$	१५. रक्ता
३. मन्दा	लीमा	$\frac{२५६}{२४३}$	२३७$\frac{१}{२७}$		$\frac{३२००}{९} \times \frac{२७}{६४००} = \frac{३}{२}$	१६. संदीपनी
४. छन्दोवती	कोमा	$\frac{८१}{८०}$	२४०	षड्ज	$\frac{३६०}{१} \times \frac{१}{२४०} = \frac{३}{२}$	१७. आलापिनी
५. दयावती	लीमा	$\frac{२५६}{२४३}$	२५२$\frac{६८}{८१}$		$\frac{१०२४०}{२७} \times \frac{८१}{२०४८०} = \frac{३}{२}$	१८. मदन्ती
६. रञ्जनी	कोमा	$\frac{८१}{८०}$	२५६	स्वर-साधारण	$\frac{३८४}{१} \times \frac{१}{२५६} = \frac{३}{२}$	१९. रोहिणी
७. रक्तिका	लघु अर्ध॰	$\frac{२५}{२४}$	२६६$\frac{२}{३}$	ऋषभ	$\frac{४००}{१} \times \frac{३}{८००} = \frac{३}{२}$	२०. रम्या
८. रौद्री	लीमा	$\frac{२५६}{२४३}$	२८०$\frac{६८०}{७२९}$		$\frac{१०२४००}{२४३} \times \frac{७२९}{२०४८००} = \frac{३}{२}$	२१. उग्रा
९. क्रोधा	कोमा	$\frac{८१}{८०}$	२८४$\frac{४}{९}$	गान्धार	$\frac{१२८०}{३} \times \frac{९}{२५६०} = \frac{३}{२}$	२२. क्षोभिणी
१०. वज्रिका	कोमा	$\frac{८१}{८०}$	२८८		$\frac{४३२}{१} \times \frac{१}{२८८} = \frac{३}{२}$	१. तीव्रा[1]
११. प्रसारिणी	लघु अर्ध॰	$\frac{२५}{२४}$	३००	अन्तर गां॰	$\frac{४५०}{१} \times \frac{१}{३००} = \frac{३}{२}$	२. कुमुद्वती
१२. प्रीति	लीमा	$\frac{२५६}{२४३}$	३१६$\frac{४}{८१}$		$\frac{१२८००}{२७} \times \frac{८१}{२५६००} = \frac{३}{२}$	३. मन्दा
१३. मार्जनी	कोमा	$\frac{८१}{८०}$	३२०	मध्यम[2]	$\frac{४८०}{१} \times \frac{१}{३२०} = \frac{३}{२}$	४. छन्दोवती
१४. क्षिति	कोमा	$\frac{८१}{८०}$	३२४		$\frac{३२४}{१} \times \frac{१}{२१६} = \frac{३}{२}$	१. तीव्रा
१५. रक्ता	लघु अर्ध॰	$\frac{२५}{२४}$	३३७$\frac{१}{२}$		$\frac{६७५}{२} \times \frac{१}{२२५} = \frac{३}{२}$	२. कुमुद्वती
१६. सन्दीपनी	लीमा	$\frac{२५६}{२४३}$	३५५$\frac{५}{९}$		$\frac{३२००}{९} \times \frac{२७}{६४००} = \frac{३}{२}$	३. मन्दा
१७. आलापिनी	कोमा	$\frac{८१}{८०}$	३६०	पञ्चम	$\frac{३६०}{१} \times \frac{१}{२४०} = \frac{३}{२}$	४. छन्दोवती
१८. मदन्ती	लीमा	$\frac{२५६}{२४३}$	३७९$\frac{७}{२७}$		$\frac{१०२४०}{२७} \times \frac{८१}{२०४८०} = \frac{३}{२}$	५. दयावती
१९. रोहिणी	कोमा	$\frac{८१}{८०}$	३८४	स्वर-साधारण	$\frac{३८४}{१} \times \frac{१}{२५६} = \frac{३}{२}$	६. रञ्जनी
२०. रम्या	लघु अर्ध॰	$\frac{२५}{२४}$	४००	धैवत	$\frac{४००}{१} \times \frac{३}{८००} = \frac{३}{२}$	७. रक्तिका
२१. उग्रा	लीमा	$\frac{२५६}{२४३}$	४२१$\frac{९७}{२४३}$		$\frac{१०२४००}{२४३} \times \frac{७२९}{२०४८००} = \frac{३}{२}$	८. रौद्री
२२. क्षोभिणी	कोमा	$\frac{८१}{८०}$	४२६$\frac{२}{३}$	निषाद	$\frac{१२८०}{३} \times \frac{९}{२५६०} = \frac{३}{२}$	९. क्रोधा
१. तीव्रा	कोमा	$\frac{८१}{८०}$	४३२		$\frac{४३२}{१} \times \frac{१}{२८८} = \frac{३}{२}$	१०. वज्रिका
२. कुमुद्वती	लघु अर्ध॰	$\frac{२५}{२४}$	४५०	का॰ निषाद	$\frac{४५०}{१} \times \frac{१}{३००} = \frac{३}{२}$	११. प्रसारिणी
३. मन्दा	लीमा	$\frac{२५६}{२४३}$	४७४$\frac{२}{२७}$		$\frac{१२८००}{२७} \times \frac{८१}{२५६००} = \frac{३}{२}$	१२. प्रीति
४. छन्दोवती	कोमा	$\frac{८१}{८०}$	४८०	षड्ज	$\frac{४८०}{१} \times \frac{१}{३२०} = \frac{३}{२}$	१३. मार्जनी

१. यहाँ पर तीव्रा से लेकर छन्दोवती तक क्रमशः जो चार श्रुतियाँ दिखाई गई हैं, वे सप्तक के १२क तार षड्ज की श्रुतियाँ हैं। और इसके बाद ही पुनः जो तीव्रादिक चार श्रुतियाँ दिखाई गई हैं, वे सप्तक के प्रारम्भक षड्ज की श्रुतियाँ हैं, क्योंकि वहाँ से अवरोह-क्रम से गिनाई करके संवाद दिखाया गया है।

२. मध्यम से तार षड्ज का संवाद जाचने के बाद एक सप्तक की मर्यादा पूर्ण हो आती है। इसलिये मध्यम से बाद वाली श्रुतियों का एक ही सप्तक में संवाद जाँचना संभव नहीं है। अतः मध्यम के बाद अवरोह गति से गिनाई करके प्रत्येक श्रुति के साथ उसकी तेरहवीं श्रुति का संवाद दिखाया गया है।

शुद्ध-विकृत स्वर

भारतीय (हिन्दुस्तानी) शुद्ध स्वर-सप्तक

हम जानते हैं कि आज हमारे संगीत में स्वरों के शुद्ध और विकृत ऐसे दो भेद माने जाते हैं।

भरतादि प्राचीन आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में इन भेदों को स्थान नहीं दिया है। गान-वादन की क्रिया जिन स्वरों से होती थी, उन्हें केवल स्वर संज्ञा दी गई है, न वे शुद्ध हैं न विकृत। वे केवल स्वर हैं। स्वर ब्रह्म है। और ब्रह्म निर्विकार है। इसलिए निर्विकारी स्वर-ब्रह्म को शुद्ध या विकृत कहना उचित नहीं है; संभवतः इसीलिए भरतादिक मुनियों ने स्वरों के सूक्ष्म अन्तराल प्रयोगसिद्ध होने पर भी उनके लिए अन्य नामाभिधान देना आवश्यक नहीं माना होगा।

भरत ने दो ग्रामों के सप्त स्वरों के अतिरिक्त केवल दो प्रकार के स्वर-साधारण का ही उल्लेख किया है। उन दो प्रकार के स्वर-साधारण से उन्हें सभी सूक्ष्म स्वरान्तरालों की उपलब्धि हो जाती थी। इसलिए प्राचीनों को शुद्ध-विकृत के भेद में उलझने की आवश्यकता ही नहीं थी।

यहाँ यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि तब फिर स्वरों का यह शुद्ध-विकृत नामाभिधान कब हुआ ? किस ने किया ? इसके संबन्ध में अब तक यही मान्यता बनी हुई है कि इन शुद्ध विकृत नामों के आद्य प्रवर्तक निःशङ्क शार्ङ्गदेव ही हैं। जो हो, इसके संबन्ध में ऐतिहासिक विवेचना को यहाँ अवकाश नहीं है। फिर भी यहाँ इतना जान लेना पर्याप्त होगा कि मध्ययुगीय ग्रन्थकारों ने शार्ङ्गदेव प्रवर्तित परंपरा को ही आधार मान कर शुद्ध-विकृत स्वरों की कल्पना की है और इन कल्पित स्वरों के लिए भिन्न-भिन्न नाम दिए हैं। इन नामों में से दक्षिण के अतिरिक्त सारे भारत में कोमल, अतिकोमल, तीव्र, तीव्रतर इत्यादि रूप प्रचार में रूढ़ हो गए हैं। यहाँ यह कह देना नितान्त आवश्यक है कि शार्ङ्गदेव ने भरत के षड्जग्रामिक स्वरों को ही शुद्ध स्वर माना है और उन्हीं स्वरों की अपेक्षा अन्य अन्तरालों को विकृत नाम से अभिहित किया है।

भरत के षड्जग्राम के साथ 'शुद्ध' संज्ञा ग्रन्थों में जुड़ी होने में यह प्रश्न होता है कि क्या 'शुद्ध' नामाभिधान के काल में सचमुच षड्जग्राम ही क्रियागत 'शुद्ध स्वर सप्तक' रहा होगा और क्या भरत को (शुद्ध नामाभिधान न करने पर भी) षड्जग्राम ही क्रियागत 'शुद्ध स्वर-सप्तक' के रूप में अभिप्रेत था ? इसका स्पष्ट उत्तर है—"नहीं", क्योंकि हम मूर्च्छना-प्रकरण में (पृ० ६८ पर) देख ही चुके हैं कि स्वयं भरत को षड्जग्राम का षड्ज नहीं, अपितु मध्यम ही प्रयोग में स्वरित के रूप में अभिप्रेत था। मध्यम को स्वरित का स्थान देने के कारण ही उसे अविलोपी, अविनाशी, सब स्वरों में प्रवर इत्यादि विशेषण लगाए गए हैं। यथा :—

मध्यमस्य विनाशस्तु कर्तव्यो न कदाचन।
सर्वस्वराणां प्रवरो ह्यविनाशी तु मध्यमः॥
गान्धर्वकल्पेऽभिमतः सामगैश्च महर्षिभिः।

(ना० शा० २८।)

ऊपर उद्धृत वचन से यह स्पष्ट है कि भरत ने अपने पूर्वकाल से प्रचलित परंपरा के आधार पर षड्जग्रामिक

मध्यम को स्वरित का स्थान दिया है। वही भरतोक्त परंपरा आज तक दक्षिण को छोड़कर समस्त भारत में अखण्ड रूप से चली आई है। उसी षड्जग्रामिक मध्यम से हमारे आज के शुद्ध स्वर सप्तक का निकटतम सम्बन्ध है। यथा :—

षड्जग्रामिक मध्यम की मूर्च्छना— म – प – ध – नि – सा – रि – ग – म
– ४ – ३ – २ – ४ – ३ – २ – ४ –

मध्यम को षड्ज मानने से प्राप्त स्वरावलि—सा – रि – ग – म – प – ध – नि – सा
– ४ – ३ – २ – ४ – ३ – २ – ४ –

यह स्वरावलि आधुनिक कोमल निषाद युक्त और शुद्ध निषाद रहित खमाज की है। बिलावल की तुलना में केवल निषाद की ही अपेक्षा से यह स्वरावलि भिन्न है। कोमल निषाद के स्थान पर इसमें शुद्ध निषाद का प्रयोग होते ही बिलावल का पूर्ण रूप बन जाएगा। मध्यम से मध्यम तक की इस मूर्च्छना में गान्धार का जो स्थान आया है, उस का मूर्च्छना के षड्ज से वही अन्तराल है जो मूल षड्जग्राम में अन्तर गान्धार का है। उत्तरांग में उस गान्धार के साथ संवाद करने वाला आधुनिक शुद्ध निषाद संवाद-दृष्टि से स्वाभाविकरीत्या आ जाता है और हमारे आधुनिक शुद्ध सप्तक को पूर्ण करता है।

यहाँ यह भी स्मरणीय है कि षड्जग्रामिक मध्यम ही मध्यमग्राम में निषाद का स्थान पाता है। तदनुसार वीणा पर हमारे आधुनिक षड्ज को यदि मध्यमग्रामिक निषाद मान कर मध्यमग्राम की नैषादी मूर्च्छना चलाई जाए तो हमें अपने बिलावल के स्वर अविकल रूप से मिल जाते हैं—

मध्यमग्रामिक निषाद की मूर्च्छना— नि – सा – रि – ग – म – प – ध – नि
– ४ – ३ – २ – ४ – ३ – ४ – २ –

निषाद को षड्ज मानने से प्राप्त स्वरावलि— सा – रि – ग – म – प – ध – नि – सा
– ४ – ३ – २ – ४ – ३ – ४ – २ –

इस प्रकार षड्जग्रामिक मध्यम की उत्तर-मन्द्रा मूर्च्छना और मध्यमग्रामिक निषाद की मार्गी मूर्च्छना, ये दोनों एक ही स्थान की द्योतक हो कर हमारे आधुनिक बिलावल को शुद्ध स्वरावलि से पूर्ण और निरंतर संबन्ध स्थापित किये हुए हैं। इस से यह सिद्ध है कि हमारे संगीत में षड्जग्राम और मध्यमग्राम दोनों ही पूर्ण रूप से जीवित हैं। पूर्व, पश्चिम और उत्तर भारत में यही बिलावल सर्वानुमति से शुद्ध स्वर सप्तक के रूप में स्वीकृत है। तो यह निर्विवाद सिद्ध है कि दक्षिणेतर भारत का परंपराप्राप्त शुद्ध स्वर-सप्तक वही है जो षड्जग्राम के मध्यम और मध्यम-ग्राम के निषाद से उद्भूत है। षड्जग्रामिक षड्ज से संभूत काफी-सदृश स्वरावलि किसी काल में भी शुद्ध स्वर सप्तक के रूप में स्वीकृत या प्रचलित नहीं थी।

इतनी स्पष्टता हो चुकने के बाद इस संबन्ध में तीन छोटे से प्रश्न शेष रह जाते हैं और वे इस प्रकार हैं :—

(१) यदि स्वरित को षड्ज की संज्ञा देना ही अधिक व्यवहार उपयोगी था तो भरत ने उस स्थान को 'मध्यम' क्यों कहा, षड्ज ही क्यों न कह दिया ?

(२) भरत के 'मध्यम' को षड्ज कब से, कैसे और क्यों कहा जाने लगा ?

(३) संगीत के शास्त्र ग्रन्थों में बिलावल को शुद्ध स्वर-सप्तक के रूप में मान्यता कब प्राप्त हुई ?

(१) प्रथम प्रश्न का उत्तर यह है कि षड्जग्राम की मौलिक स्वरावलि का वीणा पर आरंभ-स्थान कहाँ है, यह तथ्य लोगों की दृष्टि से ओझल न हो जाए इसीलिए भरत ने स्वरित को षड्ज संज्ञा न देकर मध्यम संज्ञा दी।

वीणा-वादन में तीन स्थानों (मन्द्र, मध्य, तार) का प्रयोग सुविधा से कर सकने के लिए मध्य सप्तक का जो आरंभस्थान परंपराप्राप्त था, उस स्थान को यानी स्वरित को 'मध्यम' मान कर चलने से 'मगरेसा' यों अवरोहिक्रम से वीणा पर षड्ज का जो स्थान आता है, वही षड्जग्राम का मूल आरंभस्थान है। भरत की स्वरित की 'मध्यम' संज्ञा से

यही शाब्दीकरण अभिप्रेत था और इसीलिए उन्हीं ने स्वरित को षड्ज न कह कर मध्यम कहा है। यहाँ एक बात अवश्य स्मरणीय है कि षड्ज-पंचम-संवाद और षड्ज-मध्यम-संवाद इन दो मुख्य संवादों के आधार पर ही प्राचीनों ने षड्जग्राम और मध्यमग्राम इन दो ग्रामों की रचना की थी। मूर्छनादि की सिद्धि के लिए इन दोनों मौलिक स्वरावलियों को आधार मानना ही उन का प्रयोजन था, न कि क्रियागत संगीत में इनका प्रयोग। आज हम प्रायोगिक शुद्ध स्वर सतक को जिस रूप में समझते हैं और क्रिया तथा शास्त्र में उसे जो स्थान देते हैं वह स्थान प्राचीनों को 'ग्राम' की मौलिक स्वरावलियों के लिए कभी भी अभिप्रेत नहीं था।

(२) दूसरे प्रश्न का उत्तर यह है कि जैसे-जैसे षड्जग्राम की मौलिक स्वरावलि लोगों के ध्यान से ओझल होती गई, वैसे-वैसे ही स्वरित के लिए 'मध्यम' संज्ञा की सार्थकता क्षीण होती गई और धीरे२षड्ज संज्ञा ने उस का स्थान ले लिया।

(३) तीसरे प्रश्न पर विचार करते समय यह स्मरणीय है कि 'शुद्ध' संज्ञा के जन्म के साथ ही उसका संबन्ध षड्जग्राम से जोड़ दिया गया था। शार्ङ्गदेव ने यह जो परंपरा चलाई, उस का सभी मध्ययुग के ग्रन्थकारों ने, चाहे वे 'उत्तर' के रहे हों या दक्षिण के, गतानुगतिक भाव से अनुसरण किया। इसलिए ग्रन्थों में शताब्दियों तक षड्जग्राम के ही साथ 'शुद्ध' विशेषण जुड़ा रहा। ऐसा होने पर भी दक्षिणेतर संपूर्ण भारत में क्रियात्मक संगीत में तो भरत- परंपरा ही अखण्ड रूप से प्रचलित रही। किन्तु, बिलावल की स्वरावलि को शुद्ध स्वर सतक के रूप में स्थान क्रमशः अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में 'संगीतसार' (लेखक जयपुर से महाराज प्रतापसिंह देव) नामक हिन्दी ग्रन्थ में और 'नग़माते आसफ़ी' (लेखक-पटना के मुहम्मद रज़ा) नाम के फ़ारसी ग्रन्थ में दिया गया। अस्तु।

बिलावल की स्वरावलि का भरत- परंपरा के साथ अविच्छिन्न संबन्ध हम ने देख लिया। इस स्वरावलि के 'शुद्ध' विशेषण की सार्थकता एक अन्य दृष्टि से भी समझ लेना उचित होगा। यथाः—

स्वरों की 'शुद्ध' संज्ञा के दो पहलू हैं—एक व्यावहारिक और दूसरा सैद्धान्तिक। व्यावहारिक पक्ष में 'शुद्ध' संज्ञा का यही तात्पर्य है कि जिस स्वर-समूह को शुद्ध मान लिया जाता है, उसी की अपेक्षा से अन्य स्वर-स्थानों को 'विकृत' कहा जाता है। सैद्धान्तिक पक्ष में शुद्ध संज्ञा का तात्पर्य यह है कि जिस स्वरावलि को शुद्ध माना जाए, उस में दो गुण अवश्य हों—(१) वह 'प्राकृत' या स्वाभाविक हो और (२) वह सुसाध्य या सुगम हो। 'प्राकृत' या स्वाभाविक से यह तात्पर्य है कि शिक्षा, अभ्यास या संस्कार के बिना जो सहज ही प्रयोग-साध्य हो। ग्राम्य-संगीत या लोक-संगीत में भी जो अनायास प्रयुक्त हो, वही सुसाध्य या सुगम स्वर समूह 'शुद्ध' स्वर-सतक कहला सकता है। विद्यार्थी जानते हैं कि संगीत की शिक्षा में 'शुद्ध' स्वरावलि को ही प्रथम दिया स्थान जाता है। 'शुद्ध' स्वर स्थानों के आधार पर ही बाद में 'विकृत' की शिक्षा दी जाती है। इसलिये 'शुद्ध' स्वर-सतक में सुसाध्यता का रहना अनिवार्य है। हम जानते हैं कि तोडी, मारवा, पूर्वी जैसी अभ्यास से कष्टसाध्य स्वरावलियों को अनुभवी गुरुजन कभी भी शिक्षा में प्रथम स्थान नहीं देते हैं। स्वाभाविकता और सुसाध्यता इन दोनों गुणों में संवादात्मकता अन्तर्निहित है। जो स्वरावलि स्वाभाविक होगी, सुसाध्य होगी, उस का संवादात्मक होना सहज सिद्ध है, क्योंकि संवाद के बिना स्वाभाविकता और सुसाध्यता असंभव है। इसलिए 'संवादात्मकता' का एक पृथक् गुण के रूप में उल्लेख यहाँ आवश्यक नहीं समझा गया है।

'शुद्ध' संज्ञा के ऊपर लिखे व्यावहारिक और सैद्धान्तिक पक्ष का समन्वय बिलावल में उपलब्ध होता है, क्योंकि यह स्वरावलि पूर्ण-रूप से प्राकृतिक है।

पश्चिम में जिसे natural scale या प्राकृतिक ग्राम माना जाता है, वह हमारे बिलावल के साथ एकरूप है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि हमारी शुद्ध स्वर-व्यवस्था में त्रिश्रुति धैवत ही प्रयोगसम्मत है, चतुःश्रुति नहीं। चतुःश्रुति धैवत तो संवाददृष्टि से तभी प्रयोगसिद्ध हो सकता है जब कि पर्दे वाले तन्तु-वाद्यों पर मुक्त तार को षड्ज मान कर चला जाए, अन्यथा कदापि नहीं। ध्यान रहे कि हम वीणा पर मुक्त तार को षड्ज मान कर नहीं चलते हैं, अपितु षड्जग्रामिक

मध्यम को ही षड्ज मानने का हमारे यहाँ भरतकालिक परंपरा से व्यवहार चला आया है। इसलिए षड्ग्रामिक त्रिश्रुति ऋषभ का पर्दा ही धैवत का स्थान पाता है। तद्वत् तानपुरे पर गानक्रिया करते समय भी सभी गुणिजन से त्रिश्रुति धैवत का ही स्वाभाविकरीत्या प्रयोग होता है। यह स्वभाविक इसलिए है कि षड्ज से उस धैवत का षट्श्रुति संवाद है और पंचम से उद्भूत स्वयंभू गान्धार के साथ उसका नव-श्रुति संवाद है। इसीलिए अनायास संवाद तत्त्व के प्राधान्य के कारण त्रिश्रुति धैवत का ही प्रयोग होता चला आया है। यहाँ कोई ऐसा तर्क कर सकते हैं कि धैवत के त्रिश्रुतिक रहने से तो हमें रि-ध संवाद प्राप्त नहीं होगा। ऐसा तर्क करने वालों को यदि संवाद प्रिय है और यदि ये क्रियाकुशल हैं तो वे स्वयं विचार से अपने तर्क का उत्तर दे सकते हैं कि ऋषभ धैवत संवाद होते ही धैवत का गान्धार और षड्ज के साथ का संवाद टूट जाएगा जो कभी भी इष्ट नहीं है। भारत के गुणिजन जाने अनजाने इस त्रिश्रुति धैवत का ही प्रयोग करते हैं और यही सर्वमान्य है, चतुःश्रुति नहीं। अस्तु। बिलावल में षड्ज-पंचम संवाद और षड्ज-मध्यम संवाद का सम्मिलित रूप पाया जाता है। वह निम्नलिखित है। यथाः—

षड्ज-पंचम-भाव से संवादी जोड़ियाँ	षड्ज-मध्यम भाव से संवादी जोड़ियाँ
सा – प ग – नि म – सां	सा – म रि – प ग – ध प – सां

इस प्रकार भरत के षड्जग्राम और मध्यमग्राम—ये दोनों ही अपने मुख्य संवादों के रूप में हमारे बिलावल में जीवित हैं और इस 'शुद्ध' स्वर-सप्तक की संवादात्मकता असंदिग्ध है। पश्चिम के 'प्राकृतिक ग्राम' के साथ बिलावल की जो एकरूपता हम देख चुके हैं, उस से इस की स्वाभाविकता और 'प्राकृतत्व' की पुष्टि होती है। संसार की प्रायः सभी प्राचीन और नवीन संगीत-पद्धतियों में इस 'प्राकृतिक ग्राम' का अस्तित्व पाया जाता है। शिक्षा और संस्कार के बिना यही स्वरावलि सहज रूप से मनुष्य के कंठ से निकलती है। इसलिए यह वास्तव में 'प्राकृत' या स्वाभाविक है। इसके साथ ही इसकी सुसाध्यता भी सर्वमान्य है। 'प्रकृति' सर्वत्र एक है, देश काल के बन्धनों से वह अतीत है। इसलिए इस शुद्ध स्वर सप्तक की सार्वभौमता निर्विवाद है।

हमारे इस शुद्ध स्वर सप्तक पर विदेशी प्रभाव है, यह भ्रान्त धारणा आज सामान्य रूप से प्रचार में है। इस धारणा के दो मूल कारण हो सकते हैं :—

(१) भरतादि का षड्जग्राम ही उस काल का शुद्ध स्वर सप्तक था, ऐसा भूल से मान लेना। इस भ्रम का निरसन हम ऊपर कर ही चुके हैं, अतः उसके साथ ही विदेशीय प्रभाव की कल्पना भी निराधार प्रमाणित हो जाती है। मध्ययुग के आरम्भ में मुसलमानी शासन-काल में यह शुद्ध स्वर सप्तक प्रचलित हो गया होगा, ऐसे अनुमान को भी अब कोई अवकाश नहीं रह जाता।

(२) हमारे बिलावल की स्वरावलि की पश्चिम के प्राकृतिक ग्राम के साथ और अरब फ़ारस के शुद्ध ग्राम के साथ 'एकरूपता' पाया जाना और यूनान के पायथोगोरस के 'ग्राम' के साथ इसका सादृश्य (एकरूपता नहीं) दिखाई देना। इस कारण से भी विदेशीय प्रभाव की कल्पना की गई है। किन्तु 'प्रकृति' की सार्वभौमता के जिस सिद्धान्त का हम ऊपर उल्लेख कर आए हैं, उससे यह भ्रान्त कल्पना भी निर्मूल है, निराधार है, यह कहने की अब आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार 'उत्तर भारतीय' संगीत के शुद्ध स्वर सप्तक को हमने एक ओर स्वाभाविकता और सुगमता की वैज्ञानिक कसौटी पर परखा और दूसरी ओर भरत परंपरा के साथ उसका अविच्छिन्न सम्बन्ध देखा। इस पूरी विवेचना से जो मुख्य निष्कर्ष निकले वे संक्षेप में निम्नोक्त हैं :—

(१) वीणा पर आज जो स्थान स्वरित या षड्ज माना जाता है, वह षड्जग्राम का मध्यम है और मध्यमग्राम का निषाद है। उसे मध्यम कह कर ही भरत ने उसे अविनाशी, अविलोपी आदि विशेषण लगाए हैं। इन विशेषणों से ही यह सिद्ध है कि वही स्थान भरत काल में भी स्वरित माना जाता था। षड्जग्रामिक मध्यम को ही मध्यमग्रामिक निषाद मान कर चलने से बिलावल के स्वर हूबहू मिल जाते हैं।

(२) प्राचीनों के दोनों ग्रामों के साथ बिलावल का यह अटूट सम्बन्ध विदेशी प्रभाव के अनुमान को पूर्णतया निराधार सिद्ध करता है। भरत का काफी-सदृश षड्जग्राम बिलावल में कैसे परिवर्तित हो गया यह प्रश्न ही निरर्थक है, नासमझी का परिचायक है और भ्रान्त धारणाओं का सर्जक है।

(३) शुद्ध संज्ञा के जन्म के साथ ही षड्जग्राम के साथ उसका सम्बन्ध जुड़ जाना एक ऐसी घटना थी जिसके दुष्परिणाम भारतीय संगीत शास्त्र में सुदीर्घ काल तक व्याप्त रहे। इसी घटना ने उत्तर तथा दक्षिण के सभी मध्ययुगीय ग्रन्थकारों की स्वर-व्यवस्था पर ऐसा जकड़ने वाला प्रभाव डाला कि शताब्दियों तक कोई भी ग्रन्थकार षड्जग्राम को 'शुद्ध' मानने के गतानुगतिक भाव से स्वतन्त्र होकर विचार न कर सके अथवा अपने स्वतन्त्र विचारों को व्यक्त न कर सके।

(४) एकतारे पर, तानपूरे पर या किसी भी तन्तुवाद्य पर मुक्त तार के नाद के साथ स्वर मिला कर गाने से जो संवादसिद्ध प्राकृतिक स्वर सहज रूप से प्रयोग में आते हैं, उनके साथ हमारे शुद्ध स्वर सप्तक की पूर्ण एकरूपता है और इस प्रकार हमारे शुद्ध स्वरों को प्रकृति का सार्वकालिक और सार्वभौम साम्राज्य प्राप्त है।

कर्णाटकीय शुद्ध स्वर-सप्तक

शार्ङ्गदेव का अनुसरण करते हुए दक्षिण के ग्रन्थकारों ने षड्जग्राम को ही शुद्ध स्वर-समूह माना है। यह बात इसी से सिद्ध है कि उन्होंने शुद्ध स्वरों के सम्बन्ध में भरतोक्त ४ – ३ – २ – ४ – ४ – ३ – २ – वाली षड्जग्रामिक श्रुति-व्यवस्था का ही उल्लेख किया है, किन्तु वीणा के पर्दों पर इन 'शुद्ध' स्वरों की स्थिति जिस प्रकार बताई गई है, वह वास्तविक षड्जग्राम से नितान्त भिन्न है। दक्षिण पद्धति के प्रमुख ग्रन्थकार रामामात्य हैं, अन्य प्रायः सभी ने उनका ही अनुसरण किया है। इसलिए केवल रामामात्य की ही स्वर-स्थापना को देख लेना यहाँ पर्याप्त होगा। निरूपण की सुविधा के लिए इस विषय को हम ने तीन भागों में विभक्त किया है। यथाः—

(१) षड्ज, पञ्चम और मध्यम में मिले हुए तारों के नीचे पर्दों पर स्थित नादों के पारस्परिक संवाद का रामामात्य द्वारा उल्लेख।

(२) पर्दों पर उन के कल्पित स्वर-नामों का उल्लेख, और

(३) उन कल्पित स्वर-नामों के अनुसार पर्दों के श्रुत्यन्तरों का अनुमान।

अब हम क्रमशः इन तीनों को ले लेते हैं।

(१) प्राचीन परंपरानुसार मन्द्र मध्यम, मन्द्र षड्ज, अनुमन्द्र पञ्चम और अनुमन्द्र षड्ज—इस क्रम से वीणा के चार तार मिलाए जाते हैं।[1] इन तारों के नीचे परंपरा-प्राप्त जो सारियाँ (पर्दे) रहती हैं, उन का परस्पर उलट-सुलट

---

[1] ध्यान रहे कि उत्तर और दक्षिण भारत में वीणा के तार मिलाने की पद्धति में कोई भेद नहीं है, अन्तर केवल दाएं-बाएं का है। दक्षिण भारत में बाज का तार वीणा के दक्षिण भाग में रहता है, और दक्षिणेतर भारत में वाम भाग में।

षड्ज-मध्यम-भाव से अथवा षड्ज-पंचम-भाव से संवाद स्वयंसिद्ध है। इसी संवाद के आधार पर उस ने इन पर्दों के नादों को 'स्वयम्भू' स्वर कहा है। स्वयम्भू विशेषण की सार्थकता की चर्चा यहाँ अस्थानीय है। किन्तु विशेष विचारणीय वस्तु यह है कि इन पर्दों पर स्थित स्वरों के जो नाम रामामात्य ने दिए हैं, वे नाम जिन श्रुत्यन्तरों के द्योतक हैं, वे श्रुत्यन्तर वास्तव में सारियों पर उपलब्ध होते हैं या नहीं।

(२) वीणा के चार तारों के नीचे छः सारियों पर जिस क्रम से रामामात्य ने स्वर-स्थान बताए हैं और उन स्वर-नामों के अनुसार जिन श्रुत्यन्तरों का अनुमान किया है, वे नीचे दी हुई सारिणी से स्पष्ट होंगे। (द्रष्टव्य स्वरमेल-कलानिधि—वीणा-प्रकरण २० - ४४)

		वीणा का दक्षिण भाग				वीणा का वाम भाग			
सारी संख्या	वास्तविक श्रुत्यन्तर	तन्त्री ४ पर स्वर स्थान	कल्पित श्रुत्यन्तर	तन्त्री ३ पर स्वर-स्थान	कल्पित श्रुत्यन्तर	तन्त्री २ पर स्वर-स्थान	कल्पित श्रुत्यन्तर	तन्त्री १ पर स्वर-स्थान	कल्पित श्रुत्यन्तर
० मेरु	०	मं० म०	(?)	मं० प०	(?)	अ० मं० पं०	(?)	अ० मं० प०	(?)
१	२	च्यु०पं०म०	२	शु० ऋ०	३	शु० धै०	३	शु० ऋ०	३
२	२	शु० पं०	२	शु० गां०	२	शु० नि०	२	शु० गां०	२
३	२	शु० धै०	३	सा० गां०	१	कै० नि०	१	सा० गां०	१
४	१	शु० नि०	२	च्यु०म०गां०	१	च्यु०प०नि०	१	च्यु०म०गां०	१
५	२	कै० नि०	१	शु० म०	२	शु० प०	२	शु० म०	२
६	२	च्यु०प०नि०	१	च्यु०पं०म०	२	शु० ऋ०	३	च्यु० पं० म०	२

सारिणी में दिए स्वरनामों के संकेतों का स्पष्टीकरण :—

मं० = मन्द्र, अ० मं० = अनुमन्द्र, म० = मध्यम, प० = षड्ज, पं० = पञ्चम, शु० = शुद्ध, च्यु० पं० म० = च्युत पञ्चम मध्यम, धै० = धैवत, कै० नि० = कैशिक निषाद, च्यु० प० नि० = च्युत षड्ज निषाद (काकली निषाद का नामान्तर),

ऋ० = ऋषभ, गां० = गान्धार, सा० गां० = साधारण गान्धार, च्यु० म० गां = च्युत मध्यम गान्धार (अन्तर गान्धार का नामान्तर) | वीणा पर ये स्वर-स्थान दिखाने के प्रकरण में रामामात्य ने कहा है—'एवं रत्नाकरप्रोक्तो मार्गोऽयं संप्रदर्शितः' इससे स्पष्ट है कि रामामात्य ने 'रत्नाकर' कार का अनुसरण करते हुए ही वीणा पर स्वर-स्थापना बताई है। इसलिए इस स्वर-स्थापना की विकलता का उत्तरदायित्व रामामात्य की अपेक्षा शार्ङ्गदेव पर ही अधिक है।[1] अस्तु।

ऊपर दिए हुए छहों पर्दों के वास्तविक श्रुत्यन्तर भी सारिणी में दिखाए गए हैं। उन पर्दों पर स्वयं कल्पित स्वर-स्थानों से जिन श्रुत्यन्तरों का रामामात्य ने अनुमान किया है, उनके साथ साथ वास्तविक श्रुत्यन्तरों को देखने से नीचे लिखी बातें स्पष्ट होती हैं :—

(क) शुद्ध ऋषभ धैवत का अन्तराल षड्जग्राम के अनुसार त्रिश्रुतिक ही बताया गया है, किन्तु इन दोनों स्वरों को जिन पर्दों पर स्थापित किया है, उनका अन्तराल त्रिश्रुतिक न होकर द्विश्रुतिक ही है। उस अन्तराल को त्रिश्रुतिक कह देने भर से अथवा सोमनाथ की भाँति उस अन्तराल के बीच दो श्रुतियों के नए पर्दे बाँध लेने का विधान देने मात्र से उस अन्तराल को त्रिश्रुतिक नहीं ही बनाया जा सकता। संवादसिद्ध अन्तरालों के संबन्ध में ऐसी तोड़मरोड़ नहीं ही चल सकती।

(ख) ऋषभ-धैवत के स्थान में विकलता आ जाने के कारण गान्धार-निषाद का स्थान भी यथाथ नहीं बन पाया है क्योंकि चतुःश्रुति ऋषभ-धैवत को ही पञ्चश्रुति गान्धार-निषाद मान लिया गया है।

(ग) 'सा', 'म', 'प', इन स्वरों में मिले हुए भिन्न तारों के नीचे एक ही पर्दे पर भिन्न २ श्रुत्यन्तर वाले स्वरों की कल्पना की गई है। भिन्न २ तारों के नीचे एक ही पर्दे पर स्वरस्थान तो अवश्य भिन्न हो जाते हैं, किन्तु एक ही पर्दे के श्रुत्यन्तर भला कैसे भिन्न हो सकते हैं? उदाहरण के लिए मध्यम वाले तार के नीचे दूसरे पर्दे पर पञ्चम की स्थिति बताई गई है, जो बिल्कुल यथार्थ है। पञ्चम का मध्यम से अन्तराल चतुःश्रुतिक ही है, यह सार्वभौम और सार्वकालिक रूप से शास्त्र-सम्मत है। किन्तु, आश्चर्य तो यह है कि उस पर्दे पर पञ्चम की स्थापना कर के उसका अन्तराल चतुःश्रुतिक स्वीकार कर लेने पर भी रामामात्य ने षड्ज के तार के नीचे उसी पर्दे पर षड्जग्रामिक पञ्चश्रुति गान्धार की स्थापना कर दी है। तद्वत् पञ्चम के तार के नीचे उसी पर्दे पर पञ्चश्रुति निषाद की अयथार्थ स्थापना की गई है।

एक दूसरा उदाहरण भी देख लें। मध्यम वाले तार के नीचे तीसरे पर्दे पर शुद्ध धैवत की स्थिति मानी गई है। वास्तव में उस पर्दे का अन्तराल द्विश्रुति ही है, त्रिश्रुति नहीं। षड्ज के तार के नीचे उसी तीसरे पर्दे पर साधारण गान्धार की स्थापना की गई है। षड्जग्रामिक पञ्चश्रुति गान्धार से इस साधारण गान्धार का एक ही श्रुति का अन्तराल है। यदि दूसरे पर्दे पर षड्ज ग्रामिक शुद्ध गान्धार मान लिया जाय जैसा कि रामामात्य ने किया है तो इस तीसरे पर्दे का अन्तराल एक ही श्रुति का होना चाहिए। तद्वत् पञ्चम के तार के नीचे इस पर्दे पर कैशिक निषाद की स्थापना की गई है, जिसका 'शुद्ध' निषाद से एक ही श्रुति का अन्तर होना चाहिये। इस प्रकार द्विश्रुति अन्तराल वाले तीसरे पर्दे का अन्तराल एक तार के नीचे त्रिश्रुतिक और दो तारों के नीचे एकश्रुतिक मान लिया गया है। इस प्रकार की असमंजसता प्रत्येक पर्दे के संबंध में विद्-

---

1. यहाँ यह उल्लेखनीय है कि शार्ङ्गदेव के आकर-ग्रन्थ का सब पर आतंक छाया रहा है। परिणामतः, उसके विषय-प्रतिपादन में कहीं असामंजस्य है, ऐसी कल्पना तक संभव नहीं हुई। हम प्रांजल भाव से यह स्वीकार करते हैं कि उस प्रभाव से हम भी पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाए थे। इसीलिए 'प्रणव-भारती' के पृ० १२४-२३ पर रामामात्य की स्वर-स्थापना की असंगति को स्पष्ट करते समय इस बात का ध्यान रखा गया था कि इस असंगति के प्रवर्तक के रूप में कहीं शार्ङ्गदेव दोष के भागी न बन जाएँ। किन्तु अब वह समय आ गया है जब कि हम अपने परिशीलन-संभूत यथार्थ दर्शन के निष्कर्ष निर्भीक भाव से प्रस्तुत करें।

मान हैं। विस्तार भय से सबका यहाँ उल्लेख नहीं किया गया है। ऊपर की सारिणी को सूक्ष्मता से देखने से ही इस तथ्य की सूचना हो जाएगी।

(घ) सा – म भाव और सा – प भाव से तीनों तारों के नीचे सभी पर्दों के संवाद का जो उल्लेख रामामात्य ने 'स्वयम्भू' स्वरों के सम्बन्ध में किया है, उस वास्तविक संवाद-संबंध के साथ इन कल्पित स्वर नामों का कोई सामंजस्य नहीं है। उदाहरण के लिए मध्यम के तार के नीचे दूसरे पर्दे पर पंचम की स्थिति है और षड्ज के तार के नीचे उसी पर्दे पर चतुःश्रुति ऋषभ स्थित है। इन दोनों में परस्पर संवाद है। किन्तु षड्ज के तार के नीचे उस पर्दे को रामामात्य ने पञ्चश्रुति गान्धार की संज्ञा दे दी है। पञ्चश्रुति गान्धार का पंचम के साथ संवाद असंभव है। इसलिए उस पर्दे को पंचश्रुति गान्धार की संज्ञा देने से रामामात्य का स्वयं बताया हुआ वास्तविक संवाद-सम्बन्ध बाधित हो जाता है।

ऊपर की विवेचना से यह स्पष्ट हुआ होगा कि भरतोक्त ४ – ३ – २ – ४ – ४ – ३ – २ श्रुति-व्यवस्था वाले षड्जग्रामिक स्वर, जिन्हें कि रामामात्य ने शार्ङ्गदेव का अनुसरण करते हुए शुद्ध मान लिया है, उनकी वीणा पर स्थापना रामामात्य की ऊपर लिखी विधि में नहीं हो हो पाई है।

रामामात्य की चलाई हुई परम्परा के अनुसार कल्पित षड्जग्रामिक स्वरों को ही दक्षिण भारत में आज भी शुद्ध स्वर सप्तक माना जाता है जो मुखारी या कनकांगी मेल के नाम से प्रसिद्ध है। इस मेल की रुद्र वीणापर जिस प्रकार स्थापना की गई है, वह अगले पृष्ठ ११२ पर दिए हुए चित्र से स्पष्ट होगा।

रामामात्य ने सर्वमान्य परम्परानुसार बाज के तार को मध्यम में ही मिलाने को कहा है। उस तार को मध्यम मान कर ही यदि कर्णाटक में व्यवहार चलता तो षड्ज का वही स्थान आता जो आज तक भारत में प्रयुक्त होता चला आया है। किन्तु आज दक्षिण भारत में इस तार को षड्ज ही मानने का व्यवहार है। तदनुसार इस चित्र में स्वर-स्थान दिखाए गए हैं।

चित्र को देखने से यह स्पष्ट होगा कि मुखारी मेल की स्वरावलि में भरतोक्त षड्जग्राम को किंचित् भी स्थान नहीं है, यद्यपि कर्णाटकीय ग्रन्थकारों का यह दावा है कि षड्जग्रामिक स्वर 'मुखारीमानभासक' हैं। वस्तुस्थिति तो यह है कि मुखारी या कनकांगी मेल में जिसे षड्जग्रामिक सारिगमपधनिसां मान लिया गया है वह वास्तव में सा – रि॒ – रि – म – प – ध॒ – ध – सां ही है। अस्तु।

इस प्रसङ्ग में दाक्षिणात्य ग्रन्थकारों द्वारा स्वरों के लिए वैकल्पिक संज्ञाओं (Alternative Names) का प्रयोग भी उल्लेखनीय है। उन्होंने गान्धार का वैकल्पिक नाम पञ्चश्रुति ऋषभ दिया है और निषाद का वैकल्पिक नाम पञ्चश्रुति धैवत दिया है। ये दोनों वैकल्पिक संज्ञाएँ भी यह सिद्ध करती हैं कि ऋषभ और धैवत के चतुःश्रुति अन्तर को ही उन लोगों ने पञ्चश्रुति अन्तर मान लिया था। पञ्चश्रुति 'रि' और पञ्चश्रुति 'ध' इन संज्ञाओं में श्रुत्यन्तर की जो भूल निहित है, उसे समझ कर आज दक्षिण में इन स्वर-स्थानों के लिए चतुःश्रुति 'रि' और चतुःश्रुति 'ध' इन नामों का प्रयोग किया जाने लगा है। आधुनिक दाक्षिणात्य विद्वानों का यह कर्तव्य है कि इस ग्रन्थस्थ inaccuracy (अशुद्धि) का स्पष्ट निरसन कर दें जिससे कि सत्य के अनुरोध से स्वीकृत व्यवहार को शास्त्र में स्थान मिल सके।

दक्षिण में स्वीकृत शुद्ध स्वरावलि का भरतोक्त स्वर-व्यवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं है यह हमने देखा। स्वाभाविकता और सुगमता की कसौटी पर भी यह स्वर-सप्तक खरा नहीं उतरता, क्योंकि इसके स्वरान्तराल अस्वाभाविक हैं और कष्टसाध्य हैं। इसके अतिरिक्त इसमें विवादी दोष भी भरा पड़ा है। विद्यार्थी जानते हैं कि दो श्रुति और पाँच श्रुति का अन्तर बहुत विवादी होता है। इस स्वरावलि में चार बार दो श्रुति का अन्तर आया है—सा – रे॒, रे॒ – रे, प – ध॒, ध॒ – ध में—और दो बार पाँच श्रुति का अन्तर मिलता है—रे – म और ध – सां में। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि कर्णाटक संगीत की शुद्ध स्वरावलि में न तो भरत-परम्परा की रक्षा हो पायी है, न यह सहज या प्राकृतिक है और न ही संवादसिद्ध है।

का दक्षिण भाग— —वीणा का वाम भाग
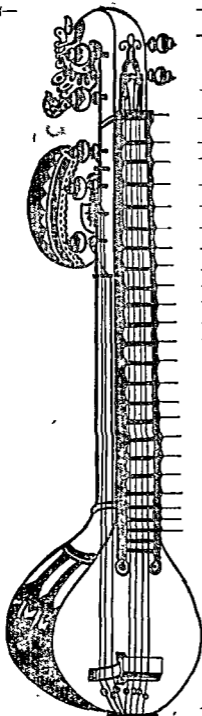
सारी-संख्या[1]	मुखारी मेल में कल्पित षड्जग्राम	कल्पित श्रुत्यन्तर	मेरु का षड्ज मानने से वास्तविक स्वर	वास्तविक श्रुत्यन्तर	वास्तविक[2] षड्जग्रामिक स्वर
— ० मेरु	सा	(?)	सा	०	नि
— १ ...	रि	३	रि॒	२	का. नि.
— २ ...	ग	२	रि	२	सा
— ३					
— ४					
— ५ ...	म	४	म	५	ग
— ६					
— ७ ...	प	४	प	४	म
— ८ ...	ध	३	ध॒	२	
— ९ ...	नि	२	ध	२	प
— १०					
— ११					
— १२...	सां	४	सां	५	नि

१. दक्षिण में वीणा के दक्षिण भाग में वाज का तार रहता है और तदनुसार वादन-व्यवहार होता है, किन्तु यहाँ सुविधा के लिये वाम-भाग में स्वर स्थान दिखाए गए हैं।

२. इस स्तम्भ में षड्जग्रामिक स्वर-सप्तक का पूर्ण रूप दिखाना प्रयोजन नहीं है, अपितु रामामात्य ने जिन स्वर-स्थानों पर षड्जग्राम की कल्पना की है, उन पर वास्तविक षड्जग्राम के स्वरों की स्थिति दिखाना मात्र ही उद्देश्य है।

विकृत-स्वर

हम पहले कह आए हैं कि भरत ने स्वर के लिए शुद्ध या विकृत संज्ञा का प्रयोग नहीं किया है। दो ग्रामों के सप्त स्वरों के साथ-साथ भरत ने दोनों ग्रामों के अन्तर काकली का उल्लेख किया है, यह सर्वविदित है। स्वर-साधारण से प्राप्त इन 'अन्तर' स्वरों के अतिरिक्त दोनों ग्रामों में एक अन्य स्वर-साधारण का भी भरत ने 'स्वर-विशेष' कह कर उल्लेख किया है। इसी को उन्होंने 'कैशिक' (केशाग्र-वत् सूक्ष्म) भी कहा है। दो ग्रामों के द्विविध स्वर-साधारण द्वारा वीणा पर हमारे परिचित सभी स्वर-स्थानों की सिद्धि प्राप्त हो जाती है, जो नीचे की सारिणी से स्पष्ट होगी। प्रस्तुत सारिणी में द्वैग्रामिक द्विविध स्वर-साधारण के साथ-साथ षड्जग्रामिक मध्यम को स्वरित मानने से प्राप्त स्वरावलि भी दिखाई गई है और इस पूरी भरतोक्त स्वर व्यवस्था में निम्नलिखित संवादसिद्ध स्वर-स्थानों की सिद्धि हमें प्राप्त होती है :—द्विश्रुति रि, त्रिश्रुति रि, चतुःश्रुति रि ; पञ्चश्रुति ग, षट्श्रुति ग, सप्तश्रुति ग, षट्श्रुति म ; त्रिश्रुति प, चतुःश्रुति प; द्विश्रुति ध, त्रिश्रुति ध, चतुःश्रुति ध; पञ्चश्रुति नि, षट्श्रुति नि, सप्तश्रुति नि।

अचलथाट के अनुसार सारी-संख्या	श्रुत्यन्तर	आधुनिक स्वर-नाम	षड्जग्रामिक स्वर	श्रुत्यन्तर की दृष्टि से षड्जग्रामिक स्वरों की अवस्था	मध्यमग्रामिक स्वर	श्रुत्यन्तर की दृष्टि से मध्यमग्रामिक स्वरों की अवस्था	षड्जग्रामिक मध्यम को षड्ज मानने से प्राप्त स्वरावलि
० मेरु	०	म	नि	पञ्चश्रुति नि	ग	पञ्चश्रुति ग	चतुःश्रुति म
१	२	तीव्रतर म.	का. नि.	सप्तश्रुति नि	अं० ग	सप्तश्रुति ग	तीव्रतर म
२	२	प	सा	सा	म	चतुःश्रुति म	चतुःश्रुति प
३ ४	२ १	को. ध शु. ध	स्वर साधारण रि	द्विश्रुति रि त्रिश्रुति रि	स्वर साधारण प	षट्श्रुति म त्रिश्रुति प	द्विश्रुति ध त्रिश्रुति ध
५	२	अतिको. नि	ग	पञ्चश्रुति ग			पञ्चश्रुति नि
६	२	शु. नि	अं. ग	सप्तश्रुति ग	ध	चतुःश्रुति ध	सप्तश्रुति नि
७	२	सा	म	चतुःश्रुति म	नि	षट्श्रुति नि	सा
८	२	को. रि			का० नि०	का० नि०	द्विश्रुति रि
९	२	शु. रि	प	चतुःश्रुति प	सा	सा	चतुःश्रुति रि
१० ११	२ १	को. ग शु. ग	स्वर साधारण ध	द्विश्रुति ध त्रिश्रुति ध	स्वर साधारण रि	द्विश्रुति रि त्रिश्रुति रि	षट्श्रुति ग सप्तश्रुति ग
१२	२	म	नि	पञ्चश्रुति नि	ग	पञ्चश्रुति ग	चतुःश्रुति म

इस सारिणी में अन्तर-काकली से अतिरिक्त जिस 'स्वर-साधारण' को स्थान दिया गया है, उस का स्पष्टीकरण आवश्यक है। भरत ने कहा है:—

स्वरसाधारणं द्विविधं द्वैग्रामिकत्वं कस्मात्? षड्जग्रामे षड्जसाधारणं मध्यमग्रामे मध्यम-साधारणं, साधारणोऽत्र स्वरविशेष इति स्वरसाधारणम्[1]। एवं मध्यमग्रामेऽपि साधारणत्वं, अस्य तु प्रयोगसौक्ष्म्यात् कैशिकमिति नाम निष्पद्यते।

(ना. शा. २८)

अर्थात्—स्वर-साधारण द्वैग्रामिक (होने से) द्विविध होता है। षड्जग्राम में षड्जसाधारण होता है और मध्यमग्राम में मध्यमसाधारण। यहाँ 'साधारण' से स्वरविशेष अभिप्रेत है, इसलिए यह स्वर-साधारण कहलाता है। इस प्रकार मध्यमग्राम में भी साधारणत्व होता है। प्रयोग की सूक्ष्मता के कारण इस 'स्वरसाधारण' का 'कैशिक' (केशाग्रवत् सूक्ष्म) नाम निष्पन्न होता है।

ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है कि भरत ने दो प्रकार का स्वर-साधारण बताया है, एक तो वह जिससे अन्तर गान्धार और काकली निषाद की सिद्धि होती है और जिसे अन्तर-स्वरता कहा गया है (इसे हम मूर्च्छना प्रकरण में पृ० ७५ पर देख चुके हैं) एवं दूसरा वह जिसे यहाँ 'स्वर-विशेष' कहा है। 'अन्तर स्वरता' वाला स्वर-साधारण दोनों ग्रामों में चतुःश्रुति अन्तराल वाले स्वरों के बीच बताया गया है, जो दोनों ग्रामों के अन्तर-काकली के रूप में सबको परिचित है। अन्य स्वर-साधारण के लिए भरत ने 'स्वर-विशेष' संज्ञा का प्रयोग किया है और इनकी केशाग्रवत् सूक्ष्मता के कारण इसे कैशिक नाम भी दिया है। हम जानते हैं कि सूक्ष्म से सूक्ष्म स्वरान्तर एक श्रुति का हो सकता है और ऐसे स्वरान्तर एक सप्तक में दो हैं जो परंपराप्राप्त वीणा के पर्दों पर स्थित हैं। मेरु से चौथा पर्दा अपने पूर्व वाले तीसरे पर्दे से एक श्रुति के अन्तर पर रहता है, तद्वत् मेरु से ११ वाँ पर्दा (अचल थाट के अनुसार) अपने पूर्व वाले १० वें पर्दे से एक श्रुति के अन्तर पर स्थित है। इन्हीं सूक्ष्म अन्तरालों को दिखाने के लिए भरत ने 'षड्जग्रामे षड्जसाधारणं, मध्यमग्रामे मध्यम-साधारणं' ऐसा कहा है। हम जानते हैं कि षड्जग्राम का षड्ज और मध्यमग्राम का मध्यम एक ही पर्दे पर स्थित हैं। इसलिए षड्जग्राम में जो 'स्वर-विशेष' स्वर-साधारण षड्ज और त्रिश्रुति ऋषभ के बीच में होता है, वही मध्यमग्राम में मध्यम और त्रिश्रुति पञ्चम के बीच होता है। षड्जग्राम के षड्ज या मध्यमग्राम के मध्यम के बाद का पर्दा दो श्रुति के अन्तराल पर है और उसके बाद वाला पर्दा एक श्रुति के अन्तराल पर है। इस प्रकार त्रिश्रुतिक अन्तराल में दो स्वर-स्थान प्राप्त होते हैं जिनमें से पहिला दो श्रुति का है और दूसरा एक श्रुति का। जो क्रमिक अन्तराल वीणा पर स्थित पर्दों पर प्राप्त हैं, उन्हीं का निदर्शन करने के लिए भरत ने षड्ज-साधारण और मध्यम-साधारण का उल्लेख किया है। इन्हीं का संवादात्मक प्रतिघोष उत्तरांग में इस प्रकार होता है—षड्जग्राम में 'प-ध' के अन्तराल के बीच और मध्यमग्राम में 'सा – रि' के अन्तराल के बीच। इस प्रकार भरत ने वीणा के पर्दों पर उपलब्ध एक, दो, तीन और चार श्रुत्यन्तर वाले स्वरों को द्विविध स्वर-साधारणयुक्त द्वैग्रामिकी स्वर-व्यवस्था द्वारा सिद्ध किया है और इन सभी भरतोक्त स्वर-व्यवस्था में कहीं विकृत नामाभिधान नहीं है, यह हमने देखा। तब यह नामाभिधान कब किसके द्वारा हुआ? जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भारतीय संगीत के उपलब्ध ग्रन्थों को देखते हुए यही माना जाता है कि स्वरों की शुद्ध-विकृत संज्ञाओं के आद्य प्रवर्तक शार्ङ्गदेव हैं। उनके बताए हुए शुद्ध विकृत स्वर (सात शुद्ध और बारह विकृत) संलग्न सारिणी में दिखाए गए हैं। (द्रष्टव्य सं० र० १।३।४०-४५)।

---

1. ना. शा. के चौखम्भा संस्करण में 'षट्साधारणं' पाठ है और निर्णयसागर संस्करण में 'षड्जसाधारणं'। इन दोनों पाठों की संगति न बैठ पाने के कारण हम ने 'स्वरसाधारण' पाठ रखा है।

रत्नाकरोक्त शुद्ध-विकृत स्वर

शुद्ध स्वर	विकृत स्वर	उल्लेखनीय बात
—	१. कैशिक निषाद	
—	२ काकली निषाद	
—	३. च्युतषड्ज	
शुद्ध षड्ज	४. अच्युतषड्ज	काकली निषाद से द्विश्रुति अन्तर होने पर
—		
—		
शुद्ध ऋषभ	५. चतु श्रुति ऋषभ	षज की च्युति से चतु श्रुति अन्तर होने पर
—		
शुद्ध गान्धार		
—	६ साधारण गान्धार	
—	७. अन्तर गान्धार	
—	८. च्युत मध्यम	
शुद्ध मध्यम	९. अच्युत मध्यम	अन्तर गान्धार से द्विश्रुति अन्तर होने पर
—		
—		
—	१०. त्रिश्रुति पञ्चम, ११ कैशिक	कै० प०, मध्यम की च्युति से चतु.श्रुति अन्तर होने पर
शुद्ध पञ्चम		
—		
—		
शुद्ध धैवत	१२. चतु श्रुति ध	पञ्चम की च्युति से चतु श्रुति अन्तर होने पर
—		
शुद्ध निषाद		

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ऊपर की सारिणी में दिखाए गए स्वरों को बताते समय शार्ङ्गदेव ने वीणा के तारों के नीचे बँधी हुई सारिया पर उन स्वरों की स्थिति नहीं बताई है। वाद्याध्याय में भी विभिन्न प्रकार की वीणाओं की बनावट इत्यादि से सम्बन्धित विपुल विस्तार का घटाटोप होने पर भी वीणा पर स्वर स्थापना का विषय प्रतिपादन नगण्य सा उपलब्ध होता है, जो नितान्त अस्पष्ट है (द्रष्टव्य ६।२५३ ५५, ३०३ ४)। ज्यों ज्यों वाद्याध्याय के तत्सम्बन्धी अंशो को समझने का यत्न करते है तो वहाँ विषयान्तर क भरमार में स्वर-स्थापना का मूल मुद्दा, बालू में लुप्त सुवर्ण-कण-वत्-पकड़ ने बाहर ही रह जाता है, इससे ऐसी शंका हो आना स्वाभाविक है कि इस महत्त्वपूर्ण विषय के प्रति कहीं शार्ङ्गदेव का Evasive attitude (टालमटोल का रुख) तो नहीं रहा होगा !

शार्ङ्गदेव की शुद्ध-विकृत स्वर-व्यवस्था के सम्बन्ध में निम्नलिखित टिप्पणी विचारणीय है:—

(१) षड्जग्रामिक श्रुति-व्यवस्था के स्वरों के लिए शुद्ध 'संज्ञा' का प्रयोग अशुद्ध है। यह स्वरावलि न तो प्राकृतिक है और न ही षड्जग्राम के मध्यम को स्वरित मानने की भरत-परपरा के अनुकूल है।

(२) कुछेक स्वर स्थान नियागत रूप से असम्भव हैं। यथा.—(१) च्युत षड्ज और (२) च्युत मध्यम। इन दोनों का स्थिर स्वर के रूप मे कभी भी प्रयोग सम्भव नहीं है।

(३) शुद्ध-विकृत स्वरों का जिस प्रकार निरूपण किया गया है, उसे वीणा पर स्वर-संवाद क़ायम रखते हुए एक ही सप्तक में कभी भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए पूर्वांग में शुद्ध ग, साधारण ग और अन्तर ग के नाम से पञ्चश्रुति ग, षट्श्रुति ग और सप्तश्रुति ग—तद्वत् उत्तरांग में शुद्ध नि, कैशिक नि और काकली नि के नामसे पञ्चश्रुति नि, षट्श्रुति नि, और सप्तश्रुति नि—इन एक-एक श्रुत्यन्तर वाले तीन-तीन स्वरों को एक साथ जो स्थान दिया गया है, वह वीणा पर एक सप्तक में कभी भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। उसी प्रकार त्रिश्रुति प और चतुःश्रुति प भी दो ग्रामों में भिन्न-भिन्न स्थानों पर ही सिद्ध हो सकते हैं, एक ही सप्तक में एक साथ नहीं।

(४) कुछ विकृत स्वर-नाम ऐसे बताए गए हैं, जिनमें कोई स्थान-विकृति नहीं है, अपितु जो केवल अन्तराल-विकृति के ही द्योतक हैं। यथा :—

(क) चतुःश्रुति रि—शार्ङ्गदेव ने कहा है कि षड्ज के एक श्रुति च्युत होने से स – रि अन्तराल चतुःश्रुति हो जाता है और तभी रि चतुःश्रुति बनता है। षड्ज की च्युतावस्था केवल सारणा-प्रक्रिया में ही ग्राह्य है, नियमित स्वर-सप्तक में उस का कहीं स्थान नहीं है। सभी जानते हैं कि स्थिर षड्ज के साथ पञ्चम का संवाद होता है और उस पञ्चम के साथ चतुःश्रुति ऋषभ का स्वयसिद्ध संवाद है। षड्जग्राम के मध्यम को स्वरित मानने से जो ऋषभ आता है वह चतुःश्रुति ही होता है और इस प्रकार चतुःश्रुति ऋषभ परंपरा से व्यवहृत होता आया है जो आज भी प्रयुक्त हो रहा है। शार्ङ्गदेव ने 'चतुःश्रुति' ऋषभ को जिस प्रकार 'विकृत' बताया है उससे ज्ञात होता है कि वे लक्ष्य से अपरिचित थे।

(ख) चतुःश्रुति धैवत—पञ्चम के एक श्रुति च्युत होने से। सारणा-प्रक्रिया को छोड़ कर नियमित स्वर-समूह में पञ्चम का त्रिश्रुति बनना केवल मध्यमग्राम में ही संभव है, अन्यथा कदापि नहीं। मध्यमग्राम में धैवत अवश्य चतुःश्रुति होता है। किन्तु यह ध्यान रहे कि षड्जग्राम का अन्तर गान्धार ही मध्यमग्राम में धैवत का स्थान पाता है। इसलिए यह समझना नितान्त भ्रम है कि षड्जग्राम का त्रिश्रुति 'ध' ही मध्यमग्राम में पञ्चम की च्युति के कारण चतुःश्रुति 'ध' बन जाता है।

(ग) कैशिक पञ्चम—जब मध्यम के एक श्रुति च्युत होने से त्रिश्रुति 'प' का अन्तराल पुनः चतुःश्रुति बनता है तब वह कैशिक 'प' कहलाता है। मध्यम की च्युति केवल सारणा-क्रिया में ही होती है, अन्यथा वह किसी भी ग्राम में ग्राह्य नहीं है एवं नियमित स्वर के रूप में च्युत मध्यम का कोई स्थान नहीं है। इसलिए मध्यम की च्युतावस्था से त्रिश्रुति प का अन्तराल पुनः चतुश्रुति बनने की बात भ्रान्त कल्पना मात्र है।

(घ) अच्युत षड्ज—जब काकली निषाद के प्रयोग से षड्ज का निषाद से अन्तर द्विश्रुति रह जाता है, तब शुद्ध षड्ज ही अच्युत षड्ज कहलता है।

(ङ) अच्युत मध्यम—जब अन्तर गान्धार के प्रयोग से मध्यम का गान्धार से अन्तर द्विश्रुति रहता जाता है, तब शुद्ध मध्यम ही अच्युत मध्यम कहलाता है।

ये अन्तिम दोनों स्वर केवल अन्तराल-विकृति के सूचक हैं, इन्हें स्वतन्त्र स्वर-स्थान मानना न तो आवश्यक है और न ही युक्तियुक्त है।

(५) भरत की द्वैग्रामिकी स्वर-व्यवस्था को इन स्वरों में कोई स्थान नहीं मिला है। भारतीय संगीत शास्त्र में श्रुति, स्वर, ग्राम का ऐसा अविच्छेद्य संबन्ध है कि एक से पृथक् करके दूसरे की विवेचना की ही नहीं जा सकती। ये तीनों मानो एक ही श्रृंखला की कड़ियाँ हैं। किन्तु शार्ङ्गदेव ने जहाँ श्रुति की अथवा स्वर की विवेचना की है, वहाँ 'ग्राम' के साथ उनका कहीं भी सम्बन्ध जोड़ कर नहीं दिखाया है। इसीलिए भारतीय संगीत शास्त्र की परम्परानुसार श्रुति-स्वर का जो व्यवस्थित निरूपण आवश्यक है, अपेक्षित है, उससे 'रत्नाकर' के पाठक वंचित रह जाते हैं और अनुसन्धान करने वालों को ऐसी जटिलताओं का सामना करना पड़ता है कि इस चक्र-व्यूह से बाहर निकलना असम्भव-सा जान पड़ता है।

'संगीत रत्नाकर' को आधार मान कर मध्ययुग के ग्रंथकारों ने षड्जग्रामिक स्वर-व्यवस्था को शुद्ध माना है और अन्य स्वर स्थानों को विकृत कह कर अपनी-अपनी कल्पनानुसार भिन्न-भिन्न नाम देकर नई रचना या श्रेय प्राप्त करने

का यत्न किया है। संलग्न सारिणी में कुछ प्रमुख ग्रंथकारों के दिए हुए स्वर-नाम दिखाए गए हैं। विस्तार-भय से प्रत्येक ग्रन्थकार की स्वर-व्यवस्था पर पृथक् २ टिप्पणी देना यहाँ सम्भव नहीं है, किन्तु यहाँ इतना ही उल्लेख पर्याप्त है कि इन ग्रंथों में भरत की द्विग्रामिकी स्वर-व्यवस्था की वीणा पर स्थापना का तथा द्विविध स्वर-साधारण से उद्भूत स्वरान्तरालों का यथार्थ निरूपण नहीं हुआ है। वे सभी भरत की यथार्थ परम्परा से वंचित रहे हैं। क्रियागत संगीत में दोनों ग्राम व्यवहृत होने पर भी तत्कालीन संगीत को केवल षड्जग्राम में सीमित मानने वाले ये ग्रंथकार वीणा पर षड्जग्राम की भी स्थिति यथावत नहीं समझ पाये हैं। अस्तु।

मध्ययुग के प्रमुख ग्रन्थकारों के विकृत स्वरों की तालिका

रागमाला	सोमनाथ	व्यंकटमखी	पुण्डरीक विट्ठल			अहोबल	लोचन, हृदयनारायण-देव
			रागमाला	रागमंजरी	सद्रागचन्द्रोदय		
कै० नि०	कै० नि०	कै० नि	ए०ग०नि०	कै० नि०	च०श्रु०रि०	पू०रि०	को०रि०
च्यु० प० नि०। का नि०	का० नि०	का० नि०	द्वि०ग०नि०	का० नि०	सा०ग०	को०रि०	ती०ग०
सा० गां०	मृदु स	सा० ग०	त्रि०ग०नि०	त्रि०ग०नि०	अं०ग०	ती०रि०	ती०त०ग०
च्यु० म० गां० । अं० गां०	तीव्ररि	अं० ग०	ए०ग०रि०	ए०ग०रि०	ल०म०	नी०ग०	ती०तम०ग०
च्यु० पं० म०	सा० ग०	ल० म०	ए०ग०ग०	सा० ग०	पं०श्रु०म०	ती०त०ग०	ती०त०म०
	अं० ग०		द्वि०ग०ग०	अं० ग०	ल०प०	ती०तम०ग०	को०ध०
	मृदु म		त्रि०ग०ग०	त्रि०ग०ग०	च०श्रु०ध०	ती०म०	ती०नि०
	ती०तम०म०		त्रि०ग०म०	ए०ग०म०	कै०नि०	ती०त०म०	ती०त०नि०
	मृदु प		ए०ग०ध०	द्वि०ग०म०	का०नि०	ती०तम०म०	ती०तम०नि०
	तीव्र ध			त्रि०ग०म०	ल०प०	पू०ध०	
				ए०ग०ध०		को०ध०	
						ती०ध०	
						ती०नि०	
						ती०त०नि०	
						ती०तम०नि०	

सारिणी में प्रयुक्त सांकेतिक चिह्नों का परिचय—ती० तम=तीव्रतम, व० म०=वराली मध्यम, ए० ग०=एकगतिक, द्वि० ग०=द्विगतिक, त्रि० ग०=त्रिगतिक, च० श्रु०=चतुःश्रुति, ल० म०=लघु मध्यम, पं० श्रु०=पञ्चश्रुति, ल० पं०=लघु पंचम, ल० प०=लघु षड्ज, को०=कोमल, ती०=तीव्र, ती० त०=तीव्रतर, पू०=पूर्व।

प्रस्तुत सारिणी में स्वरों की वैकल्पिक संज्ञाएँ नहीं दिखाई गई हैं।

भारतीय संगीत की शुद्ध-विकृत स्वर-व्यवस्था का अल्प इतिहास हमने इस प्रकरण में देखा। उससे यह स्पष्ट हुआ कि हमारे क्रियागत संगीत की स्वर-व्यवस्था भरत-परंपरा के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है। साथ ही हमने यह भी देखा कि उस अविच्छिन्न स्रोत से बिल्कुल भिन्न एक धारा कैसे शास्त्रग्रन्थों में बह चली और उसके क्या-क्या दुष्परिणाम हुए। इस प्रकरण में जो प्रमुख निष्कर्ष उपलब्ध हुए उनका निम्नलिखित एकत्र संग्रह पाठकों को उपयोगी होगा:—

(१) दक्षिण को छोड़ कर सारे भारत में भरत की स्वर-व्यवस्था क्रियागत संगीत में अक्षुण्ण रही है। हिन्दू मुस्लिम गुणिजन अब तक समान रूप से उसी अविच्छिन्न धारा में अवगाहन करते आए हैं। जिस काल में शास्त्र की धारा भरत-परंपरा से पृथक् होकर बहने लगी, तभी से कलाविज्ञ और शास्त्रकार—ये दो पृथक् कोटियाँ संगीत जगत् में अस्तित्व में आईं। जो शास्त्रकार थे वे प्रयोग-पक्ष से दूर होने के कारण लक्ष्य और लक्षण की संगति नहीं रख पाए और जो कलाविज्ञ थे वे अपनी परंपराप्राप्त साधना में दृढ़ रहे तथा नूतन शास्त्र की रचना उनके प्रायोगिक संगीत से विपरीत होने के कारण उसकी उपेक्षा करते रहे। इस प्रकार कला और शास्त्र के बीच की खाई बढ़ती गई; किन्तु शास्त्र के पथभ्रष्ट होने पर भी कला भरत-परंपरा पर स्थिर रही। निःसंदेह कला-पक्ष में भरत-परंपरा को अक्षुण्ण रखने का श्रेय हमारे हिन्दू-मुस्लिम कलाकारों को ही है।

(२) भरत-परंपरा से विच्छिन्न जो ऐसी शास्त्र की धारा चली, जिसमें भरत की द्वैग्रामिकी स्वर-व्यवस्था की वैज्ञानिकता सुरक्षित न रह पाई और जिसका प्रवर्तन शार्ङ्गदेव ने किया, उस धारा का उद्भव दक्षिण प्रदेश में होने के कारण उसका प्रभाव और प्रचार दक्षिण में ही अपेक्षाकृत अधिक होना स्वाभाविक था। फलस्वरूप इस धारा ने भारत के दक्षिण-पथ में शास्त्र के साथ-साथ कियदंश में कला-पक्ष को भी प्रभावित किया और इस प्रकार प्राचीन तामिळ संगीत में प्रचलित हरिकाभोजी (जो भरत के षड्ग्राम की मध्यम-मूर्च्छना होने के कारण भरत-परंपरा से दृढ़ रूप से संबद्ध है) की स्वरावलि का स्थान मुखारी मेल ने ले लिया।

हमारे उपर्युक्त विधानों द्वारा भरत की द्वैग्रामिकी स्वर-व्यवस्था की जो पूर्णता और सत्यता सिद्ध हो चुकी है, उसे यदि अपनाया जाए और मुखारी-मेल के स्थान पर शंकराभरण (बिलावल) या हरिकांभोजी (खमाज) की स्थापना की जाए तो बीच के काल में टूटी हुई हमारी शृंखला पुनः जुड़ जाएगी।

हमारे जीवन की यह नितान्त हार्दिक अभिलाषा है कि समस्त भारत में भरत-प्रणीत शुद्ध शास्त्रीय और पूर्ण वैज्ञानिक परंपरा का प्रवाह पुनः प्रवाहित हो। संस्कृत-निर्मित हमारे धर्म और संस्कृति के सदृश हमारे संगीत में भी एकता प्रस्थापित हो। बीच के युग में गंगा और यमुना की जो धारा पृथक् २ हो कर बहती रहीं; उन दोनों धाराओं का संगम अब हम निगूढ़ अन्तःकरण से चाहते हैं। भगवान् करें संगीत के इस अभिनव प्रयागतीर्थ में भारत के पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण अवगाहन करते हुए स्वर की सुरसरी में पावन हों।

वर्ण, अलङ्कार, तान और स्वर-प्रस्तार

वर्ण, अलङ्कार, तान, और स्वर-प्रस्तार ये चारों सङ्गीत के विस्तार तत्व से सम्बन्धित हैं। सात स्वरों के आधार पर किस प्रकार सङ्गीत की अपार सृष्टि का निर्माण होता है यह समझने के लिए इन चारों का काफ़ी महत्त्व है। इस प्रकरण में हम इन चारों को कुछ विस्तार से समझ लेंगे और विशेष रूप से स्वर-प्रस्तार की गणित-सिद्ध विधि से अवगत होंगे। अन्त में, अलंकार, तान आदि के रस-भावानुकूल प्रयोग की आवश्यकता दिखा कर पूरे स्वर-प्रस्तार दिए जाएंगे।

संगीत के विस्तार तत्त्व से सम्बन्धित जो चार पारिभाषिक शब्द ऊपर कहे गए हैं उनमें से 'वर्ण' सब से अधिक व्यापक और मौलिक है। इसलिए सबसे पहले हम वर्ण की ही चर्चा करेंगे।

भरत ने दो प्रकार के वर्ण बताए हैं—(१) नाट्योपयोगी वर्ण[1] जिनका सम्बन्ध उच्चार-भेद से है और (२)

---

१. नाट्योपयोगी पाठ्य वर्ण ये हैं—

उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितः कम्पितस्तथा वर्णाश्चत्वार एव स्युः ···॥

(ना० शा० १९।४३)

संगीतोपयोगी वर्ण जिनका स्वरों की आरोही, अवरोही, स्थायी और संचरित अवस्था से सम्बन्ध है। संगीतोपयोगी वर्ण के लिए भरत कहते हैं :—

आरोही चावरोही च स्थायिसञ्चारिणौ तथा।
वर्णाश्चत्वार एवैते अलङ्कारास्तदाश्रयाः॥
आरोहन्ति स्वरा यत्र आरोहीति स भण्यते।
यत्र चैवावरोहन्ति सोऽवरोहीति संज्ञितः॥
स्थिरस्वराः समाः यत्र स्थायिवर्णः स संज्ञितः।
सञ्चरन्ति स्वयं यत्र स सञ्चारीति संज्ञितः॥

(ना० शा० २९।१६-२१)

अर्थात् आरोही, अवरोही, स्थायी और सञ्चारी—ये चार वर्ण हैं और अलंकार इनके आश्रित रहते हैं। जहाँ स्वरों का आरोह हो, वहाँ आरोही वर्ण, जहाँ अवरोह हो वहाँ अवरोही वर्ण, जहाँ सब स्वर स्थिर और सम रहें, वहाँ स्थायी वर्ण और जहाँ सब स्वरों का सञ्चरण हो (उलट पुलट-प्रयोग हो) वहाँ सञ्चारी वर्ण होता है।

ऊपर के उद्धरण में आरोही और अवरोही वर्ण तो स्पष्ट ही हैं। स्थायी वर्ण उस क्रिया को कहा जाता है जहाँ एक ही स्वर पर ठहर कर उसका बार-बार विलम्बित उच्चार किया जाय। सञ्चारी वर्ण तब होता है, जब आरोही-अवरोही और स्थायी इन तीनों के सम्मिश्रण से स्वरों में सञ्चरण किया जाय, अर्थात् कहीं चढ़ा जाय, कहीं उतरा जाय और कहीं ठहरा जाय। इन चारों वर्णों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि संगीत की क्रिया मात्र में वर्ण व्यापक है। स्वरों का कोई भी प्रयोग इन चार वर्णों के बाहर नहीं जा सकता। इसीलिए हमने वर्ण को संगीत में सर्वव्यापक कहा है।

अलङ्कार को वर्ण के आश्रित कहा गया है अर्थात् वर्ण के आधार पर ही अलङ्कार बनते हैं। अलङ्कार में स्वरों की एक नियमित गति या चाल रहती है। 'संगीतरत्नाकर' और 'संगीतपारिजात' में अलङ्कार का लक्षण इस प्रकार दिया है—

विशिष्टं वर्णसंदर्भमलंकारं प्रचक्षते। (सं० र० १।६।२)
क्रमेण स्वरसंदर्भमलंकारं प्रचक्षते। (सं० पा० २२३)

अर्थात्—विशिष्ट वर्ण-संदर्भ को या किसी नियत क्रम में स्वरों के संदर्भ को अलंकार कहते हैं।

ऊपर के दोनों उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि अलंकार में एक निश्चित क्रम से स्वरों की संघटना रहती है। जैसे कि 'सारिग' इस आरोही टुकड़े के अनुसार यदि क्रम से रिगम गमप इस प्रकार आगे बढ़ते हुए आरोह करें और उसी क्रम से अवरोह भी करें तो एक अलंकार का रूप बन जायगा। प्रत्येक अलंकार में आरोह-अवरोह की गति रहने पर भी

अर्थात् उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और कम्पित ये चार वर्ण हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि नाट्योपयोगी वर्णों का भरत ने रस के साथ सीधा सम्बन्ध जोड़ा है। यथा—

तत्र हास्यशृङ्गारयोः स्वरितोदात्तैः, वीररौद्राद्भुतेषु उदात्तकम्पितैः, करुणवात्सल्यभयानकेषूदात्तस्वरित-कम्पितैः वर्णैरुपपादयेत् इति।

अर्थात् हास्य-शृङ्गार के लिए स्वरित और उदात्त, वीर, रौद्र, अद्भुत के लिए उदात्त और कम्पित, करुण, वात्सल्य, भयानक के लिए उदात्त, स्वरित और कम्पित—इस प्रकार विभिन्न रसों के लिए वर्णों का प्रयोग करना चाहिए।

कोई न कोई वर्ण उसमें प्रधान रहता है ; यानी या तो उसके टुकड़ों में आरोही या अवरोही गति रहेगी, या एक एक स्वर का पुनरुचार होगा या इन तीनों गतियों का मिश्रण होगा। इसीलिए प्राचीनों ने चारों वर्णों के अनुसार अलंकार का वर्गीकरण किया है। चाहे जिस वर्ण का अलंकार में प्रयोग हो, किन्तु एक निश्चित क्रम से स्वरों की संघटना उसमें अवश्य रहेगी। यहाँ यह ध्यान रहे कि अलंकार का स्वरों की शुद्ध विकृत अवस्था के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, यह तो केवल स्वरों के एक निश्चित क्रम का द्योतक है।

भरत और मतङ्ग ने ३३ अलंकार बताए हैं। बाद में शार्ङ्गदेव ने ६३ और अहोबल ने ६९ अलंकार कहे हैं। इन सब के नाम और स्वरूप का ब्यौरा "प्रणव भारती" के पृष्ठ २६३–७० में जिज्ञासु-जन देख सकते हैं। अलंकार संगीत में शोभा प्रदान करने वाला कहा गया है। संगीत में अलंकारों की परम आवश्यकता दिखाते हुए भरत कहते हैं :—

शशिना रहितेव निशा विजलेव नदी लता विपुष्पेव।
अविभूषितेव कान्ता गीतिरलङ्कारहीना स्यात्॥
(ना० शा० २९।७५)

अर्थात्—'अलंकार' रहित गीति की वही अवस्था होती है, जो चन्द्र के बिना रजनी, जल के बिना नदी, पुष्प के बिना लता और भूषणों के बिना कान्ता की होती है।

इसी प्रसंग में मतङ्ग के ये वचन भी उद्धृत करने योग्य हैं :—

तत्रालङ्कारशब्देन किमुच्यते, अलङ्कारशब्देन मण्डनमुच्यते। यथा कटककेयूरालङ्कारेण नारी पुरुषो वा मण्डितः शोभामावहेत्, तथा एतैरलङ्कारैः प्रसन्नादिभिरलंकृता वर्णाश्रया गीतिर्गातृश्रोतृणां सुखावहा भवतीति।

(बृहद्देशी पृ० ३४)

अर्थात्—अलंकार शब्द से क्या अभिप्राय है। "अलंकार" द्वारा मण्डन कहा जाता है। जैसे कटक, केयूरादि अलंकारों द्वारा नारी या पुरुष मण्डित होकर शोभा पाते हैं, उस प्रकार इन वर्णाश्रित प्रसन्नादि अलंकारों द्वारा अलंकृत गीति, गायक और श्रोता दोनों को सुखावह होती है।

इन अलंकारों का संगीत में रसभावानुकूल प्रयोग करना कितना आवश्यक है, इस बारे में हम इस प्रकरण के अन्त में कुछ चर्चा करेंगे।

अलंकार के बाद यहाँ 'तान' को समझ लेना आवश्यक है। तान शब्द "तन्" धातु से बना है जिसका अर्थ है विस्तार करना। संगीत में तान, विस्तार का एक सबल साधन है ; इसलिए उसका यह नाम सार्थक है। आज हम अपने संगीत में राग के विस्तार के लिए, विविधता दिखाने के लिए तथा नई-नई स्वर-रचना और स्वर-संयोगों द्वारा गान वादन की सजावट के लिए तानों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार तान राग के साथ जुड़ी हुई है। जब कोई अलंकार किसी राग के नियमों में बाँध कर प्रयोग में लाया जाता है तब वही तान कहलाता है। किसी विशेष राग में प्रयुक्त होने वाले शुद्ध विकृत स्वर, आरोह अवरोह के नियम इत्यादि के अनुसार ही 'तान' का प्रयोग किया जाता है। अलंकार में इन सब नियमों को कोई स्थान नहीं रहता। जिस प्रकार यह कहा गया है कि अलंकार वर्ण के आश्रित हैं, उसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि तान अलंकार के आश्रित हैं।

आज के हमारे संगीत प्रयोग के अनुसार ही हमने ऊपर तान की व्याख्या की है। प्राचीनों ने तान का किस अर्थ में प्रयोग किया है, यह देखना भी यहाँ अस्थानीय न होगा।

भरत ने 'तान' शब्द का मूर्च्छना के साथ प्रयोग किया है और इस प्रकार केवल तान को न लेकर उन्होंने 'मूर्च्छना-तान' का निरूपण किया है। दोनों ग्रामों में कुल मिलाकर ८४ औडव-षाडव मूर्च्छना-तानें[1] उन्होंने बताई हैं।

इन मूर्च्छना-तानों का भरत के काल में क्या और कैसा उपयोग होता होगा इसकी चर्चा करना यहाँ आवश्यक नहीं है, किन्तु इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि मूर्च्छना के साथ तान को जोड़कर भरत ने भी तान में स्वरों के अवस्था-भेद को स्थान दिया है क्योंकि भिन्न-भिन्न मूर्च्छनाओं में भिन्न-भिन्न स्वरान्तराल रहते हैं। आज भी तान राग के साथ जुड़ी होने के कारण उसमें स्वरों के विभिन्न अन्तरालों को स्थान रहता है।

वीणा-वादन में "तान क्रिया" का वर्णन करते समय भरत ने "प्रवेश" और "निग्रह" इन दो पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है। वे कहते हैं:—

द्विविधा तानक्रिया तन्त्र्यां प्रवेशो निग्रहश्च, तत्र प्रवेशो नामाधरस्वरप्रकर्षादुत्तरमार्दवाच्च। निग्रहस्त्वसंस्पर्श', मध्यमस्वरासंस्पर्शः।

(ना. शा. २८)

इस उद्धरण के दो अर्थ लगाए जाते हैं :—

(१) वीणा वादन में दो प्रकार की तान क्रिया होती है—१-प्रवेश और २-निग्रह। प्रवेश क्रिया से यह समझा जाता है कि अधर अर्थात् नीचे वाले स्वर का प्रकर्षण किया जाता है, यानी पर्दे पर तार खींच कर उस पर्दे से ऊपर वाले स्वर लिए जाते हैं और इसी प्रकार उलटी मींड से नीचे उतरते हुए स्वर लिए जाते हैं। वीणा या सितार पर इस प्रकार की तान-क्रिया सहज ही समझी जा सकती है। उदाहरण के लिए 'सा' के पर्दे पर तार खींच कर 'सा' 'रे' 'ग' 'म' इस प्रकार ऊपर चढ़ते हुए स्वर लिए जाते हैं और इसी को उलट क्रिया में तार इतना खींच कर कि उससे मध्यम स्वर निकले फिर आघात करके उलटे क्रम से 'म' 'ग' 'रे' 'सा' ऐसे स्वर लिए जाते हैं। यह सीधी और उलटी क्रिया ही 'प्रवेश' है। उसी प्रकार घसीट से भी यह क्रिया की जाती है। 'सा' के पर्दे पर आघात करके 'सा' 'रि' 'ग' 'म' ये चढ़ते हुए स्वर घसीट द्वारा निकाल कर फिर एक ही अघात से उलट क्रिया में 'म' 'ग' 'रि' 'सा' ऐसे क्रमशः नीचे स्वर निकले जाते हैं। यह घसीट क्रिया भी 'प्रवेश' में आ जायगी। 'निग्रह' की क्रिया तब होती है जब "मध्यम-स्वर" यानी बीच के स्वर को छोड़ कर या उनका स्पर्श न करते हुए "मींड" या "घसीट" ली जाती है। जैसे कि 'सा' के पर्दे पर 'सा' – 'म' अथवा 'म – सा' यों बीच के स्वर छोड़ते हुए सीधी उलटी "मींड" द्वारा या "घसीट" द्वारा ये स्वर लेने पर "निग्रह" क्रिया होती है।

(२) भरत के ऊपर उद्धृत तान-संबन्धी वचन का नाट्यशास्त्र में पूर्वापर प्रकरण देखने पर ऊपर दिए हुए अर्थ से भिन्न एक अन्य अर्थ भी उसमें सन्निहित जान पड़ता है। मूर्च्छना-तानों के वर्णन के साथ ही यह वचन जुड़ा हुआ होने से उसका निम्नलिखित अर्थ प्रकरण के अनुरूप प्रतीत होता है।

---

१. षड्जग्राम में से 'सा', 'रि', 'प' और 'नि' क्रमशः इतने स्वर वर्जित करके प्रत्येक मूर्च्छना के ४ भेद बनाये गये हैं। इस प्रकार ७ × ४ = २८ षाडव तानें और स – प, रि – प और ग – नि ये तीन जोड़ियाँ क्रमशः प्रत्येक मूर्च्छना में से वर्ज्य करके ३-३ औडव तानें बनायी गयीं है और इस प्रकार ७ × ३ = २१ औडव-मूर्च्छना तानें बनीं। २८ + २१ = ४९ कुल इतनी तानें षड्जग्राम की हुई। मध्यमग्राम में "सा", 'रे' और 'ग' इन ३-३ स्वरों को क्रमशः प्रत्येक मूर्च्छना में से निकाल कर षाडव तानें बनाई गई हैं जिनकी संख्या ७ × ३ = २१ हैं और ग – नि तथा रि – ध की जोड़ियाँ प्रत्येक मूर्च्छना में से वर्ज्य करके २–२ औडव तानें बनीं हैं, जिनकी संख्या ७ × २ = १४ है। इस प्रकार कुल मिलकार २१ + १४ = ३५ मूर्च्छना तानें मध्यमग्राम की हुईं। षड्जग्राम की ४९ और मध्यमग्राम की ३५ कुल मिला कर इस प्रकार ८४ मूर्च्छना तानें बनती हैं।

वीणा पर 'तान क्रिया' दो प्रकार से होती है—प्रवेश और निग्रह। प्रवेश की क्रिया भी दो प्रकार होती है, एक तो 'अधरस्वरप्रकर्ष' यानी आरोह द्वारा और दूसरे 'उत्तरस्वर-अमार्दव' यानी अवरोह द्वारा। इसका अर्थ यह हुआ कि 'मूर्च्छना तान' की स्वरावलि को वीणा पर सिद्ध करने के लिए आरोहावरोह गति की जिस क्रिया का आश्रय अपेक्षित है, उसे ही 'प्रवेश' कहा गया है। दूसरी ओर 'मध्यम' (बीच के) स्वर के 'असंस्पर्श' को 'निग्रह' कहते हैं यानी आरोहावरोह की क्रिया में बीच के एक या दो स्वरों को छोड़ देने की क्रिया ही 'निग्रह' द्वारा अभिप्रेत है। स्वरों को छोड़ने की यह क्रिया मूर्च्छना-तानों में आवश्यक होती है।

भरत के 'तान-क्रिया' सम्बन्धी वचन की जो दो व्याख्या हमने ऊपर देखीं, उनमें से किसी का भी 'तान' के उस अर्थ से सीधा सम्बन्ध नहीं है जिस अर्थ में आज हम प्रत्यक्ष क्रिया में 'तान' को समझते हैं और व्यवहार करते हैं।

मतङ्ग और शार्ङ्गदेव ने जिन्हें 'कूटतान' कहा है, उन्हें भी यहाँ समझ लें। कूटतानों को 'व्युत्क्रमोच्चारित-स्वराः' कहा गया है यानी उनमें स्वरों के 'व्युत्क्रम' या क्रम-परिवर्तन का प्रयोग रहता है। कूटतानों की गणित-सिद्ध विधि को 'स्वर-प्रस्तार' कहा गया है। एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः या सात स्वरों को लेकर जितने विभिन्न क्रमों में रखा जा सकता है, वे सब स्वर-प्रस्तार के अन्तर्गत आते हैं। स्वर-प्रस्तार का आधार गणित के permutation तथा combination के नियम हैं। इसलिए हम संगीत की व्यावहारिक दृष्टि के अनुसार स्वर-प्रस्तार को समझने के साथ-साथ बीजगणित के वे नियम (formulea) भी समझ लेंगे जो इस विधि से सम्बन्धित हैं। कूटतानों की गुणन-विधि 'रत्नाकर' आदि ग्रन्थों में इस प्रकार बताई गई है :—

स्वर संख्या	प्रस्तार-संख्या
१	१×१=१
२	१×२=२
३	२×३=६
४	६×४=२४
५	२४×५=१२०
६	१२०×६=७२०
७	७२०×७-५०४०

ऊपर हमने देखा कि पूर्व-पूर्व प्रस्तार-संख्या को उत्तरोत्तर स्वर-संख्या से गुणा देकर स्वर-प्रस्तारों की संख्या निकाली गई है। जैसे २ स्वरों के यदि २ प्रस्तार बनते हैं तो उसके बाद वाली स्वर-संख्या ३ को २ से गुणा करके ३ स्वरों की प्रस्तार संख्या ६ निकाली गई है और इसी क्रम से सात स्वरों तक आगे बढ़े हैं।

प्रस्तार-संख्या निकालने की विधि को बीजगणित के अनुसार समझ लेना भी उपयोगी होगा। जिन पाठकों को गणित में विशेष रुचि न हो वे इस अंश को छोड़कर पृ० ११९ से पुनः पढ़ना प्रारम्भ करें।

बीजगणित में किसी निश्चित संख्या की वस्तुओं के permutation (विभिन्न क्रम में उनका रखा जाना) निकालने का निम्नोक्त नियम है—

यदि क संख्या की सभी वस्तुओं को एक साथ ले लें तो permutation की संख्या = क × (क – १ × क – २ × ······ क factor पूरे होने तक)

तदनुसार सात स्वरों को एक साथ लेने पर प्रस्तार या permutations की संख्या इस प्रकार निकाली जा सकती है :—

७×(७ – १×७ – २×७ – ३×७ – ४×७ – ५×७ – ६) यानी
७×६×५×४×३×२×१=५०४०

इस प्रकार संपूर्ण कूटतान की संख्या ५०४० है। यदि अपूर्ण कूटतान बनाएँ अर्थात् सातों स्वर न लेकर सात से कम किसी संख्या में स्वर लें तो फिर हमें permutation के साथ २ combination को भी समझना होगा। यदि सात स्वरों में से केवल दो ही स्वर लेकर हम प्रस्तार बनाना चाहें तो पहिले यह देखना होगा कि सात स्वरों में से दो दो स्वरों के कितने समूह बन सकते हैं। ये समूह ही combination हैं। इनमें स्वरों के क्रम-परिवर्तन का प्रश्न नहीं। दो-दो स्वरों के प्रत्येक समूह में दो-दो permutation या व्युत्क्रम-प्रकार बनेंगे। किसी भी निश्चित संख्या में से किसी छोटी संख्या की वस्तुओं के समूह कितने बनेंगे, इसके लिए नीचे लिखा formula है—

क संख्या की वस्तुओं में से यदि ख संख्या की वस्तुओं को एक-एक बार एक साथ लेना हो तो combinations की संख्या =

$$\frac{\text{क} \times (\text{क} - १ \times \text{क} - २ \cdots\cdots \text{क} - \text{ख} + १ \text{ तक})}{\text{सभी ख वस्तुओं को एक साथ लेने से बने permutation ख} \times (\text{ख} - १ \times \text{ख} - २ \ldots \text{ख factors तक})}$$

उदाहरण के लिए सात स्वरों में से दो-दो स्वरों के समूह कितने बनेंगे ?

क = ७ ख = २

∴ क में से बनने वाले ख के combinations की संख्या =

$$\frac{७ \times (७ - २ + १ \text{ तक})}{२ \times १}$$

$$\text{यानी } \frac{७ \times ६}{२ \times १} = २१$$

इस प्रकार सात स्वरों में से दो-दो स्वरों के समूह २१ बन सकते हैं। इसी विधि से सात स्वरों के अन्तर्गत सभी संख्याओं के समूह या combination निकालने से निम्न संख्याएँ मिलती हैं—

स्वर-संख्या—	७	६	५	४	३	२	१
	↓	↓	↓	↓	↓	↓	↓
समूह संख्या या combinations—	१	७	२१	३५	३५	२१	७

स्पष्ट है कि सातों स्वरों को यदि एक साथ ले लेंगे तो एक ही समूह बन सकेगा, यदि छः स्वरों को प्रत्येक बार एक साथ लेंगे तो सात समूह बनेंगे। इसी प्रकार ऊपर के नियमानुसार निकाली गई अन्य समूह-संख्या भी समझनी चाहिए। इस समूह-संख्या में एक गणित-सिद्ध क्रम है जो नीचे के 'ग्राफ़' से स्पष्ट होगा।
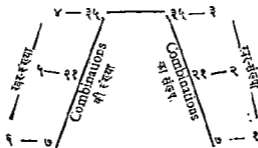
सात स्वरों का १ समूह

ऊपर के 'ग्राफ़' से स्पष्ट है कि ६, ५, ४ संख्याओं के स्वरों के समूहों की संख्या क्रमशः १, २, ३ संख्या के समूहों के बिल्कुल बराबर है। इस एकरूपता को गणित द्वारा निम्नोक्त ढंग से समझा जा सकता है।

५ स्वरों के २१ समूह बनते हैं और २ स्वरों के भी उतने ही समूह बनते हैं। ऊपर दिए हुए फ़ॉर्मूला से ५ स्वरों के समूह इस प्रकार निकलेंगे—

$$\frac{७ \times (७-१-७\times२\cdots\cdots७-५+१ \text{ तक})}{५ \text{ के permutation}}$$

अर्थात्

$$^{७}स_{५} = \frac{७\times६\times५\times४\times३}{५\times४\times३\times२\times१} = २१$$

यहाँ ऊपर नीचे की संख्याओं में से ५, ४, ३ की संख्या आपस में कट जाती हैं। इसलिए—

$$\frac{७\times६}{२\times१} = २१$$

यही रूप शेष रहता है। २ स्वरों के समूह निकालने में भी यही रूप बनता है। इसीलिए २ और ५ स्वरों की समूह-संख्या समान है। ५ स्वरों की समूह-संख्या निकालने के लिए ऊपर के फ़ार्मूले का संक्षिप्त रूप यह बनाया जा सकता है—

७ में से ५ को घटा लिया जाए और शेष को ५ के स्थान पर रख दिया जाए। इस प्रकार

$$\therefore {}^{७}स_{२} = \frac{७\times६}{२\times१} = २१$$

इस प्रकार ५ और २ स्वरों की समूह-संख्या की एकरूपता समझी जा सकती है। उसी रूप से १ और ६ तथा ४ और ३ स्वरों की समूह संख्या की समानता भी समझ लेनी चाहिए।

अब यदि क संख्या की वस्तुओं में से ख संख्या को एक साथ लेने पर बनने वाले permutation (व्युत्क्रम-प्रकार) की संख्या निकालना हो तो, नीचे लिखा फार्मूला लगेगा—

$$क \times (क-१\times क-२\ldots\ldots क-ख+१ \text{ तक})$$

सात स्वरों में से पाँच को प्रत्येक बार एक साथ लिया जाए तो permutation की संख्या

$$=७\times(७-१\times७-२\ldots\ldots७-५+१ \text{ तक}) \text{ अर्थात् } ७\times६\times५\times४\times३=२५२०$$

यही प्रस्तार-संख्या एक और प्रकार से भी सिद्ध की जा सकती है और वह यह कि ५ स्वरों की समूह-संख्या को ५ स्वरों की ही प्रस्तार-संख्या से गुणा कर दिया जाए। यथा :—समूह संख्या = २१ प्रस्तार संख्या = १२०

$$\therefore \text{ कुल प्रस्तार संख्या} = २१\times१२० = २५२०$$

सात स्वरों में से विभिन्न संख्या के स्वर-समूहों की कुल प्रस्तार संख्या इसी प्रकार निकाल कर नीचे की तालिका में दिखाई गई है :—

स्वर-संख्या	समूह संख्या	कुल प्रस्तार-संख्या
१	७	७ × १ = ७
२	२१	२१ × २ = ४२
३	३५	३५ × ६ = २१०
४	३५	३५ × २४ = ८४०
५	२१	२१ × १२० = २५२०
६	७	७ × ७२० = ५०४०
७	१	१ × ५०४० = ५०४०

स्वर-प्रस्तार की गणित-विधि और संख्या-क्रम हमने देखे। यहाँ एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि स्वरों के स्थान-भेद से जो विविधता संगीत में आती है उसके लिए ऊपर लिखी प्रस्तार-संख्या में कोई स्थान नहीं है। यहाँ तो केवल सात स्वरों के उलट-पुलट क्रम से ही प्रयोजन है। 'रत्नाकरकार' ने मूर्च्छनाओं के ५६ भेदों से सम्पूर्ण कूटतानों की संख्या को गुणा देकर ५०४०×५६=२८२२४० संख्या निकाली है, उसमें स्वरों की स्थान-विकृति से उपजने वाली विविधता को भी स्थान है। यहाँ तो हमें सात स्वरों के आधार पर ही प्रस्तार-विधि को समझ लेना है, क्योंकि एक बार प्रस्तार की गणित-सिद्ध प्रक्रिया हस्तगत हो जाने के बाद फिर आवश्यकतानुसार स्थान विकृति का प्रयोग अपने आप किया जा सकता है।

प्रस्तार-संख्या और उसके ज्ञात करने की गणित-विधि देख लेने के बाद यह प्रश्न होता है कि इन स्वर-प्रस्तारों को बनाते समय कोई निश्चित-क्रम अपनाया जा सकता है या नहीं? यदि प्रस्तार बनाने का थोड़ा सा भी प्रयत्न किया जाय तो सभी को यह लगेगा कि किसी एक निश्चित-क्रम के बिना आगे बढ़ना बहुत कठिन हो जाता है। एक बार बने हुए प्रस्तार के दोहराए जाने की भूल होने की पूरी सम्भावना बनी रहती है और स्वरों की संख्या जैसे बढ़ती जाती है, वैसे ही पूरे प्रस्तार बनाना असम्भव-सा लगने लगता है। विद्यार्थी स्वयं प्रयोग करके यह अनुभव ले सकते हैं। निश्चित क्रम की इस अनुभव-सिद्ध आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए नीचे का विवरण बहुत उपयोगी होगा।

हम जानते हैं कि एक स्वर से कोई उलट-पुलट प्रकार नहीं बन सकता। उलट-पुलट करने के लिए कम से कम दो स्वरों की अपेक्षा होती है। यथा "सारि" ये दो स्वर यदि हमारे पास हैं तो इनके आरोह क्रम को उलट कर अवरोह क्रम से हम "रिसा" यह दूसरा प्रकार बना सकते हैं। इससे अधिक उलट-पुलट के लिए अब गुंजाइश नहीं, क्योंकि हमारे पास दो ही स्वर हैं और दो स्वरों का क्रम दो ही प्रकार का हो सकता है, इससे अधिक नहीं।

अब इसके आगे चलें और "सारिग" ये तीन स्वर ले लें तो हम कुछ अधिक प्रस्तार बना सकेंगे, क्योंकि एक स्वर बढ़ जाने से उलट-पुलट करने के लिए हमारे पास अधिक गुंजाइश है। सबसे पहले तो हम यही करेंगे कि दो स्वरों वाले दो प्रस्तारों के बाद तीसरा स्वर जोड़ देंगे, जैसे—

२ स्वरों के प्रस्तार	तीसरा जोड़ा हुआ स्वर
सारि	ग
रिसा	ग

किन्तु हम देखते हैं कि उलट पुलट के लिए अभी भी गुंजाइश है। यह उलट-पुलट आगे इसी प्रकार हो सकता है कि जैसे पहले दो बार अंतिम स्वर 'ग' रखा गया है, वैसे ही २ – २ बार 'रि' 'सा' को अन्त में रखा जाए। यदि अन्त में 'रि' रखेंगे तो शुरू के २ स्वर 'साग' बचेंगे और इन्हीं को एक बार आरोह-क्रम में और दूसरी बार अवरोह-क्रम में रखते हुए इनके साथ रि को जोड़कर सागरि और गसारि ये दो प्रकार बन जायेंगे। उसी तरह जब 'सा' को अन्त में रखना होगा तब 'रि' 'ग' इन दो स्वरों को क्रमशः आरोह और अवरोह क्रम में रखकर उनके सामने 'सा' को जोड़ देना होगा। उससे 'रिगसा' और 'गरिसा' ये दो प्रकार बन जायेंगे। इस प्रकार 'ग' 'रि' और 'सा' इन तीनों को बारी-बारी से अन्त में रखते हुए हम प्रत्येक बार दो दो प्रस्तार बना सकते हैं और २×३ यों कुल ६ प्रस्तार तीन स्वरों से बनेंगे।

तीन स्वरों के प्रस्तार में हमने ऊपर देखा कि तीनों स्वरों को बारी बारी से दो दो बार अन्त में रखा जाता है और हमने पहले 'ग', फिर 'रि' और फिर 'सा' को अन्त में रखा। ऐसा क्रम क्यों किया? इससे क्या सुविधा होती है? यह समझ लेने से आगे के सभी प्रस्तार बनाने का मार्ग खुल जायगा।

किसी भी वस्तु के, चाहे वह स्वर हो, गिनाई के अङ्क हों या और कुछ हो, Permutation या व्युत्क्रम-प्रस्तार बनाते समय एक सामान्य नियम ध्यान में रखना पड़ता है कि जो भी सामग्री हमारे पास है, उसका अधिक से अधिक

अंश मूल क्रम में क़ायम रखते हुए और शेष अंश के क्रम को बदलते हुए हमें आगे बढ़ना होता है। जैसे कि सारिग' में हमने दो बार 'ग' को, दो बार 'रि' को और दो बार 'सा' को अन्त में क़ायम रखा और बचे हुए दो-दो स्वरों के क्रम में परिवर्तन करते गए। किसी अंश को क़ायम रखना तभी तक सम्भव है, जब तक कि बचे हुए अंश का क्रम बदलने से नए-नए प्रस्तार बन सकते हों। जहाँ नए प्रकार बनने की गुंजाइश समाप्त हुई, वहीं क़ायम किए हुए अंश को बदल देना पड़ता है। जैसे 'सारग' में हम 'ग' 'रि' या 'सा' को दो से अधिक बार क़ायम नहीं रख सकते क्योंकि उनके अलावा दो दो स्वर ही प्रत्येक बार हमारे पास बचते हैं और दो स्वरों के प्रस्तार दो से अधिक नहीं बन सकते। इसलिए तीसरी बार यदि तीनों में से किसी स्वर को अन्त में क़ायम रखने जाएंगे तो पुराने प्रस्तार का ही दोहराना हो जायगा। इस उदाहरण से यह सामान्य नियम स्पष्ट हुआ होगा कि जब तक नए प्रस्तार बनने की गुंजाइश रहे, तबतक अधिक से अधिक अंश का क्रम क़ायम रखना चाहिए। तीन स्वरों के प्रस्तार में हम एक से अधिक स्वर को क़ायम रख ही नहीं सकते क्योंकि कम से कम दो स्वर तो हमें उलटपुलट करने के लिए चाहिए ही। जब स्वरों की संख्या बढ़ जाय तब एक से अधिक स्वरों को क़ायम रखा जा सकता है।

अधिक से अधिक अंश क़ायम रखने का नियम हमने समझ लिया। अब प्रश्न यह होता है कि पहले कौन-सा अंश क़ायम रखा जाय और बाद में कौन सा। 'सारिग' के प्रस्तार बनाते समय हमने दाहिनी ओर से क़ायम रखना शुरू किया था यानी दाहिनी ओर वाला अन्तिम स्वर 'ग' उसके बाद 'रि' और फिर 'सा', इस क्रम से स्वरों को क़ायम रखा था। यही क्रम अन्य सब स्वर-प्रस्तारों में भी अपनाना होगा अर्थात् दाहिनी ओर के स्वरों को यथासम्भव क़ायम रखते हुए बाईं ओर के शेष स्वरों का क्रम बदलते जाना होगा। प्रश्न हो सकता है कि दाहिनी ओर से ही क्यों क़ायम रखना शुरू किया जाय, बायीं ओर से क्यों नहीं? इसका उत्तर यही है कि स्वरों का आरोह-क्रम पहले क़ायम रखा जाय और अवरोह-क्रम बाद में लगाया जाय। हम जानते हैं कि लिखते समय स्वरों का आरोह क्रम दाहिनी ओर ही पूरा होता है, इसलिए जब आरोह-क्रम को पहले क़ायम रखना है तो दाहिनी ओर से ही क़ायम रखना शुरू करना होगा, और क्रम परिवर्तन बाईं ओर से आरम्भ होगा।

इस प्रकार हमने तीन सामान्य नियम समझ लिए जो संक्षेप में ये हैं:—

१—जितने भी अंश को क़ायम रखते हुए शेष अंश को बदल कर नए प्रस्तार बनाए जा सकें उतने अंश को क़ायम रखना होगा।

२—जहाँ तक हो सके पहले स्वरों का आरोह क्रम रखना होगा और बाद में अवरोह क्रम।

३—दूसरे नियम के आधार पर ही प्रस्तारों को लिखते समय दाहिनी ओर के अंश को पहले क़ायम रखना होगा।

ऊपर के तीन नियमों के आधार पर तीन स्वरों के प्रस्तार बनाने का क्रम तो हमने समझ लिया। उसी प्रकार ४, ५, ६ और ७ स्वरों के प्रस्तार बनाने की क्रमिक विधि भी समझ लें।

'सारिगम'—ये ४ स्वर जब हमारे पास होंगे तब चौथे स्वर यानी 'म' को हम ६ बार क़ायम रख सकेंगे, क्योंकि उसके अलावा हमारे पास ३ स्वर बच जाते हैं और उन तीन स्वरों के हम ६ प्रकार बना सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि 'म' को क़ायम रखते हुए सारिग के ६ प्रकार हमें उसके पूर्व जोड़ देने हैं। ६ से अधिक बार हम 'म' को क़ायम नहीं रख सकेंगे क्योंकि बचे हुए ३ स्वरों को लेकर हम ६ से अधिक प्रकार नहीं बना सकते। उसके बाद 'सारिगम' में से दाहिनी ओर से दूसरे स्वर अर्थात् 'ग' को हम ६ बार क़ायम रखेंगे और बचे हुए ३ स्वरों-'सारिम' के ६ प्रकार उसके पहले जोड़ देंगे। फिर 'रि' को ६ बार क़ायम रखेंगे और सागम के ६ प्रकार उसके पहले जोड़ देंगे। अन्त में 'सा' को क़ायम रखते हुए रिगम के ६ प्रकार उसके पूर्व जोड़ देंगे। इस प्रकार ४ बार हम ६-६ प्रकार बनायेंगे। इसलिए ६ × ४ = २४ प्रकार ही ४ स्वरों में बन सकेंगे।

'सारिगमप'—इन ५ स्वरों के प्रस्तार बनाते समय हम प्रत्येक स्वर को बारी-बारी से २४ बार क़ायम रख सकेंगे क्योंकि हरेक बार बचे हुए ४ स्वरों से हम २४ नये प्रकार बना सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि क्रम से 'प', 'म', 'ग', 'रि' और 'सा' इन ५ स्वरों को क़ायम रख कर बचे हुए ४-४ स्वरों के २४ प्रकार हमें मिल जायँगे।

'सारिगमपध'—ये ६ स्वर लेकर जब हम चलेंगे तब प्रत्येक स्वर क्रम से १२० बार क़ायम रख सकेंगे यानी क्रम से इनमें से एक-एक स्वर को १२० बार क़ायम रखते हुए बचे हुए ५ स्वरों के १२० प्रकार उस क़ायम रखे हुए स्वर के पूर्व जोड़ देंगे। इस प्रकार ६ बार हम नये-नये १२० प्रकार बना सकेंगे और कुल प्रकार १२०×६=७२० बन जायँगे।

'सारिगमपधनि'—इन ७ स्वरों का प्रस्तार करते समय प्रत्येक स्वर को बारी-बारी से ७२० बार क़ायम रख सकेंगे, क्योंकि बचे हुए ६ स्वरों के ७२० प्रकार बना कर हम उसके पूर्व जोड़ सकेंगे। इस प्रकार ७ बार एक-एक स्वर को क़ायम रखते हुए ७२० प्रकार बन सकेंगे और कुल ७२०×७=५०४० प्रकार बनेंगे।

इस प्रकार हमने स्थूल रूप से ७ स्वरों तक के प्रस्तार बनाने की विधि और क्रम को समझ लिया। इस विधि में हमने प्रत्येक स्वर-समूह में से दाहिनी ओर के पहले एक स्वर को क़ायम रखने की बात तो समझ ली। किन्तु स्वरों की संख्या जब ३ से आगे बढ़ जाती है तब दाहिनी ओर के पहले स्वर के अलावा कुछ और स्वर भी क़ायम रखे जाते हैं। ३ स्वरों में तो दाहिनी ओर का केवल पहला ही स्वर क़ायम रह सकता है, क्योंकि बचे हुए २ स्वरों में से किसी को भी हम क़ायम नहीं रख सकते; उनका उलट-पुलट तो करना ही पड़ता है। किन्तु जब हमारे पास ४ स्वर होते हैं तब दाहिनी ओर से पहला स्वर तो हम ६ बार क़ायम रखेंगे ही किन्तु उसके साथ-साथ बचे हुए ३ स्वरों के जो ६ प्रकार जोड़े जायँगे उनमें भी प्रत्येक स्वर २-२ बार दाहिनी ओर रहेगा। जैसे—'म' को क़ायम रखते हुए जब हम सारिग के ६ प्रकार उसके पहले यानी उसके बाईं ओर जोड़ेंगे तब २ बार 'ग', २ बार 'रि' और २ बार 'सा', 'म' के पास बाईं ओर रहेंगे। यानी २-२ बार ये स्वर भी क़ायम रहेंगे। उसी प्रकार ५ स्वर के प्रस्तार में दाहिनी ओर से पहला स्वर जहाँ २४ बार क़ायम रहेगा वहाँ उसके ठीक बाईं ओर वाला स्वर ६ बार क़ायम रहेगा, क्योंकि ४ स्वरों के प्रकार में अन्तिम स्वर ६ बार ही क़ायम रह सकता है। उदाहरण के लिए यदि हमने 'प' को दाईं ओर क़ायम रखा है तो उसके पास ही दाईं ओर से दूसरे नंबर पर ६ बार 'म', ६ बार 'ग', ६ बार 'रि' और ६ बार 'सा' क़ायम रहेंगे। उसके बाद दाहिनी ओर से तीसरे नंबर पर ६ प्रकारों के प्रत्येक समूह में बचे हुए ३ स्वरों में से प्रत्येक स्वर २-२ बार क़ायम रहेगा। सारिगमप का ही उदाहरण फिर से लें तो यह कहना होगा कि दाहिनी ओर से पहले नंबर पर २४ बार 'प', दूसरे नंबर पर ६ बार क्रमशः 'म', 'ग', 'रि', 'सा' और तीसरे नंबर पर बचे हुए ३ स्वरों में से प्रत्येक स्वर २-२ बार क़ायम रहेगा। इसे प्रत्यक्ष रूप से समझने के लिए विद्यार्थी आगे चल कर दिये हुए ५ स्वरों के प्रस्तार को देख लें। उससे पूरी स्पष्टता हो जायगी। उसी प्रकार ६ स्वरों के प्रस्तार में दाईं ओर से पहला स्वर १२० बार, दूसरा स्वर २४ बार तीसरा स्वर ६ बार और बाक़ी बचे हुए स्वरों में से प्रत्येक स्वर २-२ बार क़ायम रहेंगे। ७ स्वरों के प्रस्तार में दाहिनी ओर से पहला स्वर ७२० बार, दूसरा स्वर १२० बार, तीसरा स्वर २४ बार, चौथा स्वर ६ बार और बाक़ी बचे हुए ३ स्वरों में से प्रत्येक स्वर २-२ बार क़ायम रहेंगे।

अब तक हमने यह समझ लिया कि किस क्रम और विधि से स्वरों के प्रस्तार सरलता से बनाए जा सकते हैं। अब यदि हम किसी भी संख्या के स्वरों का कोई एक प्रस्तार-विशेष निकालना चाहें यानी सीधे क्रम से पूरे प्रस्तार न बना कर यदि बीच में से कोई सा भी प्रस्तार बनाना चाहें तो उसके लिए क्या ढंग अपनाना होगा? उसी प्रकार यदि किसी एक प्रस्तार की क्रम-संख्या जानना चाहें तो क्या करना होगा? शास्त्र-ग्रन्थों में ये दो प्रकार के प्रश्न हल करने के लिए "खण्डमेरु" के आधार पर नष्टोद्दिष्ट विधि बताई गई है। 'नष्ट' उसे कहते हैं, जब कि प्रस्तार की संख्या ज्ञात हो और उसका स्वरूप मालूम करना हो। उदाहरण के लिए "सारिगम" इन चार स्वरों के मूल-क्रम का तेईसवाँ प्रस्तार

क्या बनेगा ? इस प्रकार के प्रश्न को 'नष्ट' कहा जाता है। 'उद्दिष्ट' उसे कहते हैं, जब कि प्रस्तार का स्वरूप ज्ञात हो, किन्तु उसकी संख्या अज्ञात हो। जैसे कि "सामपगरि" इस प्रस्तार की संख्या ज्ञात करने के लिए 'उद्दिष्टविधि' का उपयोग होगा। "खण्डमेरु" की आधारभूत गणित-विधि को समझे बिना ही यदि उसका उपयोग किया जाय तो केवल गणित का चमत्कार ही हाथ आएगा। उससे संगीत के प्रत्यक्ष प्रयोग की दृष्टि से कोई ठोस बात विद्यार्थियों के हाथ नहीं लगेगी। इसलिए हमने प्रस्तार-तत्व को समझने के लिए सरल गणित द्वारा "नष्टोद्दिष्ट" की प्रक्रिया नीचे बताई है। उसके बाद "खण्डमेरु" दिखाकर उसकी प्रयोग-विधि समझाई जायगी ताकि विद्यार्थी यह जान सकें कि "खण्डमेरु" द्वारा "नष्टोद्दिष्ट" को हल करने की प्राचीन पद्धति का गणित आधार क्या है। सुविधा के लिए पहले हम 'नष्ट' को हल करने की विधि बता रहे हैं। उसी के आधार पर 'उद्दिष्ट' को समझना बहुत सरल हो जायगा। सुगमता के लिए हम क्रमशः २, ३, ४, ५, ६ और ७ स्वरों को लेंगे और प्रत्येक संख्या में 'नष्ट' को हल करने की विधि ब्यौरेवार समझ लेंगे।

२ स्वर—हम अच्छी तरह समझ चुके हैं कि दो स्वरों को क्रमशः आरोह और अवरोह क्रम में रखने से दो ही प्रस्तार बनते हैं। इसलिए पहला प्रकार आरोही और दूसरा अवरोही होगा।

३ स्वर—हम देख चुके हैं कि तीन स्वरों के प्रस्तार कैसे बनाए जाते हैं। 'ग' 'रि' और 'सा' को क्रमशः दाईं ओर कायम रखते हुए प्रत्येक बार दो दो प्रस्तार बनते हैं, यह हम समझ चुके हैं। इस प्रकार ६ प्रस्तारों को हम दो-दो के तीन वर्गों में बाँट सकते है—पहला 'ग' अन्त वाला, दूसरा 'रि' अन्त वाला और तीसरा 'सा' अन्त वाला वर्ग होगा। अब यदि किसी भी संख्या का प्रस्तार हमें अलग से निकालना हो तो सबसे पहले यह जान लेना चाहिए कि वह संख्या इन तीन वर्गों में से कौन से वर्ग में आती है। इतना जान लेने से दाईं ओर का पहला स्वर हमें ज्ञात हो जाएगा। उदाहरण के लिए यदि हमें तीन स्वरों का पाँचवाँ प्रकार निकालना है तो यह मालूम कर लेना होगा कि पाँच की संख्या का स्थान ऊपर बताए हुए तीन वर्गों में कहाँ आता है। ये तीन वर्ग दो-दो प्रस्तारों के हैं। इसलिए प्रस्तुत संख्या पाँच को दो से भाग देना होगा—

२) ५ (२
  ४
  —
  १

यहाँ भागफल २ आया और शेष १ बचा। इसका यह अर्थ हुआ कि दूसरे वर्ग के बाद यानी तीसरे वर्ग में ५ की संख्या का स्थान है। यदि शेष कुछ न बचता तब तो भागफल के अनुसार दूसरे वर्ग में ही हमारी संख्या रहती, किन्तु १ शेष बचा है, इसलिए ५ को तीसरे समूह में स्थान मिलेगा। "सारिग" इन तीन स्वरों के मूल क्रम को दाईं ओर से गिनने पर तीसरा स्वर 'सा' है। इसलिए पाँच की संख्या तीसरे वर्ग में होने से "सा" को दाईं ओर पहला स्थान मिल जायगा। शेष बचे हुए दो स्वर हैं "रि ग"। प्रस्तार में इनका क्रम जानने के लिए यह समझना होगा कि दो स्वरों के प्रस्तार में से हमें यहाँ पहला चाहिए या दूसरा। इसे जानने का बहुत ही सरल ढंग यह है कि यह देख लें कि प्रस्तुत संख्या सम है या विषम। यदि विषम हो तो दो स्वरों के प्रस्तारों में से पहला ही रहेगा और यदि सम हो तो दूसरा प्रस्तार रहेगा। पहले में आरोही और दूसरे में अवरोही क्रम रहता है, यह हम जानते ही हैं। हमारी प्रस्तुत संख्या ५ विषम है, इसलिए 'रिग' आरोही-क्रम में रहेंगे और पाँचवां प्रस्तार "रि ग सा" बनेगा।

अब हमें ४, ५, ६ और ७ स्वरों के प्रस्तार की 'नष्ट' विधि को देखना है। ऊपर ३ स्वरों के प्रस्तार में 'वर्ग' ज्ञात करने का जो नियम बताया है, उसी का आगे बड़ी संख्या के स्वर-प्रस्तारों में भी उपयोग होगा। इसलिए विस्तार भय से हम पूरा ब्यौरा न देते हुए प्रत्येक प्रस्तार में 'नष्ट' के ज्ञान के लिये उपयोगी गणित-विधि के क्रमिक सोपानों का निर्देश देकर एक-एक उदाहरण देते हुए आगे बढ़ जाएँगे।[1]

---

१. इस प्रसंग में ऊपर पृ. १२० पर दिया हुआ विवरण विद्यार्थी ध्यान में रखें क्योंकि दाईं ओर से पहिली दूसरी आदि संख्या के स्वर जितनी बार जिस प्रस्तार में कायम रहते हैं, उसके अनुसार ही ये सोपान बने हैं।

४ स्वरों के प्रस्तार :—१ ला सोपान—प्रस्तुत सख्या को ६ से भाग दें।
२ रा सोपान—शेष को २ से भाग दें।
३ रा सोपान—सख्या सम है या विषम, यह देखकर तदनुसार शेप दो स्वरों का अवरोही या आरोही क्रम रखें।

उदाहरण—प्र० 'सारिगम' का १९ वा प्रस्तार क्या होगा ?
उ० स्वरों का मूलक्रम = सारिगम
६)१९(३ भागफल ३ है और शेष १ है।
 १८
 १

∴ मूलक्रम में से दाँई ओर से चौथा स्वर प्रस्तार में पहिला स्थान पाएगा। यानी × × × सा। अब शेष १ को २ से भाग देने पर भागफल ० ही आता है। , स्वरों के मूलक्रम में कोई परिवर्तन नहीं आएगा। यानी दाँई ओर से पहिला स्वर 'सा' के पूर्व आएगा— × × म सा। अब शेष स्वर हैं 'रिग', हमारी सख्या विषम है। ये आरोह क्रम में रहेंगे। इस प्रकार 'रिगमसा' यह प्रस्तार बना।

'नष्ट विधि' में एक बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए और वह यह कि स्वरों के मूलक्रम को सदा सामने रखना होगा, क्योंकि उस के बिना प्रस्तार बनाना असभव है और मूलक्रम में से जिस जिस स्वर को प्रस्तार में स्थान मिलता जाए, उसे तुरन्त काटते जाएँ, क्योंकि शेष स्वरों का क्रम देखना ही फिर अभिप्रेत रह जाता है। जिस स्वर को प्रस्तार में स्थान मिल चुका है, वह फिर मूलक्रम में गिनाई में कभी नहीं आना चाहिए। ऊपर इसी क्रम से 'सारिगम' के मूलक्रम को गिना गया है।

५ स्वरों के प्रस्तार—१ ला सोपान—प्रस्तुतसख्या को २४ से भाग दें।
२ रा सोपान—शेष को ६ से भाग दें।
३ रा सोपान—शेष को २ से भाग दें।
४ था सोपान—सख्या सम है या विषम यह देख लें।

उदाहरण—सारिगमप का ७८ वां प्रस्तार।
२४)७८(३ ∴ चौथे वर्ग में सख्या का स्थान है।
 ७२
 ६
∴ × × × × रि

शेष ६ है, इसलिए ६ से भाग देने पर भागफल १ आया, शेष कुछ नहीं। ∴ दाईं ओर से पहिला स्वर ही 'रि' के पूर्व स्थान पाएगा। × × × परि। शेष कुछ नहीं बचा है, इसलिए ६ को ही पुन २ से भाग देने पर ३ भागफल आएगा, तदनुसार दाईं ओर से तीसरा स्वर यानी 'सा' प्रस्तार में स्थान पाएगा। × × सापरि। सख्या सम है, अत शेप 'गम' का अवरोह क्रम रहेगा और 'मगसापरि' यह प्रस्तार बनेगा।

६ स्वरों के प्रस्तार—१ ला सोपान—सख्या को १२० से भाग दें।
२ रा सोपान—शेष को २४ से भाग दें।
३ रा सोपान—शेष को ६ से भाग दें।
४ था सोपान—शेष को २ से भाग दें।
५ वाँ सोपान—सख्या सम है या विषम, यह देख लें।

उदाहरण—सारिगमपध का २२९ वाँ प्रकार।

१२०) २२९ (१ दाँईं ओर से दूसरे स्वर को प्रस्तार में पहिला स्थान रहेगा।
१२० ∴ × × × × × प।
१०९

अब २४) १०९ (४ दाँईं ओर से पाँचवें स्वर को प्रस्तार में 'प' के पूर्व स्थान मिलेगा।
९६ ∴ × × × × सा प।
१३

अब ६) १३ (२ ∴ मूल क्रम से तीसरे स्वर को लेना है। × × × गसाप। अब शेष केवल
१२ १ है जिसे २ से भाग देने पर शून्य ही भागफल आएगा। ∴ दाईं ओर से
१ पहिला स्वर ही लेंगे। × × धगसाप। संख्या विषम है, ∴ 'रिम' का आरोह-क्रम रहेगा यानी 'रिमधगसाप' यह प्रस्तार बनेगा।

७ स्वरों के प्रस्तार—१ ला सोपान—प्रस्तुत संख्या को ७२० से भाग दें।
२ रा सोपान—शेष को १२० से भाग दें।
३ रा सोपान—शेष को २४ से भाग दें।
४ था सोपान—शेष को ६ से भाग दें।
५ वाँ सोपान—शेष को २ से भाग दें।
६ ठा सोपान—संख्या सम है या विषम यह देख लें।

उदाहरण—सारिगमपधनि का ७७७ वाँ प्रस्तार।

७२०) ७७७ (१ ∵ मूल क्रम में से दूसरे स्वर को लेना होगा—× × × × × × ध। अब
७२० १२०) ५७ (० ∴ मूलक्रम में से पहिला स्वर ही लें।
५७ × × × × × निध।

अब २४) ५७ (२ ∴ मूलक्रम में से तीसरा स्वर लेना होगा। × × × × गनिध।
४८
९

अब ६) ९ (१ ∴ मूल क्रम में से दूसरा स्वर लेंगे। × × × मगनिध।
६
३

अब २) ३ (१ ∴ मूल क्रम में से दूसरा स्वर लें। × × रिमगनिध। अब संख्या विषम है, इसलिए 'साप'
२ आरोह-क्रम में रहेंगे। सापरिमगनिध।
१

'नष्ट' को ज्ञात करने की विधि के अनुसार ही 'उद्दिष्ट' को भी हल किया जा सकता है। हाँ, 'उद्दिष्ट' में हमें भाग देने की बजाय गुणा करना होगा। एक उदाहरण से यह बात समझ में आ जाएगी।

मान लें कि हमें ऊपर बनाए हुए संपूर्ण प्रस्तार सापरिमगनिध की संख्या ज्ञात करना है। मूलक्रम है सारिगमपधनि।

अब प्रस्तार में दाईं ओर से प्रत्येक स्वर को लेते हुए मूलक्रम में उसका स्थान जाँचते चलें। संक्षेप में इस विधि को इस प्रकार दिखाया जा सकता है :—

प्रस्तार में दाईं ओर से स्वरों का क्रम			मूलक्रम (दाएँ से बायें)	प्रस्तार-संख्या
पहिला	...	ध	दूसरा	१×७२०=७२०
दूसरा	...	नि	पहिला	० = ०
तीसरा	...	ग	तीसरा	२× २४= ४८
चौथा	...	म	दूसरा	१× ६= ६
पाँचवाँ	...	रि	दूसरा	१× २= २
छठाँ	...	प	पहिला	० = ०
सातवाँ	...	सा	पहिला	१× १= १
				७७७

ऊपर स्पष्ट है कि 'नष्ट' को ज्ञात करने के लिए जिस प्रकार हम प्रस्तुत संख्या को क्रमशः भाग देते हैं, उसी क्रम से 'उद्दिष्ट' को ज्ञात करने के लिये गुणा देना होता है। प्रस्तार के स्वरों को दाईं ओर से देखते हुए मूलक्रम में उनका जितनवाँ स्थान मिले, उसके अनुसार स्वरों की निश्चित संख्या से बनने वाले प्रस्तारों के 'वर्ग की' संख्या को गुणा देना होता है। प्रस्तुत उदाहरण में कुल सात स्वर हैं। प्रस्तार में दाईं ओर से पहिला स्वर 'ध' मूलक्रम में दूसरा है। इसका अर्थ हुआ कि ७२० प्रस्तारों का पहिला 'वर्ग' समाप्त हो चुका है; ∴ ७२०×१=७२० संख्या को हमने ले लिया। अब छः ही स्वर शेष रहे। छः स्वरों के प्रस्तार में १२० प्रस्तारों के छः वर्ग होते हैं। किन्तु यहाँ प्रस्तुत प्रस्तार में जो 'नि' है वह मूलक्रम में पहिला ही है। अतः १२० वाले पहिले वर्ग में ही हमारी संख्या है। जब तक १२० पूरे नहीं हो जाते तब तक यहाँ शून्य ही रहेगा। अब ५ स्वर शेष रहे, इसलिये हमने २४ प्रस्तारों वाले 'वर्ग' को गिनाई में लिया। फिर चार स्वर रह जाने पर ६ प्रस्तारों का 'वर्ग', तीन रह जाने पर २ प्रस्तारों का वर्ग और एक स्वर रह जाने पर १ संख्या गिनाई में ली गई। इस प्रकार 'उद्दिष्ट' विधि में भी 'प्रस्तार-वर्गों' को उसी क्रम से लेना होता है, जैसे कि 'नष्ट' में दिखाया गया है। आशा है इतने स्पष्टीकरण से विद्यार्थी 'उद्दिष्ट' को अपने आप हल कर सकेंगे। 'नष्ट' का हल ठीक निकला या नहीं यह जाँचने के लिये उलट क्रिया द्वारा उद्दिष्ट निकाल कर देख सकते हैं और उसी प्रकार 'उद्दिष्ट' का हल ठीक हुआ या नहीं यह जाँचने के लिए 'नष्ट' निकाल सकते हैं।

अब 'खण्डमेरु' दिखा कर गणित विधि के इस ब्यौरे को हम समाप्त करेंगे। खण्डमेरु इस प्रकार है :—

१ सा	० रि	० ग	० म	० प	० ध	० नि
	१	२	६	२४	१२०	७२०
		४	१२	४८	२४०	१४४०
			१८	७२	३६०	२१६०
				९६	४८०	२८८०
					६००	३६००
						४३२०

इस खण्डमेरु के बारे में निम्नोक्त बातें ध्यान में रखनी चाहिएँ:—

(१) इसे विभिन्न संख्या के स्वरों के प्रस्तारों में बनने वाले 'वर्गों' के आधार पर ही बनाया गया है।

(२) ऊपर की पंक्ति में बाईं से दाईं ओर के खाने स्वरों की संख्या के द्योतक हैं और उससे नीचे की ओर के खाने 'प्रस्तार-वर्ग' के द्योतक हैं। जैसे १ स्वर का एक ही प्रस्तार होता है। इसलिए पहिले खाने के नीचे और कोई खाना नहीं है। दो स्वरों के प्रस्तार के दो वर्ग होते हैं, अतः ऊपर से नीचे को दो खाने हैं। तीन स्वरों के प्रस्तार में तीन वर्गों के द्योतक तीन खाने हैं। इसी क्रम से आगे खानों की संख्या नीचे सात तक बढ़ाई गई है।

(३) ऊपर से नीचे की ओर खानों में लिखी गई संख्याएं प्रत्येक 'प्रस्तार-वर्ग' के अन्तर्गत प्रस्तार संख्या को दिखाती हैं। यहाँ साथ ही यह भी समझ लेना चाहिए कि ऊपर की पंक्ति में बाईं से दाईं ओर पहिले खाने के बाद सब खानों में शून्य क्यों रखा गया है। इस का कारण यही है कि एक स्वर का तो एक ही प्रस्तार होता है।, इसलिए १ रख दिया गया। उस के बाद दो स्वरों के दो प्रस्तार हैं और दो ही 'वर्ग' हैं, क्योंकि एक बार एक स्वर दोई ओर रहेगा और दूसरी बार दूसरा। इसलिए नीचे की ओर दूसरे खाने में १ रखा गया है, पहिले खानों में शून्य रखने का अभिप्राय यह है कि किसी भी संख्या के स्वरों के प्रस्तार के प्रथम 'वर्ग' के अन्तर्गत जितने प्रस्तार आते हैं उन सब को पहिले खाने में ले लिया गया है। उदाहरण के लिए ३ स्वरों के प्रस्तार में दो-दो प्रस्तारों के तीन वर्ग बनते हैं। पहिले वर्ग के दो प्रस्तार पूरे होने के बाद ही दूसरे 'वर्ग' का आरंभ माना जा सकता है। इसलिए ऊपर से पहिले खाने को पहिले 'वर्ग' का द्योतक मान कर उसमें शून्य रखा गया है।

(४) नीचे की ओर के सभी खानों में लिखी हुई प्रस्तार-संख्या को बांई ओर की तरफ़ तिरछी रेखा के साथ २ जोड़ते चलें तो प्रत्येक संख्या के स्वरों की कुल प्रस्तार-संख्या मिल जाएगी।

"खण्डमेरु" पर नष्ट और उद्दिष्ट ज्ञात करने की विधि दो एक उदाहरणों से स्पष्ट हो जाएगी। पहिले 'नष्ट' को ले लें। मान लें 'सारिगमप' इन ५ स्वरों का १०९ वाँ प्रस्तार निकालना है। सब से पहले ऊपर की पंक्ति में बांएं से दाएं पाँचवें खाने तक गिन लें। अब नीचे की ओर उस खाने में चिह्न कर लें (शास्त्र की भाषा में लोष्टक या कंकड़ डाल लें), जिस की प्रस्तार-संख्या हमारी प्रस्तुत संख्या के सब से अधिक निकट हो। इसी प्रकार बांईं ओर बढ़ते हुए ऊपर से नीचे प्रत्येक पंक्ति में ऐसे खाने को चिह्नित करें जिस से पहले खाने तक पहुंच कर कुल खानों की प्रस्तार-संख्याओं का जोड़ १०९ बन जाए। इस प्रकार निम्नलिखित खानों में चिन्ह लगेंगे :—

बाँएँ से दाँएँ पहिली पंक्ति में खानों की क्रम संख्या — ५ - ४ - ३ - २ - १

दाँएँ से बाँएँ क्रम-संख्या— १ - २ - ३ - ४ - ५

ऊपर से नीचे की ओर चिन्हित खानों की क्रम-संख्या— ५ - ३ - १ - १ - १

चिन्हित खानों की प्रस्तार-संख्या— ९६ + १२ + ० - ० + १ = १०९

अब स्वरों का मूल-क्रम है—सारिगमप। चिन्हित खानों की क्रम-संख्या के अनुसार इन स्वरों का क्रम बैठा देने से प्रस्तार का स्वरूप बन जाएगा यथा—दाईं ओर से पहला चिन्हित खाना पाँचवाँ है, ∴ मूल क्रम का दाँए से बाँए पाँचवा स्वर प्रस्तार में दाईं ओर सर्वप्रथम रहेगा। × × × × सा। दाईं ओर से दूसरे खाने के नीचे तीसरा खाना चिन्हित है—∴ × × × गसा, शेष सभी खानों में पहिला खाना ही चिन्हित है, अतः शेष स्वरों का मूल क्रम ही कायम रहेगा—'रिमपगसा' यह प्रस्तार बनेगा।

अब 'उद्दिष्ट' विधि का एक उदाहरण ले लें। मान लें 'सापधमगरि' इस प्रस्तार की संख्या ज्ञात करना है। सबसे पहले स्वरों का मूल-क्रम लिख लें = 'सारिगमपध'। अब खण्डमेरु के ऊपर की पंक्ति में बाँए से दाँए छठे खाने तक गिन लें। अब प्रस्तार में दाँए से बाँए की ओर बढ़ते हुए प्रत्येक स्वर का मूलक्रम में क्रमिक स्थान देखते जाएँ और तदनुसार खण्डमेरु में दाँए से बाँए की ओर बढ़ते हुए ऊपर से नीचे की ओर के खानों में चिन्ह डालते जाएँ, अन्त में चिन्हित खानों की प्रस्तार-संख्या को जोड़ लें। प्रस्तुत उदाहरण में निम्नलिखित खानों में चिन्ह पड़ेंगे।

खण्डमेरु में बाँएँ से दाएँ खानों की क्रम-संख्या— ६ - ५ - ४ - ३ - २ - १

दाँएँ से बाँएँ क्रम-संख्या— १ - २ - ३ - ४ - ५ - ६

चिन्हित खानों की क्रम संख्या ऊपर से नीचे की ओर—४ - ४ - ३ - १ - १ - १

चिन्हित खानोंकी प्रस्तार-संख्या— ३६० + ७२ + १२ + ० + ० + १ = ४४५

ऊपर के ब्यौरे से स्वर-प्रस्तार बनाने की क्रमिक विधि और किसी भी संख्या का प्रस्तार अथवा प्रस्तार की संख्या ज्ञात करने का ढंग स्पष्ट हुए होंगे। संगीत के प्रत्यक्ष प्रयोग की दृष्टि से नष्टोद्दिष्ट की गणित विधि का उतना महत्त्व नहीं है, जितना स्वर-प्रस्तार की क्रमिक विधि का। हम जानते हैं कि अलंकार के आधार पर तान बनती है क्योंकि अलंकार स्वरों की क्रमिक गति बताता है और तान उस क्रमिक गति को राग के नियमानुसार उपयोग में लाने से बनती है। इस दृष्टि से स्वर-प्रस्तार को भी तान-क्रिया के आधारभूत टुकड़ों के रूप में समझा जा सकता है। उदाहरण के लिए "सागरि" यह स्वर-प्रस्तार किसी भी राग के नियमानुसार तान का रूप ले सकता है। कल्याण में निगरि, रिमग, गरम्, इत्यादि

टुकड़ों की तान बनाई जा सकती है। ऊपर लिखे ढंग से स्वर-प्रस्तार बनाने की सरल विधि विद्यार्थियों को समझ में आ जाने से तान-विस्तार की चाभी हाथ में आ जायगी और केवल तान ही क्यों, आलाप में भी तो स्वर-प्रस्तार के टुकड़े यथास्थान उपयोग में लाए ही जाते हैं। प्रस्तार का यह ढंग वश में आ जाने से विस्तार का अनन्त भण्डार हाथ लग जायगा। विभिन्न रागों के शुद्ध विकृत स्वरों की योजना, आरोहावरोह, अल्पत्व-बहुत्व आदि के नियम ध्यान में रखते हुए प्रस्तार-विधि का यथोचित सहारा लेकर अभ्यास करने से विस्तार के लिए मार्ग प्रशस्त हो जायगा। प्रस्तार का यही साक्षात् उपयोग है जिसका महत्त्व विद्यार्थियों को अवश्य ध्यान में लेना चाहिए। गणित का उपयोग यहाँ केवल इतना ही है कि उससे प्रस्तार के ढंग की उलझन दूर हो जाती है, किसी प्रकार के दोहराए जाने का भय नहीं रहता और पूरे प्रस्तार आँखों के सामने दर्पण की भाँति स्पष्ट हो जाते हैं। संगीत के अभ्यास के समय विद्यार्थी को ये प्रस्तार लिखकर सामने रखने की भी आवश्यकता न होगी, यदि ऊपर लिखी विधि को वह भली भाँति पचा चुका होगा।

इस प्रसङ्ग में एक घटना स्मरण हो आती है, जिसका यहाँ उल्लेख अप्रासंगिक न होगा। एक बार अखिल बंगाल संगीत कौनफ्रेंस के संस्थापक और सञ्चालक माननीय स्व० भूपेनदा अर्थात् मेरे प्रगाढ़ मित्र और पूज्यपाद गुरुदेव पं० विष्णु दिगम्बरजी के अनन्य भक्त श्रीमान बाबू भूपेन्द्र कृष्ण घोष (पाथुरिया घाट, कलकत्ता) के निवास स्थान पर मरहूम सितार नवाज़ इम्दाद खाँ साहब के पोते और मेरे मरहूम अजीज़ दोस्त सितार नवाज़ इनायत खाँ के पुत्र चि० विलायत खाँ अपने पिता की मृत्यु के बाद जब कि वे प्रायः बारह साल की उम्र के बच्चे थे, मिलने के लिए आए। उस समय विलायत खाँ और उनके छोटे भाई, इन बालकों की शिक्षा दीक्षा का विचार करते हुए कलकत्ते में रहने वाले एक सितार-वादक...... से शिक्षा का प्रबन्ध करने की बात कही गयी। तब अपने खानदान और घराने की परम्परा का स्वाभिमान रखते हुए चि० विलायत खाँ ने कहा—"मेरे बाबा ने ५०४० तानें लिखकर रख छोड़ी हैं। उन्हीं को रटकर भिन्न २ रागों में बिठाकर हम अपनी ही परम्परा के अनुसार रियाज़ करते रहेंगे, किसी सितारिये की शागिर्दी हमें नहीं करनी है। रागदारी और अन्य बातों की जानकारी (हमारी तरफ इशारा करके) आप जैसे हमारे वालिद के खास दोस्त से मिलती रहेगी, लेते रहेंगे।" इस कथन के अनुसार चि० विलायत खाँ ने कितनी तरक्की की है वह दुनियां से छिपा नहीं है। यह घटना स्वर-प्रस्तार के महत्त्व को स्पष्ट करती है।

स्वर-प्रस्तार के आधार पर स्वरों के उलट पुलट प्रयोग द्वारा जो विविधता उपजाई जाती है, तद्वत् स्वरों का अवस्था भेद, उनका अन्तराल-भेद, स्थान-भेद, उच्चार-भेद, काकु-आदि प्रयोग-भेद इत्यादि अनेक तत्त्वों से राग को रंजाया जाता है, भाव उपजाया जाता है और रस का आविर्भाव किया जाता है। जो लोग रस के इन उपादानों की उपेक्षा करके केवल खण्डमेरु के प्रयोग को ही सर्वस्व मान कर जीवन बिता देते हैं, वे रस-परिपाक से वंचित रह जाते हैं और अर्थहीन स्वर-प्रस्तार में डूबे रहकर संगीत के आनन्द से स्वयं भी अछूते रहते हैं और श्रोताओं को भी अछूता रखते हैं।

इस प्रकरण में हमने विशेष रूप से प्रस्तार-तत्त्व की चर्चा की। उपसंहार में यह विशेष रूप से पुनः उल्लेखनीय है कि गणित- सिद्ध प्रस्तारों का राग के नियमानुकूल, और रस-भावानुकूल उपयोग ही अपेक्षित है। अन्यथा कोरे गणित के अनुसार यदि स्वर प्रस्तार को क्रमशः गाने बजाने लगें, तो नीरस और यान्त्रिक स्वर योजना की ही सृष्टि होगी और संगीत से रञ्जकता तिरोहित हो जाएगी। इसलिए गणित की उपयोगिता की मर्यादा को विद्यार्थी कभी भूलें नहीं। एक और बात की ओर ध्यान दिलाना यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है। स्वर-प्रस्तार के आधार पर अलंकार या तान की रचना हो सकती है, यह हम देख चुके हैं। तानों द्वारा त्वरित गति और विविध स्वर रचनाएँ दिखाने में केवल गले की तैयारी, उलटपुलट फिरने में कण्ठ का प्रभुत्व और कुछ अंश में अद्भुत रस के चमत्कार का ही दर्शन होता है। जब गमक की तानों का प्रयोग किया जाता है, तब कुछ अंश में भयानक रस की निष्पत्ति होती-सी दिखाई देती है। किन्तु अन्य रसों की अभिव्यक्ति के लिए तान-प्रयोग उपयोगी नहीं है। इसलिए स्वर प्रस्तार का, भिन्न भिन्न रूप से छोटे २ टुकड़ों द्वारा आलाप में यथा-स्थान, भावानुकूल उच्चार के साथ उपयोग करना चाहिए। जो गुणिजन हैं वे इस रूप में उनका उपयोग कर भी रहे हैं, किन्तु

आजकल इन प्रस्तारों से बनी हुई तानों की ओर ही अधिक झुकाव हो गया है। इस अनर्गल प्रवृत्ति के लिए मर्यादा बाँधना बहुत आवश्यक है, क्योंकि सभी रागों में एक ही तरह से द्रुतगति की तानों का उपयोग होने के कारण आज जनता ऊब कर इसे गले की कसरत कहने लगी है और ऐसे संगीत से असन्तुष्ट होकर उसके प्रति रुचि और आकर्षण खोती जा रही है। इस प्रसङ्ग में 'प्रणव-भारती' का सप्तम अध्याय द्रष्टव्य है।

नीचे सातों स्वरों के सभी समूहों यानी Combinations के प्रस्तार यानी Permutations (व्युत्क्रम प्रकार) दिए जा रहे हैं। इन्हें देखने से ऊपर समझाई हुई गणित विधि अधिक स्पष्ट हो जायगी और समग्र प्रस्तार-क्षेत्र को एक ही दृष्टि में देख जाना सम्भव होगा।

आगे दिये हुए स्वर प्रस्तारों में संख्या देने का जो क्रम रखा गया है उसे पाठक अवश्य ध्यान में रखें। प्रस्तारों के वर्ग के अनुसार निम्नलिखित क्रम से संख्या दी गई है।

स्वर संख्या	वर्ग के अनुसार प्रस्तार संख्या
४	६, १२, १८, २४
५	२४, ४८, ७२, ९६, १२०
६	२४, ४८, ७२, ९६, १२०, दूसरी बार इसी क्रम से १२० पूरे होने पर २४०, तीसरी बार ३६०, चौथी बार ४८०, पाँचवी बार ६०० और छठी बार ७२०।
७	७२० तक ६ स्वरों के प्रस्तार के अनुसार, उसी क्रम से दूसरे ७२० पूरे होने पर १४४०, फिर २१६०, फिर २८८०, फिर ३६००, फिर ४३२० और फिर ५०४०।

स्वरान्तरस्वरप्रस्तार (चार स्वरों के)—(१) सारिगम, रिसागम, सागरिम, गसारिम, रिगसाम, गरिसाम[६], सारिमग, रिसामग, सामरिग, मसारिग, रिमसाग, मरिसाग,[१२] सागमरि, गसामरि, सामगरि, मसागरि, गमसारि, मगसारि[१८], रिगमसा, गरिमसा, रिमगसा, मरिगसा, गमरिसा, मगरिसा[२४]. (२) सारिगप, रिसागप, सागरिप, गसारिप, रिगसाप, गरिसाप[६], सारिपग, रिसापग, सापरिग, पसारिग, रिपसाग, परिसाग[१२], सागपरि, गसापरि, सापगरि, पसागरि, गपसारि, पगसारि[१८], रिगपसा, गरिपसा, रिपगसा, परिगसा, गपरिसा, पगरिसा[२४]. (३) सारिगध, रिसागध, सागरिध, गसारिध, रिगसाध, गरिसाध[६], सारिधग, रिसाधग, साधरिग, धसारिग, रिधसाग, धरिसाग[१२], सागधरि, गसाधरि, साधगरि, धसागरि, गधसारि, धगसारि[१८], रिगधसा, गरिधसा, रिधगसा, धरिगसा, गधरिसा, धगरिसा[२४]. (४) सारिगनि, रिसागनि, सागरिनि, गसारिनि, रिगसानि, गरिसानि[६], सारिनिग, रिसानिग, सानिरिग, निसारिग, रिनिसाग, निरिसाग, सागनिरि, गसानिरि, सानिगरि, निसागरि, गनिसारि, निगसारि[१८], रिगनिसा, गरिनिसा, रिनिगसा, निरिगसा, गनिरिसा, निगरिसा[२४]. (५) सारिमप, रिसामप, सामरिप, मसारिप, रिमसाप, मरिसाप,[६] सारिपम, रिसापम, सापरिम पसारिम, रिपसाम, परिसाम,[१२] सामपरि, मसापरि, सापमरि, पसामरि, मपसारि, पमसारि,[१८] रिमपसा, मरिपसा, रिपमसा, परिमसा, मपरिसा पमरिसा[२४], (६) सारिमध, रिसामध, सामरिध, मसारिध, रिमसाध, मरिसाध,[६] सारिधम, रिसाधम, साधरिम, धसारिम, रिधसाम, धरिसाम,[१२] सामधरि, मसाधरि, साधमरि, धसामरि, मधसारि, धमसारि[१८], रिमधसा, मरिधसा, रिधमसा, धरिमसा, मधरिसा. धमरिसा.[२४] (७) सारिमनि, रिसामनि, सामरिनि, मसारिनि, रिमसानि, मरिसानि,[६] सारिनिम, रिसानिम, सानिरिम, निसारिम, रिनिसाम, निरिसाम,[१२] सामनिरि, मसानिरि, सानिमरि, निसामरि, मनिसारि निमसारि,[१८] रिमनिसा, मरिनिसा, रिनिमसा, निरिमसा, मनिरिसा, निमरिसा.[२४] (८) सारिपध, रिसापध, सापरिध, पसारिध, रिपसाध, परिसाध,[६] सारिधप, रिसाधप, साधरिप, धसारिप, रिधसाप, धरिसाप[१२], सापधरि, पसाधरि, साधपरि, धसापरि, पधसारि, धपसारि[१८], रिपधसा, परिधसा, रिधपसा, धरिपसा, पधरिसा, धपरिसा[२४]. (९) सारिपनि, रिसापनि, सापरिनि, पसारिनि, रिपसानि, परिसानि,[६] सारिनिप, रिसानिप, सानिरिप, निसारिप, रिनिसाप, निरिसाप[१२], सापनिरि, पसानिरि, सानिपरि, निसापरि, पनिसारि, निपसारि[१८], रिपनिसा, परिनिसा, रिनिपसा, निरिपसा, पनिरिसा, निपरिसा,[२४] (१०) सारिधनि, रिसाधनि, साधरिनि, धसारिनि, रिधसानि धरिसानि,[६] सारिनिध, रिसानिध, सानिरिध, निसारिध, रिनिसाध, निरिसाध[१२], साधनिरि, धसानिरि, सानिधरि, निसाधरि, धनिसारि, निधसारि[१८], रिधनिसा, धरिनिसा, रिनिधसा, निरिधसा, धनिरिसा, निधरिसा[२४], (११) सागमप, गसामप, सामगप, मसागप, गमसाप, मगसाप,[६] सागपम, गसापम, सापगम, पसागम, गपसाम, पगसाम,[१२] सामपग, मसापग, सापमग, पसामग, मपसाग, पमसाग[१८], गमपसा, मगपसा, गपमसा, पगमसा, मपगसा, पमगसा.[२४] (१२) सागमध, गसामध, सामगध, मसागध, गमसाध, मगसाध,[६] सागधम, गसाधम, साधगम, धसागम, गधसाम, धगसाम,[१२] सामधग, मसाधग, साधमग, धसामग, मधसाग, धमसाग,[१८] गमधसा, मगधसा, गधमसा, धगमसा, मधगसा, धमगसा.[२४] (१३) सागमनि, गसामनि, सामगनि, मसागनि, गमसानि, मगसानि,[६] सागनिम, गसानिम, सानिगम, निसागम, गनिसाम, निगसाम,[१२] सामनिग, मसानिग, सानिमग, निसामग, मनिसाग, निमसाग[१८], गमनिसा, मगनिसा, गनिमसा, निगमसा, मनिगसा, निमगसा.[२४]

मपगरिध, पमगरिध,[२४] रिगमधप, गरिमधप, रिमगधप, मरिगधप, गमरिधप, मगरिधप, रिगधमप,
गरिधमप, रिधगमप, धरिगमप, गधरिमप, धगरिमप, रिमधगप, मरिधगप, रिधमगप, धरिमगप,
मधरिगप, धमरिगप, गमधरिप, मगधरिप, गधमरिप, धगमरिप, मधगरिप, धमगरिप,[४८] रिगपधम,
गरिपधम, रिपगधम, परिगधम, गपरिधम, पगरिधम, रिगधपम, गरिधपम, रिधगपम, धरिगपम,
गधरिपम, धगरिपम, रिपधगम, परिधगम, रिधपगम, धरिपगम, पधरिगम, धपरिगम, गपधरिम,
पगधरिम, गधपरिम, धगपरिम, पधगरिम, धपगरिम,[७२] रिमपधग, मरिपधग, रिपमधग, परिमधग,
मपरिधग, पमरिधग, रिमधपग, मरिधपग, रिधमपग, धरिमपग, मधरिपग, धमरिपग, रिपधमग,
परिधमग, रिधपमग, धरिपमग, पधरिमग, धपरिमग, मपधरिग, पमधरिग, मधपरिग, धमपरिग,
पधमरिग, धपमरिग,[९६] गमपधरि, मगपधरि, गपमधरि, पगमधरि, मपगधरि, पमगधरि, गमधपरि,
मगधपरि, गधमपरि, धगमपरि, मधगपरि, धमगपरि, गपधमरि, पगधमरि, गधपमरि, धगपमरि,
पधगमरि, धपगमरि, मपधगरि, पमधगरि, मधपगरि, धमपगरि, पधमगरि, धपमगरि.[१२०] (१७) रिगमपनि,
गरिमपनि, रिमगपनि, मरिगपनि, गमरिपनि, मगरिपनि, रिगपमनि, गरिपमनि, रिपगमनि, परिगमनि,
गपरिमनि, पगरिमनि, रिमपगनि, मरिपगनि, रिपमगनि, परिमगनि, मपरिगनि, पमरिगनि, गमपरिनि,
मगपरिनि, गपमरिनि, पगमरिनि, मपगरिनि, पमगरिनि,[२४] रिगमनिप, गरिमनिप, रिमगनिप, मरिगनिप,
गमरिनिप, मगरिनिप, रिगनिमप, गरिनिमप, रिनिगमप, निरिगमप, गनिरिमप, निगरिमप, रिमनिगप,
मरिनिगप, रिनिमगप, निरिमगप, मनिरिगप, निमरिगप, गमनिरिप, मगनिरिप, गनिमरिप, निगमरिप,
मनिगरिप, निमगरिप,[४८] रिगपनिम, गरिपनिम, रिपगनिम, परिगनिम, गपरिनिम, पगरिनिम, रिगनिपम,
गरिनिपम, रिनिगपम, निरिगपम, गनिरिपम, निगरिपम, रिपनिगम, परिनिगम, रिनिपगम, निरिपगम,
पनिरिगम, निपरिगम, गपनिरिम, पगनिरिम, गनिपरिम, निगपरिम, पनिगरिम, निपगरिम,[७२] रिमपनिग,
मरिपनिग, रिपमनिग, परिमनिग, मपरिनिग, पमरिनिग, रिमनिपग, मरिनिपग, रिनिमपग, निरिमपग,
मनिरिपग, निमरिपग, रिपनिमग, परिनिमग, रिनिपमग, निरिपमग, पनिरिमग, निपरिमग, मपनिरिग,
पमनिरिग, मनिपरिग, निमपरिग, पनिमरिग, निपमरिग,[९६] गमपनिरि, मगपनिरि, गपमनिरि, पगमनिरि,
मपगनिरि, पमगनिरि, गमनिपरि, मगनिपरि, गनिमपरि, निगमपरि, मनिगपरि, निमगपरि, गपनिमरि,
पगनिमरि, गनिपमरि, निगपमरि, पनिगमरि, निपगमरि, मपनिगरि, पमनिगरि, मनिपगरि, निमपगरि
पनिमगरि, निपमगरि.[१२०] (१८) रिगमधनि, गरिमधनि, रिमगधनि, मरिगधनि, गमरिधनि, मगरिधनि,
रिगधमनि, गरिधमनि, रिधगमनि, धरिगमनि, गधरिमनि, धगरिमनि, रिमधगनि, मरिधगनि, रिधमगनि,
धरिमगनि, मधरिगनि, धमरिगनि, गमधरिनि, मगधरिनि, गधमरिनि, धगमरिनि, मधगरिनि, धमगरिनि,[२४]
रिगमनिध, गरिमनिध, रिमगनिध, मरिगनिध, गमरिनिध, मगरिनिध, रिगनिमध, गरिनिमध, रिनिगमध,
निरिगमध, गनिरिमध, निगरिमध, रिमनिगध, मरिनिगध, रिनिमगध, निरिमगध, मनिरिगध, निमरिगध,
गमनिरिध, मगनिरिध, गनिमरिध, निगमरिध, मनिगरिध, निमगरिध,[४८] रिगधनिम, गरिधनिम, रिधगनिम,
धरिगनिम, गधरिनिम, धगरिनिम, रिगनिधम, गरिनिधम, रिनिगधम, निरिगधम, गनिरिधम, निगरिधम,

द्वितीय खण्ड

(क्रियागत)

राग विहागड़ा

आरोहावरोह—नि़ सा ग म प नि सां नि ध, नि़ध – प, धग – मग रि – सा। अथवा—नि़ सा ग म प ध नि़ ध – प, गमपनिसांनिध, नि़ ध – प, पम, पग, मगरि – सा।

जाति—षाडव-संपूर्ण।

ग्रह—विहाग अंग दिखाते समय निषाद और खमाज अंग दिखाते समय गान्धार।

अंश—विहाग अंग की अभिव्यक्ति के लिए गान्धार और खमाज अंग के लिए कोमल निषाद। अन्य स्वर अनुगामी।

न्यास—पंचम।

अपन्यास—गान्धार।

विन्यास—मध्य षड्ज।

मुख्य अंग—गमपधनि़ – ध – प, गमग रि – सा।

समय—रात्रि के प्रथम प्रहर का अन्त।

रस—शृङ्गार।

भाव—कथोपकथन, आत्मनिवेदन।

प्रकृति—मध्या – धीरा।

विशेष विवरण

यह राग विहाग में गमपधनि़ध – प, इस खमाज की तान को मिलाने से और विहाग के नियमों में कुछ अल्प परिवर्तन करने से विहागड़ा कहलाता है। विहाग के आरोह में ऋषभ धैवत का समूचा त्याग होता है और अवरोह में भी ये दो स्वर दुर्बल रखे जाते हैं, किन्तु उन्हीं ऋषभ धैवत को इस राग में अवरोह करते समय कुछ देर तक लगा कर क्रमशः षड्ज और पंचम पर मुकाम किया जाता है। यथा विहाग में तो—नि – धम़् प, तथा ग – रिनि़ सा, किया जाता है। किन्तु विहागड़ा में नि ध – प, तथा ग रि – सा किया जाता है। उसके आरोह में भी अल्प मात्रा में ऋषभ धैवत का प्रयोग किया जाता है, विशेषतः धैवत का। ऊपर बताई हुई खमाज की तान में जो धैवत आरोह करते समय साफ़ साफ़ लगाया गया है और ऐसा ही धैवत का प्रयोग इसमें जायज़ है, जो विहाग से इसे पृथक् करता है।

इस राग में तीव्र मध्यम का प्रयोग केवल छूने भर के लिए होता है। किन्तु कोमल निषाद का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में होता है। पम़् – गमग, इस प्रकार विहाग के टुकड़े में जैसे तीव्र मध्यम का प्रयोग होता है, वैसा इसमें कभी नहीं होगा। पंचम पर रुकते समय मप़ करने में अथवा धमप के टुकड़े में केवल छूने भर को ही तीव्र मध्यम का प्रयोग होगा।

इसका प्रचलित रागरूप निम्नोक्त है—

प
नि़ सा ग म ग रि – सा, नि़ सा ग म प, ग म ग रि – सा, नि़सागमग गमपधनि़ध – प, गमपनि सांनिध – प – प नि़ ध – प, गमपनिसांनिध – प, गमग रि – सा।

कुछ गुणीजन उत्तरांग की प – ध नि् ध – प, इस क्रिया का जवाब पूर्वांग में रि – ग म ग – रि – सा, से देते हैं। केवल इतनी ही मात्रा में आरोह में ऋषभ धैवत का प्रयोग होता है, अधिक नहीं।

कोमल निषाद की खमाज अंग की क्रिया इसकी रागवाची है, क्योंकि यह क्रिया बिहाग से इसे अलग बनाती है। जैसा पहिले कह आए हैं, धैवत ऋषभ को अवरोह में लगाना, यह भी इसे बिहाग से भिन्नत्व देता है।

यह ध्यान रखा जाय कि बिहागड़ा दो रागों के मिश्रण से बनता है—बिहाग और खमाज। बिहाग की अभिव्यक्ति गान्धार को अंशत्व देने से होगी और खमाज की अभिव्यक्ति धैवत सहित कोमल निषाद के प्रयोग से होगी। जिससे राग की अभिव्यक्ति होती हो, उसी का अंशत्व मानना समुचित है।

राग बिहागड़ा

मुक्त आलाप

(१) सा, नि – सा निसा, नि सानि ध नि ध प –, प सा, सा – रिसा – रिनि – नि सारि – सा-रि नि सा,
आ, ध ऽ • न •, ध • • न • • रे ऽ, ध न, रे ऽ ध • ऽ न • ऽ ध • • ऽ ऽ • रे •,

पनि सारि – रि-सा, सा – निसा – निसारि – रिसा – रि नि सा, पनि - धनिसा – निसारि – रि सा, सा – ग रि सा–
ध • • • ऽ न ऽ रे, ध ऽ न • ऽ ध • • ऽ न • ऽ • रे •, ध • ऽ न • • ऽ ध • • ऽ न •, ए ऽ ध न रे ऽ

नि – सा ग रि सा –, रिनि – ग रि सा –, नि ग –, ग रि सा –, रिसा रिनि निसा साग – ग रि सा –।
रे ऽ • ध न रे ऽ, रे • ऽ ध न रे ऽ, ध न ऽ, ध न रे ऽ, ध • न • ध • न • ऽ ध न रे ऽ।†

(२) सा –, ग रि रि नि – ग रि – सा –, ग रि सा नि – ग रि सा –, ग रि नि –, सा ग ग रि – सा –,
रे ऽ, ध न ध न ऽ ध न ऽ रे ऽ, ध न ध न ऽ ध न रे ऽ, ध न रे ऽ, ध • • न ऽ रे ऽ,

---

* चिह्नित स्वरों का धक्के के साथ उच्चार होगा।

† पहिले दो आलापों में और सातवें में खयाल के बोलों को लेकर आलापचारी का ढंग दिखाया गया है। यह ढंग हरेक खयाल में या पद में लिया जा सकता है।

पर्सा गग रिरि सासा
धं – प, मगरिसा—निसागमपध नि्ध – प, प धनि् ध – प – प धनि् ध – प, ममग गगरि रिरिसा

पर्सा
निसागमपध—नि् ध – प, धम – पग – मग – रि सा।

म पध मपपर्सा पध मपपर्सा
(६) सानिरिसा—मगपम प – निनिध पध नि् ध – प, सानिनि रिसासा मगग पमम प – निनिध पधन्
पध मपपर्सा * * * * *पर्सा सा
ध – प, सानिरिसासा मगपमम पमधपप निनिध पधनि् ध – प, साग गम मप पध धनि् ध – प, साग गम
म प पर्सा प ग
मप पध धनि् ध – प, साग = सा गम – ग मप = म पध = प धनि् ध – प, धग – मग – रि – सा।

(७) सा – ग रि सा – , साग – रि – सा, सारिनिसा – गरिसा – , निरिसारिनिसा – ग रि सा – , पसानि
आ ऽ ध न रे ऽ, ध • ऽ न ऽ रे, ध • न • ऽ ध न रे ऽ, ध • • • न • ऽ ध न रे ऽ, ध • •

निरिसा गरिसा – , ग – म रि – ग ग रि सा, म मग ग गरि – सा, निसा साग म मग ग गरि सा, रि– – सा रिनिसा
न • • ध न रे ऽ, ध ऽ • न ऽ • ध न रे, ध • • न • • ऽ रे, ध • न • ध • • न • • रे, ध ऽ ऽ • न • •

सा नि नि ध
मगगरि गरिरिसा सा, पसा निसा ग मग—गरि गरिरिसा – सा, रिरिसा—सा साधानि—नि सा प मग गरि गरि रिसा
ध• न• ध• न• रे, ध न ध • न ध• न• ध• न • ऽ रे, ध • • न ध • • न रे • ध • न • ध• न •

नि
सा, निसा प – पमग – गरिसा – ।
रे, ध • न ऽ धनरे ऽ ध न रे ऽ।

प र्सा गगरि ममग पपम पर्सा
(८) नि सा मगप – प ध नि् ध – प, ममग ग – पपम म – धधप प – ध नि् ध – प, पधधग – मपग –
ग गरि – सा।

र्सा र्सा
(९) रिरिसानिसागमपर्सा – प धनि् ध – प, धम – पग – पम – धप नि् ध – प, धम – पग – मगपम
र्सा ग
धप नि् ध – प, निसागमपध नि् ध – प, धग – मग – रि – सा।

सा ग म प नि प सां
(१०) नि सा ग म प नि ∿∿ ∿∿ प सां, निसागमपधनि ध – प नि - प सां, सानिरिसा — मगपम

सां सा ग म सां प म सां प
धप नि – प सां, साग — गम — मप — पनि – प सां, साग = सा गम = ग मप = म पनि = प सां, सानिनि रिसासा –

सां सां
मगग पमम – पमम धपप – नि – प सां, सानिनि रिसासा मगग पमम धपप नि – प सां, सारिनिसा ग – पधमप

सां प सां
नि – प सां, सारिनिसा पधमप सां – निसां, सां रिं निसां नि – प ध नि ध – प सां, सां नि ध – प, ध नि ध – प

सा रिं नि ध ध प ग
धम – पग – मगरि – सा, सां नि ध प म ग रि – सा।

गं रिं रिं नि ध प म ग
(११) निसागमपनिसांगं—रिं - सां - नि – ध - प – म ग – रि – सा, गमपधनि ध – प, धग –
ग
मग – रि – सा।

मुक्त तानें

रिसानिसा मगरिसानिसा, सारिनिसा गमगरि निसा। पधमप धनि धपमप सारिनिसा गमगरिनिसा। सारिनिसा धनि धपमप मपनिसा मगरिसानिसा। निसागमपप मगरिसा, मगरिसा सानिधनि धप मपनिसा मगरिसानिसा। मगरिसा, पपमगरिसा धपमगरिसानिसा गमपध धपमगरिसा। सागमप गमपध पनिधप मगरिसा। सानिरिसा मगपमधप गमपनिधप मगरिसा। मगरिसा निसागमपनिधप मगरिसा। निसागम पनिसांनि पनिधप मगरिसा, निसागम पनिसांप धनिधप मगरिसा। गगग ममम पंप धनिधप मगरिसा। सागसाग गमगम मपमप पधपध धनिधप मगरिसा ग – म पनिसांप धनिधप मगरिसा। रिसानिसा मगसांग पमगम धपमप धनिधप मगरिसा, रिसानिसा मगसाग पमगम धपमप सांनिपनि रिंसांनिसां धनिधप मगरिसा। निसागसा सागमग गमपम मपधप पनिसांनि निसांरिंसां सांरिंसांनि धप धनिधप मगरिसानिसा। सानिनि रिसासा मगग पमम धपप सांनिनि रिंसां सां – सां धनिधप मगरिसानिसा। सां – – रिं सांनिधप धनिधप मगरिसा। ग – म – प – नि – सांरिंसांनिधप धनिधप मगरिसानिसा। रिरिसारिनिसा पपमपमग रिंरिंसांरिंनिसां गंरिंसांनिधप धनिधप मगरिसा। निसागम पनिसांगंरिं सांनिधप धनिधप मगरिसानिसा। गगग गगगरिसा निनिनि निनिनिधप गंगंगं गंगंगंरिंसां धनिधप मगरिसा। मगरिसा सांनिधप मंगंरिंसां सांनिधप धनिधप मगरिसा। प – – प मगरिसा, रिं – – रिं सांनिधप गंमंगंरिं सांनिधप धनिधप मगरिसा। निसानि निसानि गमग गमग निसांनि निसांनि गमग गमग, गंमंग गंमंगं सांरिंसांनिधप धनिधप मगरिसा। पम – प मगरिसा, रिंसां – रिं सांनिधप, पंमं – पं मंगंरिंसां, धनिधप मगरिसा। सांरिंसां सांरिंसां निसांनि निसांनि धनिध धनिध गमग गमग, गंमंगं गंमंगं सांरिंसां सांरिंसां निसांनि निसांनि धनिध धनिध गमग गमग, गमपनि सांरिंसांनिधप धनिधप मगरिसा। साप-प मगरिसा, परिं – रिं सांनिधप, सांपं – पं मंगंरिंसां सांनिधप धनिधप मगरिसा।

राग बिहागड़ा

बड़ा ख्याल

ताल – विलम्बित एकताल

गीत

स्थायी—ए धन धन रे मेरा लाल लाड लडोना मीत ।
अंतरा—वारो री इन दुतियन को जिन नाहिंन समझायो वाको मान ॥

स्थायी

×		०		५	
०		९		११	
			म	सां	
			– गमपध	नि् ध प –	–प–धग–पम
			ऽ ए•••	• ध न ऽ	ऽधऽ••ऽ•न
×		०		५	
			सा ग		प
मपग – –	गरि – –	सा	सा रि नि्-सा मग- पम-	मप ग – –	–गग म–ग
रे••ऽ ऽ	•• ऽ ऽ	•	मेऽ• •ऽ• रा•ऽ ••ऽ	ला• • ऽ ऽ	ऽलला •ऽ•
०		९		११	
	पनि		रि	सां	
ग प – प	निसांरिंसांनिसांनि,ध	नि्ध,पधप,म्पम्	गम ग –मपध	नि् ध प –	–प–धग–पम
ड • ऽ ल	डो•••ना•••	•••••••••	मी•• ऽ•त•	• ध न ऽ	ऽधऽ• •ऽ•न

अंतरा

×		०		५	
सां	प	रिं		प सां सां	
प प	सां	नि –सां नि सां	– – निसां –	सांरिं निसां नि –	– – – सां
वा रो	री	इ ऽ • न •	ऽ ऽ • • ऽ	दु• ••तिऽ	ऽ ऽ ऽ •

०		९		११	
ध नि	-नि सां-रि सांरि सां	नि सांनि भ नि॒ध	सां पधमप - - -	पध ग गप म	म प ग - ग म
•	ऽ य •ऽ• न • •	को •• • ••	•••• ऽ ऽ ऽ	नि• • न• •	ना. • ऽ हि ऽ

×		०		५	
मनि॒ - ध म प -	पध गम पध गम	मप ग - -	गरि - - -	सा	सारिनि॒सा सांरि निसां
न • ऽ • • • ऽ	•• •• सऽ• म•	हा• • ऽ ऽ	•• ऽ ऽ ऽ	यो	या• •• को• ••

०		९		११	
नि	निसांनि धनि॒ध पध	रि प गपम् गम ग -	— गमपध	सां नि॒ ध प -	- प - ध ग - प म
मा	••• ••• ••	• ••• न• • ऽ	ऽ ए•••	• घ न ऽ	ऽ घ ऽ • • ऽ • न

				१३				
नि ध	पप – – –	नि – धनि	धपप – – –	ग प	पम – – –	मप – – –	ग म
चा •	••ऽऽऽ	• ऽ • •	••• ऽऽऽ	जे	हा • ऽऽऽ	••ऽ ऽऽ	• •

×				५			
ग	मग	पध	पप – – –	सां	निसां – – –	सां नि – ध नि	सांरिं निसां –
री	ह •	टी•	ली• ऽऽऽ	•	•• ऽऽऽ	ने ऽ • क	मे • • • ऽ

				१३			
ध नि	ध – पप –	प – निनि –	ध – पप –	गम	नि धप –	प – पध –	गप – गम
रो	• ऽ •• ऽ	क ऽ हो• ऽ	मा ऽ •• ऽ	••	न प्या• ऽ	री ऽ •• ऽ	•• ऽ पग

अन्तरा

०			१३			
			पधपध –	ग म	ग	पधपप –
			आ•गे• ऽ	रा •	ब	घ•र• ऽ

×				५			
सां	सां नि – ध नि	सांरिं निसां	नि ध	पनिधनि	पधपप –	प नि सा	ग म
के	लो ऽ • ग	स • व •	आ •	गे •••	••••	हाँ •	री न

०				१३			
गंरिं निसां सां	सां नि – धनि	सांरिं निसां	नि – धपप –	पपनिनि	नि धपप गम	निधपप –	पध-मप-गम-
वेऽ• •• ली	म ऽ त •	क • र •	ये ऽ ••• ऽ	तुमा•न	गु मा•• •न	• प्या री• ऽ	••ऽ••ऽपऽग

———

२

राग विहागड़ा

ख्याल—विलम्बित त्रिताल

गीत

स्थायी—ए प्यारी पग हौले हौले धर,
ऐसो पग ऊपर पायल बाजे,
हाँ री हठीलो नेक मेरो कह्यो मान।

अन्तरा—जागे सब घर के लोग, सब जागे,
हाँ री नवेली मत कर ये तू मान गुमान॥

स्थायी

०				१३			
				—	– गमपध	नि़ ध प ध	मग – गम
				ऽ	ऽ ए•••	• प्या • री	•• ऽ पग
×				५			
ग	—	(प) ग	म	नि़	ध	मप – – –	ग – पमम –
हौ	ऽ	•	•	•	ले	•• ऽ ऽ ऽ	• ऽ ••• ऽ
०				१३			
(प) ग	रि	सा	नि़सा – – –	रिनि़ – सा –	सा	प ध प प	ग म
हौ	•	ले	•• ऽ ऽ ऽ	ध• ऽ • ऽ	र	ऐ • सो •	प •
×				५			
(प) ग	—	पधपप –	सां	सां	सां	(सां) नि – ध नि	सांरिं निसां
ग	ऽ	ऊ••• ऽ	•	प	र	पा ऽ • •	य • ल •

राग त्रिहागड़ा

तराना

ताल-त्रिताल

स्थायी—तानों तदेरे ना दानि, तानों तदेरे ना,
उदतन दरे ना दीं तो तान रे दिर दिर—
दिर दिर दानि दानि तदानि,
उदन दी तनन दिर दिर तदेनां देनां दानि,
दानि तदानि दर दों तनन दिर दिर ।

अंतरा—दी दीं तां तों तननन नननन देरे ना,
नितान तन तदियन रे दीं तों, उदनि में देनां देनां—
देनां दो तनों तन तदनीं तन तदनीं,
दर दीं तनन दिर दिर ।।

स्थायी

×				५				०				१३			
नि	सा														
सा	प	–	प	–	प-ध	ग	म	ग	–	-	–	ग	रिसा	सा	नि
ता	•	ऽ	नों	ऽ	तऽ•	दे	रे	ना	ऽ	ऽ	ऽ	•	दा•	•´	नि
										प		प		ध	
सा	प	–	पध	नि	धप	ग	म	ग	–	ग	ग	म	म	प	प-नि
ता	•	नो•	नो	•	त•	दे	रे	ना	ऽ	उ	द	त	न	दे	रेऽ•
प		नि													
नि	–	ग	–	म	–	प	–	नि	धनि	सां	–	निनि	धध	मम	पप
ना	ऽ	दीं	ऽ	तों	ऽ	ता	ऽ	न	रे•	•	ऽ	दिर	दिर	दिर	दिर
ग			प	म	ग	रि									
रि	गरि	ग	म	ग	रि	नि	सा	सा	म	ग	प	–	प	प	प
दा	••	नि	दा	नि	त	दा	नि	उ	द	न	दीं	ऽ	त	त	न

गम	रिग	गम	म नि्	–	ध	धप–	–	म	पग--	–	गरि--	–	नि्	सा	सा
दिर	दिर	त	दे	ऽ	नां	दे-ऽऽ	ऽ	नां	दे•ऽऽ	ऽ	नां•ऽऽ	ऽ	दा	ऽ	नि
–	ग	रि	म	ग	रि	नि्सा	ध्नि्	–	सा	–	सा ग	ग रि	रि सा	नि्नि्	सासा
ऽ	दा	नि	त	दा	नि	द	र	ऽ	दां	ऽ	त	न	न	दिर	दिर

अंतरा

×				५				०				१३			
सां प	–	नि	–	सां	–	सां	–	सां	गंरिं	गं	मं	मं गं	गं रिं	रिं सां	सां नि
दी	ऽ	दी	ऽ	तां	ऽ	तां	ऽ	त	न•	न	न	न	न	न	न
प	सां	–	–	रिं नि	–	–	–	सां	गं	रिं	मं	मं गं	गं रिं	रिं सां	सां नि
दे	रे	ऽ	ऽ	ना	ऽ	ऽ	ऽ	नि	ता	•	न	त	न	त	दि
निसां	धनि	निरिं	निसां	सांगं	रिं	सां	–	म	ग	म	प	–	प	–	नि
य•	न•	रे•	•	दां•	•	तां	ऽ	उ	दा	नि	में	ऽ	दे	ऽ	नीं
निसां	धनि	निरिं	निसां	–	नि	ध	नि	प	–	ध	सां नि्	नि् ध	ध प	गम	रिग
दे•	••	नो•	•	ऽ	दां	•	त	नों	ऽ	त	न	त	द	नी•	••
म प	प म	म ग	ग रि	रि नि्	सा	सा	ध् नि्	सा	–	–	सा ग	ग रि	रि सा	नि्नि्	सासा
त	न	त	द	नां	ऽ	द	र	दां	ऽ	ऽ	त	न	न	दिर	दिर

तानें

	×				५				०				१३			
१)														[illegible]	मग	[illegible]
२)													[illegible]	[illegible]	मग	[illegible]
३)												[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

	×				५				०				१३			
४)									निसा	गम	पप	गम	पप	मग	रिसा	निसा
५)									गम	प, ग	मप,	गम	पप	मग	रिसा	निसा
६)									मग	रिसा,	पप	मग,	धप	मग	रिसा	निसा
७)									निसा	गम	पप	गम	पनि्	धप	मग	रिसा
८)									सासा	सा,प	पप,	गम	पनि्	धप	मग	रिसा
९)									सारि	निसा	पध	मप	धनि्	धप	मग	रिसा
१०)									गम	पनि	सांनि	धप	धनि्	धप	मग	रिसा
११)									निसा	गम	पनि	सां, प	धनि्	धप	मग	रिसा
१२)									सांसां	-रिं	सांनि	धप	धनि्	धप	मग	रिसा
१३)									निसा	गसा,	सांग	मग,	गम	पम,	मप	धप
पनि	सांनि,	निसां	रिंसां,	सांरिं	सांनि	धप,	पनि		पनि	सांरिं	सांनि	धप	धनि्	धप	मग	रिसा
१४)									निसा	गम	पनि	सांगं	गंरिं	सांनि	धप	धनि्
धप	मग	रिसा,	गंरिं	सांनि	धप	धनि्	धप		मग	रिसा,	गंरिं	सांनि	धप	धनि्	धप	मग
रिसा	प[1]	–	प													
	ता	ऽ	नो													
१५) गग	रिसा,	निनि	धप,	गंगं	रिंसां	सांनि	धप		धनि्	धप	मग	रिसा	सा –	– सा	– –	सा –
													ता ऽ	ऽ ता	ऽ ऽ	ता ऽ

1. यह अतीत का सम है जो दूसरी मात्रा पर आयेगा। ताल में सम आने के बाद जब सम दिखाया जाता है तो उसे अतीत सम कहते हैं।

×				५				०				१३			
१६) निनि	नि,ग	गग	रिसा,	गग	ग,नि	निनि	धप,	निनि	नि,गं	गंगं	रि'सां	सांनि	धप	धनि	धप
मग	रिसा	सांनि	धप	धनि	धप	मग	रिसा	सांनि	धप	धनि	धप	मग	रिसा	सा –	– सा
														ता ऽ	ऽ ता
— —	प[1]	-	प												
ऽ ऽ	ता	ऽ	नों												
१७) मम	ग,रि ग	मग	रिसा,	सांसां	नि,धनि	सांनि	धप,	मंमं	गं,रि'गं	मंगं	रि'सां	सांनि	धप	धनि	धप
मग	रिसा,	मंमं	गंरि'गं	मंगं	रि'सां	सांनि	धप	धनि	धप	मग	रिसा,	मंमं	गंरि'गं	मंगं	रि'सां
सांनि	धप	धनि	धप	मग	रिसा	–सा	– सा	प	—	–,सा	– सा	प	—	–,सा	सा
						ऽ दा	ऽ नि	ता	ऽ	ऽ,दा	ऽ नि	ता	ऽ	ऽ,दा	ऽ नि
१८) नि	—	सा	—	—	पप	मग	रिसा,	प	—	नि	—	—	रि'रि'	सांनि	धप,
नि	—	सां	—	—	पंपं	मंगं	रि'सां	सांनि	धप	धनि	धप	मग	रिसा,	पंपं	मंगं
रि'सां'	सांनि	धप	धनि	धप	मग	रिसा,	पंपं	मंगं	रि'सां	सांनि	धप	धनि	धप	मग	रिसा
१९) निसा	नि,नि	सानि,	गम	ग,ग	मग,	सारि	सा,सा	रिसा,	निसा	नि,नि	सानि,	पध	प,प	धप,	मप
म,म	पम,	गम	ग,ग	मग,	सारि	सा,सा	रिसा	निसा	नि,नि	सानि,	धनि	ध,ध	निध,	पध	प,प
धप,	मप	म,म	पम,	गम	ग,ग	मग,	सारि	सा,सा	रिसा,	निसा	नि,नि	सानि,	सांरि'	सां,सां	रि'सां,
निसां	नि,नि	सांनि	धनि	ध,ध	निध,	पध	प,प	धप,	मप	म,म	पम,	गम	ग,ग	मग,	सारि
सा,सा	रिसा,	निसा	नि,नि	सानि,	गंमं	गं,गं	मंगं,	सांरि'	सां,सां	रि'सां,	निसां	नि,नि	सांनि,	धनि	ध,ध

1. यह भी अतीत का सम है जो दूसरी मात्रा पर आयेग ।

×				५				०				१३			
नि॒ध,	पध	प,प	धप,	मप	म,म	पम,	गम	ग,ग	मग,	सारि	सा,मा	रिसा,	नि॒सा	नि॒,नि॒	सानि॒,
नि॒सा	गम	पनि	निसां	गंमं	पंमं	गंरिं	सांनि	धप	धनि॒	धप	मग	रिसा,	गंमं	पंमं	गंरिं
सांनि	धप	धनि॒	धप	मग	रिसा,	गंमं	पंमं	गंरिं	सांनि	धप	धनि॒	धप	मग	रिसा	सा[1] ता
— ऽ	प •	— ऽ	प नों												

---

१. यह अनागत सम है। ताल का 'सम' आने के पूर्व यह दिखाया जाता है। अन् + आगत ÷ अनागत।

मारूबिहाग

आरोहावरोह—सा ग – म, गम्पम्प, ध नि – प, सां, रिं नि ध प, ध म्, प ग, म्गरिसा।

जाति—वक्र षाडव – संपूर्ण।

ग्रह—षड्ज।

अंश—गान्धार, तीव्र मध्यम उसका सहायक। ऋषभ धैवत अनुगामी।

न्यास—पंचम।

अपन्यास—मध्यम।

विन्यास—मध्य षड्ज।

मुख्य अंग—सा ग – म, गम्प म् प, म् ग रि – सा।

समय—रात्रि का प्रथम याम।

प्रकृति—मिश्र, कहीं प्रौढ़, कहीं तरल।

विशेष विवरण

यह राग इन दिनों खासा प्रचार पा रहा है। इसमें स्थान-स्थान पर भिन्न-भिन्न रागों की छाया दिखाई देती है। सारिनिसा ग – म, यों करते ही गन्धार तक तो बिहाग का सा रूप रहता है। किन्तु मध्यम पर मुकाम करते ही वह

तरोहित हो जाता है और नंद की छाया दिखाई देती है। उसकी छाया दिखाई दे उतने ही में पुनः पम मग – सा,

करके फिर बिहाग का आविर्भाव किया जाता है। और तत्काल ही सा – ग म् प म् प, यों करने से सुहाग का दर्शन हो

जाता है। उत्तरांग में पधनिर, धम्, पग – यों बिहाग के अंग में नंद की छाया पुनः दिखाकर म्ग रि – सा यह कल्याण की तान जोड़ दी जाती है। इन समग्र क्रियाओं से इस राग का पूरा रूप खड़ा होता है। ध्यान रहे कि किसी एक अंग को बार-बार दिखाने से इस राग की समग्र रचना में दोष आ जाएगा। ऊपर लिखे हुए अंगों के मेल से यह राग उद्भूत होता है। इसलिये इस संकीर्ण राग को गाते समय भिन्न-भिन्न अंगों में बदलती हुई इसकी चाल को ध्यान में रखकर ही इसका विस्तार करना चाहिये।

इसका आरोहावरोह सीधा नहीं है। इसका सामान्य चलन निम्नोक्त है :—

सा रिनिसा ग – म, पम मग – सा, गमप – म् प, पधनिप, धम्, पसां, रिंनिध – प, धम् – पग, सा ग म्ग्ग्ग मग रि – सा।

तान लेते समय इन सब नियमों का सूक्ष्म पालन नहीं होता क्योंकि यह संकीर्ण राग है और तान की सुविधा के लिये, जहाँ-जहाँ जिस-जिस अंग में तान लेना सहज हो, उसी अंग को लेकर तान-क्रिया की जाती है। और ऐसे समय निसागम पनि सांनिधपम्ग मगरिसा – अर्थात् आरोह में विहाग और अवरोह में कल्याण अंग का प्रयोग बहुधा गुणीजन करते देखे गये हैं। अथवा निसागम्पनिसांनिधपम्ग मगरिसा यों आरोह में सुहाग और अवरोह में कल्याण करने का भी प्रचार है। सम दिखाने के पूर्व सारिनिसा ग – म, पम मग – सा, गमप म् प, इस प्रकार शुद्ध मध्यम का प्रयोग दिखाना उचित है, क्योंकि यह प्रयोग रागवाची है।

———

राग मारूविहाग

मुक्त आलाप

(१) सा, नि़ – सा, प़ सा, रिनि़ – निनिध़ – प़, पधमप़ – ध़ – नि़, रि नि़ ध़ प़, प़ सा – निसा।

(२) सा – निरिनि, सा म – ग – रि – सा, रिरिसानिसा – रिनि – सा म – ग – रि – सा, धधपमप नि
रिरिसानिसा म – मग – गरि – सा, धधमम प नि – धधपम प सा – धधपमप म ~~~ मग गरि – सा।

(३) रिरिसानिसा ग – म – पम – ग – मग – रि – गरि – सा, पमधपसानिरिसा ग सा ग म ~~~ ग
~~~ रि ~~~ सा, रिनिनि रिसासा ग सा ग म ~~~ ग ~~~ रि ~~~ सा, सागरि – नि – रि – सा
रि – नि – ग रि – सा, रि नि म ~~~ ग ~~~ रि ~~~ सा।

(४) मा – गरिनि – रिनिधप, गरिनि – रिनि प सा, ग, म ग रि – सा, गरि – रिनि – निध – धप –
सा ग म ग रि – सा, ग गरि – रि – रिनि – नि – निध – ध – धप – सा ग म ग रि – सा, पनिनिसागग
ग – म ग रि – सा, गरिरिनिनिधधप – पनिनिसासागग – म – पम – ग – मग – रि – गरि – सा।

(५) मा, मा – गरि – नि – रिनि – ध – निध – प – पप धम धप सा ग – म – पम – ग – मग –
~~~

सा
रि—गरि – सा, रिरिसानिसा ग – म् ग रि – सा, रिनिसा म् ∿∿ ग ∿∿ रि ∿∿ सा, धम्प रिनिसा म् ∿∿

सा
ग ∿∿ रि ∿∿ सा, रिनिसा ग–म, म् ∿∿ ग ∿∿ रि ∿∿ सा।

रि ग म् प म् म् सा नि सा ग म्
(६) नि सा ग म् प – ग – म् ग रि – सा, नि सा ग म् प – सा ग म् प, म्प, म्प – गम् – गप –
सा ग नि सा ग म् सा प नि सा ग म्
धपम्ग – सा ग म् ∿∿ ग ∿∿ रि ∿∿ सा, नि सा ग म् प, साग=सा गम्=ग म् प, प नि सा ग म् प,

प नि सा ग सा
पनि निसा साग गम् म्प, धपम् – म् ग रि –सा।

म् म् ग ग ग म् प म् म्
(७) रिरिसानिसा गम्प – धधपम् प – निसागम्प, पपम् मम्ग सागम्प, साम्ग – गपम् – प,

म् ग
निरिसा – साम्ग – गपम् – प, धधपम्प – म् ग, सा ग म् ∿∿ ग ∿∿ रि ∿∿ सा।

म् ग सा सा म् म्
(८) सानिरिसाम्ग पम् प ∿∿ म् ध ∿∿ म्ग प, म् ग रि – सा ध – म् ग प, प – म्ध – म्ग ध –
सा म् म् म् ग म् सा म् ग रि म्
म्गरिसा – ध ∿∿ म्ग प, प – म्–ध ध – म् ग म् ध – म् ग रि सा ध – प – म् प, धप – धम् – ध, धम् –

ग म् म् ग सा ग
म्ग – म् ध, धग – पम् – म्ग – गरि – रिसा – म्ग – पम् – ध – प – म्प, धधपम्प ग – सा ग म् ∿∿
ग म्ग – रि—गरि – सा।

म् ग म् ध म् सा सा नि ग ग सा म् म् ग
(९) सा ग म् ध – म् ग प – म्प, धम् – धग – सा ग म् ध प – म्प, रिरिसा—सा–मम्ग—ग–पपम्—म्

– निध – निम् – धग – प – म्प, पनिसाग – निसागम् – सागम्ध – म्गप – म्प, निसागम्ध – पनिसागम्ध –

ग
निम् – धग – प – म्प, म्ध – म्ग – सागम् ∿∿ ग ∿∿ रि ∿∿ सा

सा नि ध म् ग
(१५) सा सां – नि – रिं रिंनि – ध – नि निध – म् – ध धम् – ग – म् मृग – पम् धमृग सां –
निसां, सां – गंरिंनिधमृगप – सां – निसां, गं – रिंगंरिं – रिं – निरिंनि – नि – धनिध – ध – मृधम् – म् – गमृग–
प सां – निसां, रिं – गं रिं – गं – रिं – निरिं – निरिं – नि–धनि – धनि – ध – मृध – मृध – म् गम् – गम् – ग-
प सां – निसां, निरिंनि – धनिध – मृधम् – प – ग – सा ग म् ∿∿ ग ∿∿ रि ∿∿ सा।

सां ग म् प नि सां गं
(१६) निसागमृपनिसांगं – मं गं रिं – सां – निसां, सा ग म् प नि सां गं – मंपंमं – गंमंगं – रिंगंरिं –
सां
सां – निसां, रिंनिसां गं – मं गं रिं – सां, मृपनिसांगं – मंपंमं – गंमंगं – रिंगंरिं – सां – निसां, मंगंरिंनिधमृग प
सां गं – मंपंमं – गंमंगं – रिंगंरिं – सां – निसां, मं∿∿ मंगंरिंनिधमृ ∿∿ प सां गं – मं गं रिं – सां – निसां,
मं गं रिं नि ध
सांमंगं – निगंरिं – निरिंनि – मृनिध – मृधम् – ग प सां गं – मंपंमं – गंमंगं – रिंगंरिं – सां – निसां,
गं रिं नि ध म् ग सा ग
मंगं – गंरिं – रिंनि – निध – धम् – मृग – सा ग म् ∿∿ ग ∿∿ रि ∿∿ सा।

धपनि-सांनिधपम्गरिसा। गम्पनि सांरि'सांनिधप म्ग म्गरिसा। म्म्ग पपम् धधप निनिध सांनिरि'सां सांनिधप म्गरिसा। निसागग सागम्म् गम्पप म्पनिनि पनिसांरि' सांनिधप म्गरिसा। ग --म् पनिसांरि' सांनिधप म्गरिसा। सागगसा गम्म्ग म्पपम् पनिनिध निसांसांनि सांरि'सांनिधपम्ग म्गरिसा। निसारिनिरिसासानि गम्प-गपम्म्ग म्पधम्धपपम् म्पनिम्निधधप पनिसांपरि'सांसांनि धपम्ग म्गरिसा। रिरिसा रिरिसा निसा पपम् पपम् गम् सांसांनि सांसांनि पनि रि'रि'सां रि'रि'सांनिसां रि'रि'सांनिधपम्ग म्गरिसा। म्गरिसा सांनिधप म्'गं'रि'सां सांनिधप म्गरिसा। म्गग म्गग म्गम्गरिसा, सांनिनि सांनिनि सांनिसांनिधप, म्'गंगं म्'गंगं म्'गंम्'गंरि'सां सांनिधप म्गरिसा। सासासा गगग म्म् गम्पम् म्गरिसा, गगग म्म्म् निनि पनिसांनिधप म्ग, पपप निनिनि रि'रि' सांरि'सांनिधप म्ग, गम्पनि सारि' सांनिधप म्ग म्गरिसा। सासासा गगग म्म्म् निनिनि सांसांसां गंगंगं म्'म्' म्'गंरि'सां सांनिधप म्गरिसा। निनिनि गगग म्म् म्गरिसा, गगग म्म्म् निनि निधपम्, पपप सांसांसां पंपं म्'गंरि'सां सांनिधप म्गरिसा। निसागम्पनि निसांगंम्'पंम्' म्'गंरिसां सांनिधप म्गरिसा। निसागम्गसा सागम्पम्ग गम्पधपम् म्पनिसांनिध पनिसांरि'सांनि निसांगंम्'गंसां सांगंम्'पंम्'गं म्'गंरि'सां सांनिधप म्गरिसा। साग गम् म्प पम् म्गरिसा, गम् म्प पनि निध धप म्ग म्पपनिनिसां गंरि' सांनिधप म्गरिसा। सागग सागग साग गम्म् गम्म् गम् म्पप म्पप म्प पनिनि पनिनि पनि सांरि'रि' सांरि'रि' सांरि' निसां सांगं गंरि' सांनिधपम्ग म्गरिसा। साग साग गम् गम् म्प म्प पनि पनि निसांनिसां सांगंसांगं गंम्'गंम्' म्'पं म्'पं म्'गंरि'सां सांनिधप म्गरिसा।

सा नि ध म् ग
(१५) सा सां – नि – रिं रिंनि – ध – नि निध – म् – ध धम् – ग – म् मग – पम् धमप सां –
निसां, सां – गंरिंनिधमगप – सां – निसां, गं – रिंगंरिं – रिं – निरिंनि – नि – धनिध – ध – म्धम् – म् – गमग–
प सां – निसां, रिं – गं रिं – गं – रिं – निरिं – निरिं – नि–धनि – धनि – ध – म्ध – म्ध – म् गम् – गम् – ग–
प सां – निसां, निरिंनि – धनिध – म्धम् – प – ग – सा ग म् ∿∿ ग ∿∿ रि ∿∿ सा।

सां ग म् प नि सां गं
(१६) निसागम्पनिसांगं – म्ं गं रिं – सां – निसां, सा ग म् प नि सां गं – म्ंपंम्ं – गंम्ंगं – रिंगंरिं –
सां – निसां, रिंनिसां गं – म्ं गं रिं – सां, मपनिसांगं – म्ंपंम्ं – गंम्ंगं – रिंगंरिं – सां – निसां, म्ंगंरिंनिधम्ग प
सां गं – म्ंपंम्ं – गंम्ंगं – रिंगंरिं – सां – निसां, म्ं∿∿ म्ंगंरिंनिधम् ∿∿ प सां गं – म्ं गं रिं – सां – निसां,
म्ं* गं* रिं* नि* ध*
सांम्ंगं – निगंरिं – निरिंनि – मनिध – म्धम् – ग प सां गं – म्ंपंम्ं – गंम्ंगं – रिंगंरिं – सां – निसां,
गं रिं नि ध म् ग सा ग
म्ंगं – गंरिं – रिंनि – निध – धम् – म्ग – सा ग म् ∿∿ ग ∿∿ रि ∿∿ सा।

ऊपर लिखे आलापों में जहाँ जहाँ पचे वहाँ नीचे लिखे प्रकार भी जोड़ देने चाहिए।

सा – निसा ग – म, पममग – सा, प नि सा ग – म, पममग – सा, रिनिसा ग – म, पममग – सा,
सा सा नि ग
ममगसाग – म, प नि सा ग – म पममग – सा, ग म् प म् प।

मुक्ततानें

निसागम् पम् म्गरिसा निसा, गम्पम् म्गरिसा, सागसा गम्ग गम्गम्पम् म्गरिसा। पपम् मम्ग साग म्पम्ग म्गरिसा। रिरिसा रिरिसा निसा गम्पम् म्गरिसा। सगनिरिसा म्गपम् धपम्ग म्गरिसा। सागम्प – – – म् गम्गम्पम्म्गरिसा। सागसागगम्गम् गम्पम् म्गरिसा। निसानिसा सागसाग गम्गम् मपम्प धपम्ग म्गरिसा। निसागम् धपपम् गम्पम् म्गरिसा। साम्म्ग गपपम् म्पधप म्गरिसा। सागग गम्म् म्पप पधप पपपम् म्गरिसा। निसागम् धधपम् पधपम् म्गरिसा, निसागम् पनिनिध पधपम् म्गरिसा। निनिनि गगग निनिधप म्गम्गरिसा। पम्धप निनिधप म्धपम् म्गरिसा। सागग सागगसाग गम्म् गम्म् गम् म्पध पधध म्प निनिधप म्गरिसा। सागम्प निनिधप पधपम् म्गरिसा। निगरिसा साम्गरि गपम्ग म्पपम् पनिधप म्गरिसा। रिसानिसा पम्गम् धपम्प म्गरिसा, निसागम्पनि सांनिधपम्ग म्गरिसा। म्गपम्-

धपनि-सांनिधपमृगरिसा। गमृपनि सांरिं'सांनिधप मृग मृगरिसा। गमृग पपमृ धधप निनिध सांनिरिं'सां सांनिधप मृगरिसा। निसागग सागमृमृ गमृपप मृपनिनि पनिसांरिं' सांनिधप मृगरिसा। ग - -मृ पनिसांरिं' सांनिधप मृगरिसा। सागगसा गमृमृग मृपपमृ पनिनिध निसांसांनि सांरिं'सांनिधपमृग मृगरिसा। निसारिनिरिसासानि गमृप-गपमृमृग मृपधमृधपपमृ मृपनिमृनिधधप पनिसांपरिं'सांसांनि धपमृग मृगरिसा। रिरिसा रिरिसा निसा पधमृ पपमृ गमृ सांसांनि सांसांनि पनि रिं'रिं'सां रिं'रिं'सांनिसां रिं'रिं'सांनिधपमृग मृगरिसा। मृगरिसा सांनिधप मृं'गं'रिं'सां सांनिधप मृगरिसा। मृगग मृगग मृगमृगरिसा, सांनिनि सांनिनि सांनिसांनिधप, मृं'गं'गं' मृं'गं'गं' मृं'गं'मृं'गं'रिं'सां सांनिधप मृगरिसा। सासासा गगग मृमृ गमृपमृ मृगरिसा, गगग गमृमृ निनि पनिसांनिधप मृग, पपप निनिनि रिं'रिं' सांरिं'सांनिधप मृग, गमृपनि सांरिं' सांनिधप मृग मृगरिसा। सासासा गगग मृमृमृ निनिनि सांसांसां गं'गं'गं' मृं'मृं' मृं'गं'रिं'सां सांनिधप मृगरिसा। निनिनि गगग मृमृ मृगरिसा, गगग मृमृमृ निनि निधपमृ, पपप सांसांसां पं'पं' मृं'गं'रिं'सां सांनिधप मृगरिसा। निसागमृपनि निसांगं'मृं'पं'मृं' मृं'गं'रिं'सां सांनिधप मृगरिसा। निसागमगसा सागमृपमृग गमृपधपमृ मृपनिसांनिध पनिसांरिं'सांनि निसांगं'मृं'गं'सां सांगं'मृं'पं'मृं'गं' मृं'गं'रिं'सां सांनिधप मृगरिसा। साग गमृ मृप पमृ मृगरिसा, गमृ मृप पनि निध धप मृग मृपधनिनिसां गं'रिं' सांनिधप मृगरिसा। सागग सागग साग गमृमृ गमृमृ गमृ मृपप मृपप मृप पनिनि पनिनि पनि सांरिं'रिं' सांरिं'रिं' सांरिं' निसां सांसां गं'रिं' सांनिधपमृग मृगरिसा। साग साग गमृ गमृ मृप मृप पनि पनि निसांनिसां सांगं'सांगं' गं'मृं'गं'मृं' मृं'पं' मृं'पं' मृं'गं'रिं'सां सांनिधप मृगरिसा।

राग मारूविहाग

बड़ा ख्याल

ताल—तिलवाड़ा

गीत

स्थायी—पतिया ले जा 'प्रणव' पिया के देस ।

अंतरा—गल बिच माला कानन बिच मुँदरा ।
कर रही जोगन वारो वेस ॥

स्थायी

	×				५			
	०				१३			
					[नि] ― ― ― सा	ग म म ―	पम्म् ग ― ―	[म् ग] ―सा गम् पम्
					ऽ ऽ ऽ प	ति • या ऽ	••• • ऽ ऽ	ऽ • •• •ले
	×				५			
प	मूग ― ― ―	[नि नि] प पनिध―धनि	― ― धपप - -	[निनि] प-म् पनिव-धध	धम्― ― म्-प	म् प ― ―	म् ग ― ―
आ	•• ऽ ऽ ऽ	प्र ण•• ऽ व•	ऽ ऽ ••• ऽ ऽ	•ऽ• •••ऽ ऽऽ	•• ऽ ऽ पिऽ•	या • ऽ ऽ	• • ऽ ऽ
	०				१३			
	[प प] सान् ग म् म्	म् ग ― म्	मूग - गरि - - - -	सा-नि निगरि - -	रिगनि - - सा सा	गमम―	पम्म् ग ― ―	[ग] ―सा गम् प म्
	के• • • •	• • ऽ दे	•• ऽऽ ••ऽऽ ऽऽ	स ऽ • ••• ऽ ऽ	••• ऽ ऽ • प	ति•याऽ	••• • ऽ ऽ	ऽ • • • • ले

अंतरा

×				५			

०				१२			
सा		प			ग		
सा-रि निमा--म-	---पमूमूग-	---ग-म	ग नि --	ध-नि ध मू-ध मू	ग-मू ग प -	पसां ---	-- निसां -
गऽ• ह•ऽऽ•ऽ	ऽऽ ••••ऽ	ऽऽऽ बिऽ•	च•ऽऽ	•ऽ•• •ऽ••	•ऽ• •माऽ	••ऽऽऽ	ऽऽ••ऽ

×				५			
		पसां सां			प		
नसां ---	निसां ---	सांरि निसां --	सां ग - म	मग म मग ग	--- ग-म	ग ग --	—
सा•ऽऽऽ	•• ऽऽऽ	का•••ऽऽ	••ऽ•	न••ऽ••	ऽऽऽ बिऽ•	च•ऽऽ	ऽ

०				१२			
पं पं							
सांमं गं मंमं	गं-मं गंरिं-गंरिं	सां	निस ---	सां-सांगं रिं	—	नि रिं नि ध-निध	प--प
मुँ••••	दऽ••ऽ••	यां	••ऽऽऽ	कऽर••	ऽ	•ऽ• •ऽ••	•••र

×				५			
		ग		नि			
पनि ध --	-- मू-ध मू	ग-मू ग प-	-- मूप -	प - नि धनि	-- ध-नि ध	मू-ध मू ग-मूग	गसा - सा - ग
ही••ऽऽ	ऽऽ ऽ•ऽ •	•ऽ•• बोऽ	ऽऽ••ऽ	गऽ• न•	ऽऽ•ऽ••	•ऽ•• •ऽ••	••ऽ याऽ•
		ग रि	नि	रि			ग
ग मू --	मू ग - मू	मग --गरि----	सा-नि गरि---	गनि---सासा	ग म म -	पमूमू ग --	- सा गमू पमू
रो•ऽऽ	••ऽवे	••ऽऽ••ऽऽऽऽ	सऽ• ••ऽऽऽ	••ऽऽऽ•प	ति• याऽ	••••ऽऽ	ऽ• ••• •ले

राग मारू विहाग

छोटा ख्याल

ताल—त्रिताल

गीत

स्थायी—सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
अंतरा—बिहँसे करुना ऐन चिते जानकी लखन तन॥

स्थायी

×				५				०				१३			
												म	ग	म्	
								सा	सा	म	–	ग	सा	गम्	पम
								मु	नि	के	ऽ	व	ट	के•	••
					म्	ग	रि					ध			
प	–	–	म्ग	म्	ग	रि	सा	–	प	–ध	नि	नि	–प	पध	म्प
बै	ऽ	ऽ	••	•	•	•	न	ऽ	प्रे	ऽम	ल	पे	ऽ•	टे•	••
												म	ग	साम्	
ग	साग	गम्	म्प	ग	म्ग–	रि	सा	सा	सा	म	–प	ग	सा	गम्	पम्
•	अ•	ट•	प•	टे	••ऽ	•	•	मु	नि	के	ऽ•	व	ट	के•	••

तानें

	४				५				०				१२			
१)						पम्	मग	रिसा	मु	नि	के	ऽ	व	ट	के•	••
२)					पध	–म्	मग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
३)				साग	मप	–म्	मग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
४)				निसा	गम्	पम्	मग	रिसा	,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
५)			पध	नि,प	ध,म्	प,ग	मग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
६)			पम्	गम्	पनि	धप	मग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
७)	निसा	गम्	पनि	सानि	धप	मग	मग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
८)	निनि	नि,म्	मम्,	निनि	धप	मग	मग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
९)	धनि	रि'नि,	मध	निध,	गम्	पम्	मग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१०)	निसा	गम्	पनि	सांरि'	सांनि	धप	मग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,

४

x				५				०				११			
११) गम्	प,ग	-म्	पनि	सांनि	धप	म्ग	रिमा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१२) धनि	सां,ध	–नि	रि'रि'	सांनि	धप	म्ग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१३) निनि	ध,ध	धप	पप	म्, म्	म्ग	म्ग	रिमा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१४) रि'रि'	नि,नि	निध,	धध	प,प	पम्,	म्ग	रिमा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१५) साग	गमा,	गम्	म्ग,	म्प	पम्,	मध	धप,	म्नि	निध,	निरि'	रि'नि,	धनि	निध,	मध	धप,
म्प	पम्,	गम्	म्ग,	–	म्ग	रिमा	निसा	मु	नि	के	ऽ	व	ट	के॰	••
१६) गम्	ग,ग	म्ग,	म्ध	म्, म्	धम्,	धनि	ध,ध	नध,	निरि'	नि,नि	रि'नि,	धनि	ध,ध	निर,	म्प
म्, म्	धम्	गम्	ग,ग	म्ग,	धप	म्ग	रिमा	मुनि	केऽ	वट,	केऽ	वट,	केऽ	वट	के॰
१७) सासा	सा,ग	‘ग,	म्म्	म्, नि	निनि,	ग'ग'	ग',म्'	म्'म्',	म्'ग'	रि'सा,	सांनि	धप	म्ग	रिसा	निसा,
मुनि	ऽके	वट	केऽ	वैऽ	ऽन,	मुनि	ऽके	वट	केऽ	वैऽ	ऽन,	मुनि	ऽके	वट	केऽ
१८) सासा	सा,ग	गग,	म्म्	म्, नि	निनि,	ग'ग'	ग',म्',	म्'म्',	म्'ग'	रि'सा,	सांनि	धप	म्ग	रिसा,	म्'म्'
म्'ग'	रि'सा	सांनि	धप	म्ग	रिसा,	म्'म्'	म्'ग'	रि'सा	सांनि	धप	म्ग	रिसा,	ऽके	वट	केऽ
वै	ऽ	ऽ	ऽन,	मुनि	ऽके	वट	केऽ	वै	ऽ	ऽ	ऽन,	मुनि	ऽके	वट	केऽ
१९) सासा	सा,म्	म्म्	म्ग	रिसा,	म्प्	म्, नि	निनि,	निध	पम्,	निनि	नि,म्'	म्'म्',	म्'ग',	रि'सा	सांनि
धप	म्ग	रिसा,	निनि	नि,म्'	म्'म्'	म्'ग'	रि'सा,	सांनि	धप	म्ग	रिसा,	निनि	नि,म्'	म्'म्'	म्'ग'
रि'सा	सांनि	धप	म्ग	रिसा,	ऽके	वट	केऽ	वैऽ	न,के	वट	केऽ	वैऽ	न,के	वट	केऽ

राग छायानट

ग म प म

आरोहावरोह—सा, रि ग म प, धमप – रि, रिगमनि ध – प, पधमप सां, सांरिं निसां ध – प, पधमप – रि, रि

प प

ग – ग म रि – सा।

जाति—षाड संपूर्ण-संपूर्ण।

ग्रह—ऋषभ। कुछ लोग षड्ज मान सकते हैं, किन्तु आलापचारी और तानक्रिया के प्रायः सभी अंग ऋषभ से ही शुरू होते हैं।

अंश—ऋषभ।

न्यास—ऋषभ।

अपन्यास—पंचम।

विन्यास—मध्य षड्ज।

प रि

मुख्य अंग—रिगमप रि, रि नि ध – प, प रि, रिगमप गमरि – सा।

रागवाची स्वरसंगति—प रि।

समय—रात्रि का प्रथम प्रहर।

प्रकृति—सामान्य रूप से गंभीर, क्योंकि इसमें मींड का बाहुल्य है और पूर्वांग में यह प्रस्फुट होता है। फिर भी मध्य लय में तरल भाव को अभिव्यक्त करने की क्षमता भी है।

रस—शृंगार।

भाव—आत्मनिवेदन, कथोपकथन।

विशेष विवरण

छायानट एक बड़ा ही मधुर, आकर्षक और लय तथा चाल के परिवर्तन से भिन्न-भिन्न भावों को दर्शाने वाला प्रिय राग है। इसमें सामान्यतः दो निषाद के अतिरिक्त अत्यल्प मात्रा में तीव्र मध्यम का भी प्रयोग होता है। अन्य सभी स्वर शुद्ध हैं। स्थूल दृष्टि से दो निषाद वाले खमाज, झिंझोटी, अल्हैया बिलावल वगैरह रागों में जो स्वर लगते हैं, वही स्वर (अत्यल्प तीव्र मध्यम को छोड़ कर) इसमें भी लगते हैं। किंतु रचना-भेद से, स्वरों के उच्चार-भेद से, स्वरसंगति से एवं स्पर्श या कणों के भेद से इस राग का उन सबसे नितान्त निराला व्यक्तित्व दिखाई देता है। हरेक राग का अपना निराला व्यक्तित्व होता ही है। इसका भी अपना एक अनुशासन है और वह इसके स्वरों के उच्चार से प्रस्फुटित हो आता है।

इस राग का आरोहावरोह सीधा नहीं है। इसके स्वर अन्य स्वरों के कण से सदैव लिपटे रहते हैं। 'सा' के बाद 'रि' का खड़ा उच्चार करने से राग का स्वरूप निदर्शित नहीं होगा। इसलिये ऋषभ का उच्चार थोड़ा सा षड्ज और अधिक गान्धार को छू कर ही आरंभ में करना होगा। इसका उच्चार स्वरलिपि में दिखाना असंभव है। इसलिये यह क्रिया गुरुमुख से ही सीख कर कण्ठगत की जाए।

इस राग का सामान्य चलन यों होगा—

सा, रि, रि ग ग म – रि, रि ग मपगम रि, रिगमप रि, रि ग ग म रि, सा। सा रि, रि ग – म नि ध – प,

धमप रि – रि ग ग म पगम – रि, सा रि, सा। सारिनिसा पधनध सां ध पधमप रि, रिगमप पसांनिरिं – सां, धमप रि,

रिगमध~~रि, रि ग म प रि, रि ग ग म रि – सा।

इन्हीं स्वरावलियों में नट का दर्शन होगा। जब भी नट का आवाहन करना हो, इन स्वरावलियों का पहिले मन में गुंजन करें और बाद में प्रकट रूप से इनके उच्चार करें। इस प्रकार नट राग की मूर्ति गाने और सुनने वालों के सामने खड़ी हो जायगी।

इसके पूर्वांग में, जैसे ऊपर बता चुके हैं, उसी ढंग से आरोह करते समय 'रिगमप' कहा जायगा और उत्तरांग में 'पसांसांरिं' या 'पसांनिरिं' कह कर हो आना प्रशस्त होगा। धनिसारिं' जाने का भी प्रचलन है, किन्तु अन्य अंग से बचने के लिये 'पसांसारिं' या 'पसांनिरिं' कह कर ही जाना अधिक उचित होगा। ध्यान रहे इसमें कभी सीधे 'पधनिसां' का प्रयोग न हो। या तो प ध~~नि सां, अथवा प प ध नि सां रि – सां, यों आन्दोलित गमक के साथ ही यह टुकड़ा लिया जा सकता है। अवरोह करते समय सांधप ही किया जाए और 'साधप' में 'सांध' के बीच मींड में छिपा हुआ निषाद अवश्य रहना चाहिए। साथ ही नट में अन्य छाया दिखाने के लिये सा नि ध – प, मनिध – प, गमनिध – प, रिगमनिध – प, इस प्रकार कोमल निषाद को छूने की क्रिया भी इस राग में प्रयुक्त की जाती है। अन्य किसी ढंग से कोमल निषाद का प्रयोग न किया जाए। छायानट में यह क्रिया आवश्यक मानी गई है। शुद्ध नट और छायानट में अन्तर दिखाने के लिये यह क्रिया—विशेष गुणिजनों ने सम्मिलित की है और धमप या पधमप करते समय अत्यल्प मात्रा में तीव्र मध्यम का छूना भी जायज़ माना गया है। किन्तु इन प्रयोगों में तीव्र मध्यम के स्थान पर शुद्ध मध्यम का प्रयोग भी गुणिसम्मत है। उससे राग की रक्ति बढ़ती ही है, घटती नहीं है। अलबत्ता बिलावल में कोमल 'नि' की क्रिया से जैसे उसे बिलावल से अलग अभिव्यक्त करते हैं, उसी प्रकार शुद्ध नट और छायानट में भी उपर्युक्त कोमल निषाद की क्रिया दोनों को भिन्न करने के लिये आवश्यक मानी गई है।

अल्हैया बिलावल और छायानट स्वर-दृष्टि से सरल हैं। तोड़ी, श्री या मारवा जैसे रागों की स्वरों की कठिनता इन में नहीं है। फिर भी इन के शुद्ध स्वरों के उच्चार, क्षण-क्षण लगने वाले कण, बार-बार आने वाले मींड के प्रयोग आदिक क्रियाएँ सहज साध्य नहीं हैं। स्वर पर पर्याप्त प्रभुत्व पाने के बाद ही इनके उच्चार अभ्यास से साध्य हो सकते हैं। इसीलिये मध्यमा और अलंकार के पाठ्यक्रम में इन रागों की शिक्षा उचित मानी गई है।

इस राग में 'परि' की स्वरसंगति है और बीच-बीच में अवरोह करते समय शुद्ध मध्यम का दीर्घ उच्चार राग के गांभीर्य को प्रदर्शित करता है। इस राग में ऐसी कई बन्दिशें हैं, जिनका सम मध्यम पर ही दिखाया गया है।

राग छायानट

मुक्त आलाप

(१) सा ध़ सा, सा प़ सा, सा प़ ध़ सा, सारिनि़सा ध़ प़ ध़
सा – प़ध़म़प़ – सारिनि़सा ध़ सा ।

(२) सा, सा ध़ सा – प़ ध़सा, सारिनिसा सा ध़ सा, सारिनि़सा – प़ध़म़प़ –
सा – ध़ सा, प़ध़म़प़ – सारिनि़सा ध़ सा, ध़म़प़ – रिनि़सा – सा ध़ सा, प़प़ध़म़प़
सासारिनि़सा ध़ सा, सा – रिनि़सा ध़ सा, रिनि़सा नि़ ध़ – ध़म़प़ रिनि़सा – नि़ ध़ सा,
ध़म़प़ रिनि़सा ध़ प़ नि़ ध़सा ।

(३) सा = नि़ रि = ग सारिनि़सा, सा ध़ = नि़ प़ध़म़प़, रि = ग सारिनि़सा, सा ध़ = नि़ प़ध़म़प़ ध़
सा, प़सासारि = ग सारिनि़सा, प़ सा सा रि = ग सारिनि़सा, सा = नि़ रि – नि़ = ध़ सा = नि़ रि – प़
सा = नि़ रि – ग सारिनि़सा ।

ग प ग
पधमप रि, रि ग=म धमप रि, रि ग=म रि=ग सारिनिसा ।

ग प प ग ग रि मम
(८) रिसासा गरिरि मगग पमम प ध – रि, रि ग म ध – रि, रि ग म प – ध – रि, ममग – ग – पपम – म

प प प ग रि ग ग
ध – रि, रि – ग=रि ग – म=ग मग=म ध – रि, रिगम नि ध प ध – रि, रिग गम मनि – ध – प धमप रि, रि ग

रि ग
ग=म रि=ग सारिनिसा ।

ग सां ग
(९) ममगरिग – म नि – ध – प, पधध रि – रिगमप – धमप ध ∿∿ धमप रि, रिग=रि गम=ग नि –

रि
ध – प – धमप रि, रि – ग=म धमप रि, रि ग ग – म रि – प रि=ग सारिनिसा ।

प नि सा रि ग म मं मं
(१०) सा – सा – रि – ग म – प ध ∿∿ – नि पधमप सां – निसां, सारिसासा – रिगरिरि –

रि ग म
गमगग – मगमम – पधपप सां – निसां, रिसासा गरिरि मगग पमम धपप सां – निसां, सानि रिसासा

पम धपप सां – निसां, पधपप सारिसासा पधपप सां – निसां, पपधमप सासारिंनिसा पपधमप सां – निसां,

ध ग ध नि
सानिनि रिसासा गरिरि मगग पमम धपप सां – निसां, पसासारि – रिगमप – पसांसांरिं – सां – निसां, सांरिंसांसां

नि नि
ध – नि पधपप रि, रि ग=म धमप सां – निसां, पसां=नि रिंनिसां ध – नि पधमप रि,

ग म प ध नि सां रिं गं ग नि गं ग
रि – ग – म – प – ध – नि – सां – रिं रि, रिगमप – धनिसांरिं – रि, रि – ग – म=रि=ग सारिनिसा ।

(११) प नि सा रि ग म ग म प ध नि गं
सा – सा – रि – ग – म – प – प – प – ध – नि – सां – रिं=गं सांरिंनिसां – निसां,

म म नि सा ग नि नि ग म म नि सां गं
प—प—ध—निसा—रि—सा—सा—रिगमप—प—प—ध—निसां—रिं—सां—निसां,

प नि रि रि सा रि ग म गं
सा—सा—ग—गरि—रि—रिरि—ममग—ग—गगपपम—म—ममधधप—प—सां—नि रिं—सां—निसां,

नि ग रि प ग
सांरिंनिसां ध—नि पधमप रि, रिगमनि ध—प ध रि, रि ग ग—म रि, रि—ग सारिनिसा।

(१२) सा प सां रिं—सां—निसां, ध—सां—निसां, सां प नि ध सां—निसां, सा—सागरि—सां—सांगंरिं—सां—निसां, सांरिंनिसां—रिं—गं सांरिंनिसां, पसांसांरिं—रिं गं गं—मं रिं—गं सांरिंनिसां, रिंरिंसांनिसां गंगंरिंसांरिं मंमंगंरिंगं मं रिं—गं सांरिंनिसां, निध सांनि रिं, रिं गं गं—मं रिं—गं सांरिंनिसां, ध—नि पधमप रि—ग सारिनिसा।

(१३) सारि रिग गमप रि, सांरिं रिंगं गंमं पं रिं, रिंगं गं—मं रिं—गं सांरिंनिसां, सां—सांगंरिं—रिंगं—रिं गंमं—गं पं रिं, रिं गं गं—मं रिं—गं सांरिंनिसां, रिंसांसां गंरिंरिं मंगंगं पंमंमं पं—रिं, रिं गं गं—मं रिं—गं सांरिंनिसां, निसांरिंगंरिं सांरिंगंमंगं रिंगंमंपं रिं, सांरिं रिंगं गंमं मंपं—रिं रिं गं गं—मं रिं—गं सांरिंनिसां, सारिनिसा—रिगमप—पसांसांरिं—रिंगंमंपं रिं, रिं गं गं—मं रिं—गं सांरिंनिसां, सां ध—नि पधमप—रि—रि ग ग—म रि—ग सारिनिसा।

—————

सा प
गंमंरिं सांनिसांधप, रिग=म धमुगमरिसानिसा, सा प सां रिं रिंनिसां धमुप गमरिसानिसा। सासासा—पपप
रिरिरि—धधध पपप रिंरिंरिं सांसांधपगमरिसानिसा। रिगमप · पसांसांरिं रिंगंमंपं गंमंरिंसां निसांधप गमरिसा।
धमप धमप गमरिसानिसा, रिंनिसां रिंनिसां धमप धमप गमरिसानिसा।] सासासा पपप सांसांसां पंपंपं
गंमंरिंसां निसांधप गमरिसा। साप=प गमरिसा, परिं=रिं निसांधप सांपं—पं गंमंरिंसां निसांधप गमरिसा। सासासा
पपप सासा पप गमरिसानिसा, पपप सांसांसां पप रिंरिं सांरिंनिसांधप, सांसांसां पंपंपं सांसां पंपं गंमंरिंसांनिसां,
सांरिंनिसां पधमप गमरिसा।

राग छायानट

बड़ा ख्याल

ताल – विलम्बित एकताल

गीत

स्थायी—पानन बीरी बनाए खवाये
सुरजनवा रहस रहस गरवा लगाये ।

अंतरा—लागत डर मोहे सास ननँद को
कैसे लाल लाल मुखवा दिखाये ॥

स्थायी

×		०		५	
		९		११	
		प सा	ग ग	सा प	ग
		रि – गग –	म मनि॒ ध प	पधमप – रि –	रि ग म – ध प
		पा ऽ •• ऽ	• •• न न	बी••• ऽ • –	• • री ऽ • व

×		०		५	
			ग		
म	मप ग – –	गम रि – –	रि ग म – ध प	म	मप ग – –
ना	•• • ऽ ऽ	•• • ऽ ऽ	• • ये ऽ • रा	वा	•• • ऽ ऽ
		९		११	
				रि	
गम रि – – ग	सारिनि॒सा – – –	सा प॒ – –	प॒ सा ऽ ऽ	ग रि ग –	– – गम रिग
•• • ऽ ऽ •	ये••• ऽ ऽ ऽ	सु • ऽ ऽ	र • ऽ ऽ	ज • न ऽ	ऽ ऽ •• ••

×		०		५	
सारिनिसा – – –	साधु – – नि	धु पु – –	–	सा पु – –	पु सा – –
धा • • • ऽऽऽ	• • ऽ ऽ •	• • ऽ ऽ	ऽ	र • ऽऽ	ह • ऽ ऽ
०		९		११	
नि सा – –	निसा – – –	ग रि रि ग	– – गम रिग	सारिनिसा – – –	—
म • ऽ ऽ	• • ऽ ऽ ऽ	र • ह •	ऽ ऽ •ऽ• •ऽ•	स • • • ऽऽऽ	ऽ
×		०		५	
ग रि रि ग	– – म ग रि	ग म प रि ग म प	ग – – पध मग	म	मग ग – –
ग • र •	ऽ ऽ • • •	या • • •	ऽ ऽ •ऽ• ल•	गा	•• • ऽ ऽ
०		९		११	
गम रि – – ग	सारिनिसा – – –				
• • • ऽ ऽ•	पे••• ऽ ऽ ऽ				

अंतरा

×		०		५	
सां प – –	प सां सां	प सां – नि ध	ध नि सां – नि गंरिं –	प सां	निसां – – –
दा • ऽ ऽ	ग त	ब ऽ र •	• ऽ • मो• ऽ	हे	• • ऽ ऽ ऽ
०		९		११	
सांरिंनिसां – –	निध निध	ध सां – निसांगंरिं –	गं गं रिं – रिं – गं –	सांरिंनिसां – –	–
मा• • • ऽ ऽ	स• न•	न ऽ • द • • ऽ	• ऽ • ऽ • ऽ	मो• • • ऽ ऽ	ऽ

×		०		५	
सां ध – –	– – – – नि	पधमप – – –	–	पधमप – – –	पग म रि
• • ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ •	•••• ऽ ऽ ऽ	ऽ	कै••• ऽ ऽ ऽ	•• • •

०		९		११	
सारिनिसा – –	–	ग रिग मप – प	पसां सांरिं – रिं	सांरिं निसां – –	सां ध – – – नि
से • • • ऽ ऽ	ऽ	ला• •• ऽ ल	ला• •• ऽ ल	गु• •• ऽ ल	ख ऽ ऽ ऽ ऽ •

×		०		५	
पधमप – – –	प ग – –	ग म रि – –	ग म रि ग म – ध प	म	मप ग – –
वा••• ऽ ऽ ऽ	• • ऽ ऽ	• • • ऽ	• • • ऽ • दि	खा	•• • ऽ ऽ

०		९		११	
गम रि – – ग	सारिनिसा – – –				
•• • ऽ ऽ •	ये • • • ऽ ऽ ऽ				

ख्याल—विलम्बित एकताल

गीत

स्थायी—येरी अब गूँद लावोरी मालनिया मोमों बने के सीस सेरा (सेहरा)।
अन्तरा—लागी लगन सुलतान सलीम की बन बनी संग स.वो नेरा (नेहरा)॥

स्थायी

×		०		५	

०		९		११	
		(प) रि – ग –	रि रिग (म)मध प	– मग म रि	– सानि रि सा
		ये ऽ • ऽ	• • • • • • री	ऽ अ • • ब	ऽ गूँ • • द

×		०		५	
(प) सा	–	सा धु	नि धु – प –	सा प प –	स
ला	ऽ	• •	• • ऽ • ऽ	वो • री ऽ	•

०		९		११	
सा	सा सारि – – – –	सा	निसा – – –	(म) सा	(ग) रिं ग म मग
मा	ल नि • ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ	या	• • ऽ ऽ ऽ	नो	सों • • च •

×		०		५	
(ग) प	पप – – –	पपधनिसां – – –	निसां – – –	(प) सां ध – – नि	ध प – –
ने	• • ऽ ऽ ऽ	के • • • • ऽ ऽ ऽ	• • ऽ ऽ ऽ	सी • ऽ ऽ •	स • ऽ ऽ

०		९		११	
पधपप – म –	पग – मरि –	(ग) रि ग – –	रि रिग (म)मध प	– मग म रि	– सानि रि सा
से • • • ऽ रा ऽ	• • ऽ • • ऽ	ये • ऽ ऽ	• • • • • री	ऽ अ • • ब	ऽ गूँ • • द

अन्तरा

×		०		५	
०		९		११	
		सां प	प सां	सां सां	– सां
		ला	गी	ल ग	ऽ न
×		०		५	
सांगंरिं' – – – –	सां	गं रिं' गं–मं गं –	मंपंगंमं – रिं' –	सां	निसां - - - निसां - - रिं'
सु • • ऽ ऽ ऽ ऽ	ल	ता • ऽ • • ऽ	• • • • ऽ • ऽ	न	••ऽऽ ऽ ••ऽऽ स
०		९		११	
सां	सां – ध – नि	ध प	मप – प प	रिं'	सां
ली	म ऽ • ऽ •	की •	• • ऽ व न	र	नी
×		०		५	
रिं'	सां	सांरिं'सांसां –	सां – ध – नि	ध प	पप – – –
सं	ग	ला • • • ऽ	• ऽ • ऽ •	गो •	•• ऽ ऽ ऽ
०		९		११	
पधमप म	पग – मरि –	ग रि ग – –	रि रिग मध म प	– मग म रि	– सानि रि सा
ने••• य	•• ऽ ••	ये • ऽ ऽ	• •• •• री	ऽ अ• • व	ऽ गूँ • • द

राग छायानट

छोटा ख्याल

ताल—त्रिताल

गीत

स्थायी—भरी गगरी मोरी ढुराई छैल।
तुम रावत हो कछु मन में मैल॥

अंतरा—हौं जमुना जल भरी जात रही।
आन अचानक घेर लई, रोकत हो पनघट की गैल।

स्थायी

×				५				०				१३			
						गम	रिग	(ग)म	(म)नि॒	ग	प	(प)रि	ग	मध	मग
						भ•	री•	ग	ग	री	मो	•	री	ढुऽ•	र•
मग	म	रि	मा	(सा)नि॒	रि	सा	सा	सा	गरि	ग	म	प	—	(नि॒)ध	नि
रा•	•	ई	छै	•	ल	तु	म	रा	••	व	त	हो	ऽ	क	छु
सां	रिं	सां	(सां)ध	नि॒	प	गम	रिग								
म	न	में	मै	•	ल	म•	री•								

अंतरा

								म	मग	(ग)प	प	प	—	नि	ध
								हौं	••	ज	मु	ना	ऽ	ज	ल
नि	सां	—	सां	—नि	रिं	सां	सां	(सां)ध	—	(सां)प	(सां)ध	(ध)सां	—	सां	सां
भ	री	ऽ	जा	ऽ•	त	र	ही	आ	ऽ	न	अ	चा	ऽ	न	क

६

×				५				०				१३			
प सारि	निर्सा	धनि्	प	म	ग	म	रि	सा	गरि	ग	म	प	–	नि ध	नि
धे•	••	र•	ल	ई	•	•	•	रो	••	क	त	हो	ऽ	प	न
सां	रिं	सां	सांध	नि्	प	म	रि ग								
घ	ट	कीं	गी•	•	ल	म	री								

तानें

१)	रिग	मप	गम	रिसा	नि़सा	म	रि ग	म	नि्	ध	प	रि	ग	म-ध	प
						भ	री	ग	ग	री	मो	•	री	टुऽ•	र
२) रिग	रिग	मप	गम	रिसा	नि़सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,	,,	,,	,,
३) रिरि	गग	मम	पप	गम	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
४) रिग	मप	–	गम	रिसा	नि़सा		,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
५) रिग	रि, ग	मग	रिग	मप	गम	रिसा	नि़सा	,,	,,	,,	,,		,,	,,	,,
६) रिरि	रि, ग	गग	मम	पप	गम	रिसा	नि़सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
७) प रि	–	–	गम	पप	म	रिसा	नि़सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
८) सासा	सा, प	पप	रिग	मध	मप	गम	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,

राग कामोद

आरोहावरोह—सा म – रि प, मपधप सां, सां ध – प, पधमप – मप गम – सारि – सा ।

जाति—वक्र औडव – षाडव या वक्र षाडव-षाडव ।

ग्रह—षड्ज । आलाप में ऋषभ ।

अंश—पूर्वांग में ऋषभ उत्तरांग में पंचम ।

न्यास—पंचम ।

रागवाची स्वर-संगति—रि प ।

विन्यास—षड्ज ।

मुख्य अंग— सा, म रि प । गमप गम सारि – सा ।

समय—रात्रि के प्रथम याम में कल्याण, बिहाग, हमीर आदि के बाद और केदार के पूर्व ।

प्रकृति—कुछ गंभीर, कुछ तरल ।

विशेष विवरण

कामोद एक अच्छा खासा मधुर राग है । इसमें दो मध्यम लगते हैं । केदार में 'सा – म' इन दो स्वरों की संगति और इसमें 'रि – प' की संगति मुख्यतः रागवाची है । केदार में 'सा – म' करते ही जैसे उसकी छाया खड़ी होती है, वैसे ही कामोद में 'रि – प' कहते ही उसकी मूर्ति खड़ी हो जाती है । इसका स्वर-रूप निम्नोक्त है :—

सा, रि प, पधमप – रि प, धमप – सां, ध – प, पधमप – गमप ग म, सा – रि – सा ।

इस राग में ऋषभ का उच्चार करते समय शुद्ध मध्यम को छूना आवश्यक है । यह ऋषभ मध्यम से मींड लेकर उच्चरित होगा । साथ ही अन्य स्वरों के उच्चार भी, जहाँ तक हो सके, बगैर तोड़े, मींड से ही किये जाएँ, तो बहुत अच्छा । बीन या सितार जैसे वाद्यों में एक ही पर्दे पर तार को खींच कर दूसरे स्वर पर पहुँचते हैं अथवा सारंगी जैसे वाद्यों पर, बिना उँगली उठाये, घसीट कर एक स्वर से दूसरे स्वर पर जाते हैं, उसी प्रकार इस राग में मध्यम से ऋषभ, ऋषभ से पंचम, पंचम से तार षड्ज इत्यादि स्वर मींड से ही लेने चाहिये । कुछ तरल प्रकृति के और द्रुत गति के जो राग हैं,

X ५ ० १३

१८)
रिगम | प – प | गमरि | सानिसा, | पसांसां | रिं–रिं | सांरिं | निसांधप, | रिंगंमं | पं – पं | गंमंरिं | सांनिसां, | पसांसां | रिं–रिं | सांरिं | निसांधप

रिगम | प – प | गमरि | सानिसा, | सांरिं | निसांधप | गमरि | सानिसा, | गग | रीमो • री | टुर | का | ई | सांरिं | निसांधप

गमरि | सानिसा, | गग | रीमो | • री | टुर | का | ई | ,सांरिं | निसांधप | गमरि | सानिसा, | गग | रीमो | • री | टुर

१९)
रिगम | प,रिग | मप,ग | मरिसा, | पसांसां | रिं,पसां | सांरिं | नि | सांधप, | रिंगंमं | पं,रिंगं | मंपं,गं | मंरिंसां, | पसांसां | रिं,पसां | सांरिं | नि | सांधप,

रिगम | प,रिग | मप,ग | मरिसा, | रिगम | प,पसां | सांरिं,रिं | गंमंपं, | गंमंरिं | सां,सांसां | धपग | मरिसा, | गग | रीमो | • री | टुर

का | टुर | का | भरी | गग | रीमो | • री | टुर | का | टुर | का, | भरी | गग | रीमो | • री | टुर

२०)
सासासा | पपप | गमरि | सानिसा, | पपप | सांसांसां | निसांध | पमप, | सांसांसां | पंपंपं | गंमंरिं | सांनिसां, | पपप | सांसांसां | निसांध | पमप,

सासासा | पपप | गमरि | सानिसा, | सासासा | पपप | सांसांसां | पंपंपं | गंमंरिं | सांनिसां | धपग | मरिसा, | गग | रीमो | • री | टुर

का | ओछै | • छ, | भरी | गग | रीमो | • री | टुर | का | ओछै | • छ, | भरी | गग | रीमो | • री | टुर

२०)
सारिसा | रि,रिग | रिग,ग | मगम, | मपम | प,पध | मप,ग | मरिसा, | सारिनि | सा,पध | मप,सां | रिंनिसां, | पंधंमं | पं,गंमं | रिंसां,सां | रिंनिसां,

पधम | प,गम | रिसा,सा | रिनिसा, | सा | प | सां | पं | गंमंरिं | सां,सांसां | धप,ग | मरिसा | गग | रीमो | • री | टुर

सां ग

का | ओ | • | भरी | गग | रीमो | • री | टुर | का, | ओ | • | भरी | गग | रीमो | • री | टुर

(sां ग)

———

राग कामोद

रि   नि
आरोहावरोह—सा म – रि प, मपधप सां, सां ध – प, पधमप – मप गम – सारि – सा।

जाति—वक्र ओडव – षाडव या वक्र षाडव-षाडव।

ग्रह—षड्ज। आलापि में ऋषभ।

अंश—*पूर्वांग में ऋषभ उत्तरांग में पंचम।*

न्यास—पंचम।

म रि
रागवाची स्वर-संगति—रि प।

विन्यास—षड्ज।

रि
मुख्य अंग – सा, म रि प। गमप गम सारि – सा।

समय—रात्रि के प्रथम याम में कल्याण, बिहाग, हमीर आदि के बाद और केदार के पूर्व।

प्रकृति—कुछ गंभीर, कुछ तरल।

विशेष विवरण

कामोद एक अच्छा खासा मधुर राग है। इसमें दो मध्यम लगते हैं। केदार में 'सा – म' इन दो स्वरों की संगति और इसमें 'म रि – प' की संगति मुख्यतः रागवाची है। केदार में 'सा – म' करते ही जैसे उसकी छाया खड़ी होती है, वैसे ही *कामोद में 'म रि – प' कहते ही उसकी मूर्ति खड़ी हो जाती है। इसका स्वर-रूप निम्नोक्त है :—*

ग रि   ग रि   नि   प ग म
सा, रि प, पधमप – रि प, धमप – सां, ध – प, पधमप – गमप ग म, सा – रि – सा।

इस राग में ऋषभ का उच्चार करते समय शुद्ध मध्यम को छूना आवश्यक है। वह ऋषभ मध्यम से मींड लेकर उच्चरित होगा। साथ ही अन्य स्वरों के उच्चार भी, जहाँ तक हो सके, बगैर तोड़े, मींड से ही किये जाएँ, तो बहुत अच्छा। बीन या सितार जैसे वाद्यों में एक ही पर्दे पर तार को खींच कर दूसरे स्वर पर पहुँचते हैं अथवा सारंगी जैसे वाद्यों पर, बिना उँगली उठाये, घसीट कर एक स्वर से दूसरे स्वर पर जाते हैं, उसी प्रकार इस राग में मध्यम से ऋषभ, ऋषभ से पंचम, पंचम से तार षड्ज इत्यादि स्वर मींड से ही लेने चाहिये। कुछ तरल प्रकृति के और द्रुत गति के जो राग हैं,

अयज्ञ हैं। कुछ लोग, विशेषतः भातखण्डे प्रणाली के लोग इसमें कोमल निषाद का प्रयोग करते देखे गए हैं। हमारी राय में यह गुणीजन मान्य नहीं है, नितान्त गलत है, प्रचार के विरुद्ध है और गायकी-परंपरा के प्रतिकूल है। इसलिये कोमल निषाद का प्रयोग भूल से भी न करें।

सामान्य प्रचार में केदार के बाद यानी रात्रि के प्रथम याम के अंत में यह राग गाया जाता है। किन्तु हमारी राय में कल्याण, बिहाग, हमीर जिनमें गांधार निषाद और धैवत बल पाते हैं, इन रागों के बाद और केदार, जिसमें गान्धार का प्रायः समूचा त्याग और शुद्ध मध्यम का बाहुल्य है, उसके पूर्व इसे गाना चाहिये। षड्ज मध्यम का संयोग होते ही गांभीर्य खड़ा होता है और यह गांभीर्य बढ़ती हुई निशा को सूचित करता है। ज्यों ज्यों रात बढ़ती जाएगी, त्यों-त्यों ऋषभ पंचम अल्प होते जाएंगे और अंत में तिरोहित हो जाएँगे और गान्धार, धैवत निषाद अपनी तीव्रता को त्याग कर कोमल बनते जाएँगे एवं रात्रि के शान्त गंभीर वातावरण को निदर्शित करने के लिये शुद्धमध्यम, 'सा–म' की स्वर संगति में अथवा मुक्त मध्यम के रूप में बल पाता जाएगा। यह एक प्राकृतिक धर्म मालूम देता है। संभवतः नैसर्गिक नियमों को देखकर ही महर्षियों ने रागों के क्रम-विकास की मर्यादा बांधी हो और तदनुसार समय का क्रम नियत किया हो, ऐसा अनुमान होता है।

रि – प स्वर-संगति, तार सप्तक की ओर झुकाव—इन बातों से इसमें कुछ तरलता प्रतीत होती है और स्वरों के उच्चार मींड से होने के कारण कुछ गाम्भीर्य भी इसमें दिखाई देता है। इसमें श्यामकल्याण की तरलता नहीं है, हमीर की उद्दामता नहीं है और केदार की गंभीरता नहीं है। फिर भी यह चंचल या उच्छृंखल नहीं है, ऐसा अनुभव होता है।

राग कामोद

मुक्त आलाप

म म म रि म रि म म रि
(१) सा, सा रि – सा, रि प – मप, सा रि प – मप, सारिनिसा रि प मप, सा रि – सा रि – प –

म रि प म म
मप, पधमप सा – सारिनिसा रि – प – मप, ग मपगम – सा रि – सा।

म रि प म रि सा प
(२) रिरिसानिसा रि – प – मप, धधपम प सा, रिरिसानिसा रि – प – मप, सारिनिसा ध – प प –

म रि प म रि प म रि
पप, सानिरिसा रि प – मप, पम धप सा – सानिरिसा रि – प – मप, पम धप सा – सानिरिसा रि – प – मप,

म रि प सा
पम धप सानिरिसा रि प मप, पधमप – ग – मपगम रि – सा।

म म म
(३) रिरिसानिसा रि – प – मप, मरि—मसा रि – प – मप, रिनिरिसा रि – प – मप, धधपम प सा–

म प म
रिरिसानिसा रि – प – मप, पधमप ग – म सा—रि – सा।

सा सा नि रि रि सा रि प प म सा सा नि रि रि सा रि
(४) रिरसा—सा – ममरि—रि – प – मप, ध—धप—प – रिरिसा—सा – ममरि—रि – प – मप,

रि प सा रि रि
ध—धप – रि—रिसा · म—मरि – प – मप, म ध धप – परि रिसा – साम मरि – प – मप, म धधप परिरिसा

रि प म प सा
साममरि प – मप, धधपम प सा – रिरिसानिसा रि ममरिसारि प – मप, धधपमप – ग – मपमगम – रि – सा।

सा सा नि प प म
(५) रि=रि=सा—सा – म रि – ध=ध=प—प – प सा म रि म सा म रि प – मप, पधपमप

म म
ग – म सा रि – सा।

म म म म
(६) सानि—रिसा रि, रिसा – रिनि – रिसा – रि, धप—सानि—रिसा रि, धप – सानि – रिसा – रि,

म म सा प म रि म
सारिसा—निसा रि – पधपमप सा – सारिसानिसा रि, प सा रि प – मप, गमपगम सा—रि – सा।

सा सा रि रि
(७) रिसा—मरि प – मप, रिरि—सा ममरि प – मप, रिसासा मरिरि प – मप, धपप सानिनि रिसासा

प प ग म
मरिरि प – मप, सारि साम रिप – मप, मधमप ग – म सा रि – सा।

रि रि
(८) रिसासा मरिरि प – मप, सानिनि रिसासा मरिरि प – मप, धपप सानिनि रिसासा मरिरि

रि सा सा सा रि म म प सा सा सा रि
प – मप, मरि मसा मरि प – मप, धम धप सानि रिसा मरि मसा मरि प – मप, पधमप गमप गम –

म
सा रि – सा।

म रि सां म म सां सा प म रि सां सा
(९) रि प ध – प – मप, सा रि प ध – प – मप, प सा रि प ध – प – मप, ध – प –

सां सा सा प म रि सां सा सां सा सां
मप – ध – प – मप, ध प सा रि प ध – प – मप, सारि=रिप=पध – प – मप, पसा=सारि=रिप=पध –

प म म
प – मप, धपपमप – ग – मपगम – सा—रि – सा।

सा रि सां प सा सां सा
(१०) सा, मरि पम ध – प – मप, पम—धप सा – मरि पम ध – प – मप, रि—रिसा –

रि रि सां सां
म—मरि – प—पम – ध – प – मप, ध—धप – सा—सानि – रि—रिसा – म—मरि – प—पम – ध – प –

सां प
मप, धपप सानिनि रिसासा – सानिनि रिसासा मरिरि – मरिरि पमम ध – प – मप, धमप – ग –

म म
मगगम – रि – सारि – सा।

म रि सां सां
(११) रिरिसानिसा रि – ममरिसारि प – धधपमप ध – प मप, मरि—मसा—मरि—पम् ध – प – मप,

सां सां
धप—धम्—पग—मरि—मसा—मरि—पम्— धप ध – प – मप, रिरिसा ममरि पपम् धधप ध – प – मप, धधप

सां नि सा रि
सासानि रिरिसा ममरि पपम् धधप ध – प – मप, रि=रि–सा—सा – म म=रि—रि – प=प=म्—म् –

म् सां प म
ध=ध=प—प – ध – प – मप, पधमप ग मरि – सा रि – सा।

प
(१२) सारिनिसा पधमप सां – निसां, पमधप सां – निसां, मरि—पम्—धप सां – निसां, रिसा—मरि-

म म रि ध प प
—पम्–धप सां – निसां, सा रि – रि प – प सां – निसां, साममरि – रिपपम् – मधधप – सां – निसां,

प रि म् प
रिसासा मरिरि पमम् धपप सां – निसां, रिसा—मरि प – मरि—पम् ध – पमधप सां – निसां, सा=रिसा

प रि प सां
सा=मरि रि=पम् म्=धप सां – निसां, पमधप सा – रिसामरि प – पमधप सां – निसां, सांरिंनिसां ध –

प सा
प – मप, पधमप ग – म रि – सा।

म रि म रि सां मं सां प प म
(१३) सा रि प – रि प ध – प सां रिं – सां – निसां, ध – मप – सां – निसां, ध=ध–प—प

सा सा नि रि रि सा सा प प म्
सां – निसां, रि=रि=सा—सा म=म=रि—रि ध – ध=प—प सां – निसां, रिनिसा धमप सां – निसां,

रि सां प सां
रिसा—मरि–प – मरि—पम्—ध – पम्—धप—सां – निसां, रिसासा—मरिरि—प – मरिरि--पमम्—ध –

प
धमम्—धपप—सां – निसां, रिरिसानिसा ममरिसारि धधपमप सां – निसां, रिसासा—मरिरि – मरिरि--पमम् –

सां म रि प म
पमम्—धपप – सां – निसां, सांरिंनिसां – ध – प – मप, पधमप – रि प – मप, ग म – सा रि – सा।

प मं

(१४) सा=रिसा सा=मरि रि=पम् म्=धप सां – निसां, रिंरिंसांनिसां रिं, धधमप

मं सां म सां मं मं

रिंरिंसांनिसां रिं, धधपमप ध – रिरिसानिसा रि – धधपमप ध – रिंरिंसांनिसां रिं, सांनिरिंसां रिं – , पमधप

मं मं म सां मं

सांनिरिंसां रिं, मरि—पम· धप – सांनिरिंसां रिं, सानिरिसा रि – पमधप ध – सांनिरिंसां रिं, रिंरिंसांनिसां

मं मं मं मं रिं पं मं

रिं, धधपमप रिंरिंसांनिसां रिं, रिरिसानिसा धधपमप रिंरिंसांनिसां रिं, सां रिं पं गं मं सां रिं सां –

सां म रि मा प ग म म

निसां, सांरिंनिसां प – प – मप, पधमप – रि – प – ध – प – मप, ग म सा रि – सा।

(१५) रिरिसानिसा ममरिसारि पपमरिम धधपमप सां – निसां, रिरिसा ममरि पपम् धधप सां – निसां,

रि रि प सा मा सा रि म्

साम मरि – रिध पम् – मध धप – सां – निसां, मरि—मसा – मरि—पम्—धप सां – निसां, धम्—धप –

म म रि प ग प नि नि

सानि—रिसा—मरि—मसा—मरि—पम्—धप सां – निसां, सा रि प ध – प, प सां सां रिं – सां – निसां,

नि नि म

पसा—सारि=सा रिप—पध=प पसां—सांरिं—सां – निसां, धपप—सानिनि—रि=सा, मरिरि—पमम्—ध=प,

मं मं

धपप—सांनिनि—रिं—सां – निसां, सारिनिसा पधमप सांसांरिं – सां – निसां, सारिनिसा पधमप सांरिंनिसां पधमप

मं प सा प मं सां म सा म सां मं

सांसांरिं – सां – निसां, पसा साप पसां सांसांरिं – सां – निसां, ध=प रि—सा ध – प रि—सा ध=प सांसांरिं –

म सां मं सा सा नि

सां – निसां, रिरिसानिसा—रि=सा धधपमप—ध=प रिंरिंसांनिसां रिं – सां – निसां, रि=रि=सा—सा –

रि रि सा रि रि रि प प म् सां सां नि मं

म=म=रि—रि – प=प=म्—म् – ध=ध – प—प – रिं=रिं=सां सां – रिं – सां – निसां, सांरिंनिसां

मं रिं पं मं मं सां प म म

रिं – पं – गं – पंगंमं – सां रिं – सां, सांरिंनिसां ध – प, पधमप – ग – मगगम – रि – सा रि – सा।

राग कामोद

ख्याल—विलम्बित एकताल

गीत

स्थायी—हूँ तो अनमन छाँडिये निस दिन प्रेम पिया को संग।
अंतरा—विधना तोपे यहा माँगत हूँ मेरे प्यारे को कीजिये एक ही संग॥

स्थायी

X		०		५	
०		**९**		**११**	
		म रि	प	म म़ प	सां — ध — प
		हूँ	तो	ज न	ऽ म ऽ न
X		**०**		**५**	
म प	म़प — — —	पधमप — — —	म री	सा	निसा — — —
छाँ	•• ऽ ऽ ऽ	•••• ऽ ऽ ऽ	डि	ये	•• ऽ ऽ ऽ
०		**९**		**११**	
सा प़	प़ सा	म रि	सा	म रि प	— म़प
नि	स	दि	न	प्रे •	ऽ ••
X		**०**		**५**	
प पसां — —	ध — प —	पधमप — — —	प ग	सा मरमम — — —	म रि सा
म •• ऽ ऽ	• ऽ पि ऽ	या••• ऽ ऽ ऽ	•	को••• ऽ ऽ ऽ	• सं
०		**९**		**११**	
सांमरि— — — —	सा	निसा— — सा	सा रि सा ममरिरिप — — —	ध म़ प	सां — ध — प
•••ऽ • • •	ग	• • ऽ ऽ हूँ	तो•••• ऽ ऽ ऽ	ज न	ऽ म ऽ न

अंतरा

×		०		५	

०		९		११	
		सां पप	प सां	सां	- निसां
		निध	ना	तो	ऽ ••

×		०		५	
सां	निसां - सां -	निध - -	नि सां रिं ध नि सांरिं	प नि सां - - रिं सां	सां ध
पे	•• ऽ य ऽ	ही • ऽ ऽ	माँ • • •	ऽ ऽ ग ऽ ऽ • त	हूँ

०		९		११	
पप - - -	म रि	रि प	रि - पधप	म रि	सा - - सा
•• ऽ ऽ ऽ	गे		ऽ प्या• रे	को	• ऽ ऽ की

×		०		५	
सां रिं	सां	प सांरिंनिसां - - -	सां ध प	प ग	सा मगमग रि
जि	ये	ए • • • ऽ ऽ ऽ	क ही	अं	•••• •

०		९		११	
नि सा - सामरि - -	सा	निसा - - सा	सा रि सा म म रि रिप - - -	ध मप	सां - ध - प
• ऽ • • • ऽ ऽ	ग	•• ऽ ऽ हूँ	तो • • • • ऽ ऽ ऽ	ज न	ऽ ग ऽ न

राग कामोद

छोटा ख्याल

ताल – त्रिताल

गीत

स्थायी—जाने न दूँगी री माई अपने बलम को
नैनन में कर राखूँ पलकन मूँद मूँद कर ।

अंतरा—जब आवेंगे लाल ही आप ही मोरे मंदर
लेहूँ बलैया झूम झूम कर ॥

स्थायी

×				५				०				१३			
											प	म्	प	मप	धप
											जा	ने	न	दूँ•	••
(सा)म	रि	–ग	सा–रि	(म)रि	प	प	–	(सां)ध	(नि)ध	प	प	म्	प	मप	धप
गी	•	ऽ •	रीऽ•	मा	•	ई	ऽ	मा	•	ई	जा	ने	न	दूँ•	••
(सा)म्	रि	–ग	सा–रि	(म)रि	प	प	–	ग	म	रि	सा	सा-नि̱	रि	सा	–
गी	•	ऽ •	रीऽ•	मा	•	ई	ऽ	अ	प	ने	ब	लऽ•	म	को	ऽ
नि̱	ध̱	(नि̱)ध̱	(नि)ध̱	सा	–	सा	सा	रि	–	सा	–	सा	सा	सा	सा
नै	•	न	न	में	ऽ	क	र	रा	ऽ	खूँ	ऽ	प	ल	क	न
गरिरि-	–	सा	गरिरि-	–	सा	–	सा	(म)रि	प	–					
मूँ• •ऽ	ऽ	द	मूँ••ऽ	ऽ	द	ऽ	क	र	•	ऽ					

अंतरा.

×				५				०				१३			
								सां प	प	प	–	प सां	–	सां	–
								ज	ब	आ	ऽ	वैं	ऽ	गे	ऽ
सां	–	सां	सां	सां–मं	गं–मं	रिं	सां	सां	ध	–	प	–म	धप--	रि म	रि
ला	ऽ	ल	ही	आऽ•	•ऽ•	प	ही	मो	•	ऽ	रे	ऽ•	मं•ऽऽ	द	•
सा	–	–	सांमं	गंमं	रिं	सां	रिं	सां	–	–	–	नि ध	नि	सां	रिं
र	ऽ	ऽ	ले•	••	हीं	•	ब	लै	ऽ	ऽ	ऽ	याँ	•	•	•
रिंसांसां-	–	ध	पमम -	–	रि	–ग	सा	म रि	प	–					
रू••ऽ	ऽ	म	झु••ऽ	ऽ	म	ऽ•	क	र	•	ऽ					

राग कामोद

झपताल

गीत

स्थायी—गोरे बदन पर श्याम डिठोना ।
तिलक माल और गूँदना ॥

अन्तरा—गोरे-गोरे कर जामें हरी-हरी चूरियाँ ।
पाछे गजरा और फूँदना ॥

स्थायी

×		२			०		३		
म रि	—	रि प	—	प	प	प	ध म्	प	प
गो	ऽ	रे	ऽ	ब	द	न	प	•	र
म्	प	सां सां धनि	सां	सां ध	ध म्	प – धप	पग	म	रि
श्या	•	म•	•	डि	ठो	•ऽ••	ना•	•	•
म रि	रि प	ध म्	प	प ग	म	रि	म नि॒	सा	सा
ति	ल	क	•	मा	•	ल	औ	•	र
म रि	रि प	म् ध	प	प सां	सां ग	म	म सा	रि	सा
गूँ	•	•	द	•	ना	•	मा	•	ई

अन्तरा

प	प	सां	—	सां	सां	सां	सां	—	सां
गो	रे	गो	ऽ	रे	क		जा	ऽ	में

राग मल्हार

आरोहावरोह—सा रि – रि प, म प नि – नि सां, नि म प, मनिमप ग ~~~ पमम रि – सा, नि – नि सा।

जाति—वक्र षाडव – षाडव।

ग्रह—ऋषभ।

अंश—पंचम।

न्यास—पंचम।

अपन्यास—ऋषभ।

विन्यास—षड्ज।

मुख्य अंग—सा, रि – – म प, नि – नि सां, ग ~~~ पमम – रि – सा।

समय—वर्षा-ऋतु में चौबीस घंटे।

प्रकृति—मध्य गम्भीर।

विशेष विवरण

मल्हार एक अतीव प्रसिद्ध राग है। किंवदन्तियों ने इसे खूब प्रसिद्धि दी है। प्रचार में जो मल्हार गाया जाता है, उसे आजकल सब कोई मियाँमल्हार के नाम से पहचानते हैं और उसका संबंध तानसेन मियाँ से जोड़ा जाता है। पुराने राग-वर्गीकरण में जो मुख्य छः राग माने जाते हैं, उनमें जो मेघ राग के नाम से प्रसिद्ध है, उसी में कुछ हेर-फेर, स्वरों का लगाव-बढ़ाव करके मियाँ मल्हार को प्रचलित किया गया होगा, ऐसा अनुमान किसी-किसी ने किया है। कई गुणिजनों को यह भी कहते सुना है कि मल्हार अंग में दरबारी का अंग मिला कर मियाँ मल्हार बनाई गई है। किसी-किसी ने यह भी कल्पना की है कि मेघ के कोमल निषाद के अतिरिक्त उसमें शुद्ध निषाद और धैवत का अल्प उपयोग करने से मल्हार होता है और उसी मल्हार के पूर्वांग में कोमल गान्धार का प्रयोग करके मियाँ मल्हार बनाया गया है। अलबत्ता गमरिसा' यह दरबारी का अंग सीधा न लेकर ग ~~~ पमम – रि, यों विशेष अंग से लिया जाता है।

स्थूल मान से इसमें कोमल गान्धार लगता है और दो निषाद का प्रयोग होता है। कुछ लोगों का कहना है कि इसका गान्धार दरबारी के गान्धार से मिलता है और ऐसे गायक सुने गए हैं जो मल्हार के पूर्वांग में दरबारी के ढंग से गान्धार लगाते हैं। परन्तु परंपराप्राप्त हमारी राय इससे भिन्न है। हमारी परंपरा में इसका गान्धार न कोमल है और न शुद्ध है। मध्यम से आन्दोलन लेते हुए जब इसके गान्धार का उच्चार किया जाए तब ध्यान रहे कि वह दरबारी के गान्धार से कुछ ऊँचा रहे। दरबारी से इस राग को भिन्न रखने के लिये गान्धार के आन्दोलन की और उच्चार की यह क्रिया हमारी परंपरा में अनिवार्य मानी जाती है। यह गान्धार बाईस श्रुतियों की सामान्य व्यवस्था में अपवाद-रूप है और वह गुरुमुख से ही कंठगत किया जा सकता है। साथ ही, गान्धार को आन्दोलन देने के बाद कभी भी 'मरिसा' न कहें, अपितु 'पमम – रि – सा' ही कहें, जिससे कान्हड़ा के आभास से बचते हुए राग की शुद्धि कायम रख सकेंगे।

कोमल निषाद के साथ ही शुद्ध या तीव्र निषाद का प्रयोग इस राग में आवश्यक माना गया है। नि् – नि सां (ध) करते समय जितनी अल्प मात्रा में धैवत का स्पर्श होगा, उतना ही धैवत का प्रयोग वहाँ वांछनीय है। मल्हार और बहार दोनों ही में जब 'नि् ध नि सां' किया जाता है, तब कोमल निषाद का उच्चार दीर्घ तो होता ही है और इसी से पुस्तकी गायकों से, सूक्ष्मता न समझने के कारण, मल्हार में बहार अंग का अविर्भाव हो जाता है। इससे बचने के लिये दोनों की नीचे लिखी स्थूल क्रियाएँ ध्यान में रखी जाएँ।

मल्हार में 'मपनि् – नि सां' (ध) यों 'मप' से ही आरंभ किया जाय और बहार में 'मप—गूम नि् – ध नि सां' या 'गूमनि्—धनिसां' यों किया जाय। मल्हार में बहार की भांति धैवत का स्पष्ट प्रयोग न हो जाए इसलिये 'नि् – निसां' ही करना चाहिए जिससे जितनी अल्प मात्रा में धैवत वाछनीय है, वह अपने आप लग जाएगा और राग की शुद्धि.बनी रह सकेगी।

गान्धार और निषाद की ऊपर लिखी दोनों क्रियाएँ कृपया गुरुमुख से ही सीख लें और अभ्यास से अपना लें। अब मल्हार की 'रिप' संगति का प्रयोग समझ लें। मल्हार और कामोद इन दोनों रागों में यह स्वर-संगति ली जाती है किन्तु दोनों में इसे लेने का ढंग बिल्कुल भिन्न है। जब मल्हार अंग से जाएँगे तब 'सा, रि – म प' (रि) यों दीर्घ ऋषभ से मध्यम को छू कर पुनः मींड से हमें ऋषभ से पंचम तक जाना होगा। और कामोद में सा – रि प (म रि), यों मध्यम से ऋषभ तक मींड से आना होगा और फिर पंचम का उच्चार करना होगा। यह क्रिया भी गुरुमुख से ही सिद्ध होगी।

मन्द्र मध्य की विलम्बित आलापचारी में यह राग गंभीर प्रकृति धारण करता है और तार सप्तक के स्वरों को लेते हुए मध्य सप्तक के दोनों निषाद का भिन्न-भिन्न विधान इस राग को कुछ तरल प्रकृति का भी निदर्शित करता है। सामान्यरूप से यह मध्यम प्रकृति का राग है और मौसमी होने से वर्षा ऋतु में चौबीसों घंटे गाया जाता है। इसके प्रायः सभी पदों में वर्षा ऋतु का वर्णन मिलता है।

इस राग में सारंग का अंग काफ़ी मात्रा में दिखाई देता है और विशेषतः तानक्रिया में वह अधिक स्पष्ट होता है। ऋषभ-पंचम की संगति, 'नि् (ध)नि सां' या दो निषाद का लगाव और 'प, ग् ग् ∿∿ (म म)पमम – रि' ये दो स्वरक्रियाएँ रागवाची हैं और राग को पूर्णतया अभिव्यक्त करती हैं। धैवत की मात्रा अत्यल्प है। तानक्रिया के समय 'मपनि्निसां' करते हुए सहज ही 'मपधनिसां' या 'मपधनिसांरिंनिसां' यों हो जाता है और द्रुत गति के कारण धैवत का वैसा प्रयोग सदोष नहीं माना जाता, अपितु गुणियों ने इसे ग्राह्य माना है।

राग मल्लार (मल्हार)

मुक्त आलाप

(१) सा – सारिनिसा नि॒ ∿∿ नि – सा, सा – निसा नि॒, नि॒ – निसानि॒, नि॒ – नि – रिसा नि॒ – नि सा। सानि – रिसा नि॒ – –, सा – रिसा नि॒ – –, निसारिसा नि॒ – –, नि॒ – निसारिसा, नि॒ – – निसा-रि – रिसानि॒ – –, रि – रिसानि॒ – सा – रिसा नि॒ ∿∿ नि ∿∿ नि॒ ∿∿ नि सा। सा – नि॒ – म = प नि॒ ∿∿ नि ∿∿ सा, नि॒नि॒पमप नि॒ ∿∿ नि॒ ∿∿ नि ∿∿ सा, म प नि॒ – नि सा, म प नि॒ ∿∿, म प नि ∿∿ नि॒ ∿∿ नि – सा नि सा।

(२) सा रि = म रि – सा – नि॒ ∿∿ नि सा, रि रिसानिसा रि = म रि – सा – नि॒ ∿∿ नि ∿∿ नि॒ ∿∿ नि सा, नि – नि॒पमप नि॒ ∿∿ रि – रिसानि॒सा रि = म रि – सा – नि॒ ∿∿ नि सा, सा रि = म सानि॒ नि॒ – निसा, रि – रिसानि॒सा रि = म सानि॒ नि॒ – नि सा, नि॒ – नि॒ध सा – सानि रि – रिसा रि = म सानि॒ नि॒ – नि – सा, रि – रिसा सा – सानि॒ – ममरि रि – रिसा सा – सानि॒ – नि – सा, मपनि॒ नि. सारि = म रिसा – सानि॒ – नि सा, रिसासा सानि॒नि॒ – मरिरि रिसासा सानि॒नि॒ – नि – सा।

(३) सा – सारि, नि॒ – निसा – सा – सारि, प – पनि॒ – नि – निसा – सा – सारि, म – मप – प – पनि॒ – नि – निसा – सा – सारि, मप = म पनि॒ = ध नि सा = नि सारि = म रिसा सानि॒ नि सा।

(४) सा – सारि – ग् ~ पमम रि, रिरिसा नि सारि ग् ~, पमम रि, नि – निसा – सा – सारि – ग् ~ पमम रि, प – पनि – नि – निसा – सा – सारि – ग् ~ पमम रि, म – मप – प – पनि – नि – निसा – सा – सारि – ग् ~ पमम रि, म प – पनि – निसा – सारि ग् ~ पमम रि, मप – पनि – निसा – सारि ग् ~ पमम रि, म – रिसानि – नि सा।

(५) सा रि = म प निमप ग् ~ पमम – रि, रि रिसानि – सारिप – निमप ग् ~ पमम – रि, रिसामा मरिरि प – निमप ग् ~ ~ पमम – रि, रिसासा मरिरि प प नि नि सा रि प – निमप ग् ~ पमम – रि, सारि – साम – रिप निमप ग् ~ पमम – रि, पनि – धनि – सारि – साम – रिप निमप ग् ~ ~ पमम – रि, सानि नि – प, म प नि – नि – सा।

(६) रि सा – रि = म – प मप, सा रिसारि = म प – मप, प नि निसा सारि सा – रि = म प – मप, मप – पनि – निसा सारि – सा रि = म प – मप, मप – पनि – धनि – निसा = सारि – सा रि = म प मप, निनिमप ग् ~ ~ पमम – रि – सानि नि – प नि नि सा।

(७) निसासारि ममरिसारि प – मप, निसा – रिमम – सारिरि – निसासा रि – – म प – मप, पनि नि मप – सारिरिनिसा – रिममसारि – प – मप, पनि नि मप सारिरिनिसा रिममसारि प – मप, मप – धनि – सारिरि – निसा रि – – म प – मप, मनिमप ग् ~ ~ पमम – रि –, म रि सानि नि – नि सा।

(८) सा रि=म प – मग, मगनि ∿∿ ∿∿ मग, निमप नि ∿∿ ∿∿ मग, मगसम – रि – प – पनिमग नि ∿∿ ∿∿ मग, मगमम – रि नि ∿∿ ∿∿ मग, सारिनिसा रि=म प – पनिमग नि ∿∿ ∿∿ म—प, सारिनिसा नि ∿∿ ∿∿ मग, सारिनिसा नि ∿∿ नि ∿∿ ∿∿ नि ∿∿ ∿∿ म—प, पमनिप नि ∿∿ ∿∿ म—प, मरि– पम– धप नि ∿∿ म—प, रिसा –मरि—पम– धप नि ∿∿ ∿∿ म प, पमधप नि ∿∿ ∿∿ पमधप नि ∿∿ ∿∿ म प, निमप ∿∿ ∿∿ पमम – रि, रिनिसा नि ∿∿ निसा।

(९) पमम नि पप नि ∿∿ ∿∿ म प, पमम निपप नि ∿∿ ∿∿ म प, मरिरि पमम धपप नि ∿∿ म प, रिसासा मरिरि पमम धपप नि ∿∿ ∿∿ म प, पमम धपप नि नि ध सासानि रिरिसा ममरि पमम निनिप नि ∿∿ ∿∿ म प, निनिपमप नि ∿∿ ∿∿ म प, ममरिसारि प – निनिपमप नि ∿∿ ∿∿ म प, रिरिसानिसा नि ∿∿ ∿∿ निनिपमप म ∿∿ ∿∿ नि ∿∿ ∿∿ म प, मनिमप ग ∿∿ ∿∿ पमम – रि – सानि नि – प – नि नि सा।

(१०) रिरिसानिसा रि=म प, निनिपमप नि ∿∿ ∿∿ नि ∿∿ ∿∿ नि ∿∿ ∿∿ म प, रि=म प – नि – नि – म प, रिसा –मरि पम धप नि ∿∿ ∿∿ नि ∿∿ ∿∿ नि ∿∿ ∿∿ म प, रिसासा मरिरि पमम धपप नि ∿∿ ∿∿ नि ∿∿ ∿∿ नि ∿∿ ∿∿ म प, निनिपमप नि ∿∿ ∿∿

सां सां ध ध नि॒ म प ध नि॒ ध ध नि॒ म प म नि म
नि ~ ~ नि॒ ~ ~ म प, म – प – नि॒ – नि – सां नि॒ ~ ~ म प, म – प – नि॒ – नि – सां ग॒

ध ध सां सां नि॒ म
~ ~ रि – प नि॒ ~ ~ नि ~ ~ नि॒ ~ म प, मनिमप ग॒ ~ पमम – रि – सा।

रि ध नि प ध ध
(११) सा रि = म प – नि॒ – नि – सां – निसां, सां रिं निसांनि ~ ~ नि सां – निसां, रिंरिंसांनिसां

ध ध म प ध नि सां रिं ध
नि॒ ~ नि सां – निसां, निसांरिंरिंसांनिसांनि॒ ~ नि सां – निसां म – प – नि॒ – नि – सां – रिं = मं नि॒ ~

रि प म प नि सां रिं ध ध प मं ध
नि सां – निसां, म – प – नि॒ – नि सां रिं – नि॒ ~ नि – सां – निसां, मपनि॒निसांरिं रिं – नि॒ ~ नि सां –

नि नि॒ म ध॒
निसां, निसांरिंसां सांनि॒ ~ म – प, मपनि॒नि॒पमप ग॒ ~ पमम – रि – सानि॒ नि॒ – प॒ नि॒ – नि॒ सा।

ध ध
(१२) सानि॒ – रिसा – मरि – पम – धप नि॒ ~ ~ नि सां – निसां, रिसासा मरिरि पमम धपप नि॒

ध ध ध ध ध
~ ~ नि सां – निसां, सारिरि रामम रिपप मनि॒नि॒ मपनि॒ ~ ~ नि सां – निसां, रि प नि॒ नि सां –

ध ध ध
निसां, रिं = मं सांनि॒नि॒ – नि सां – निसां, सारिरिनि॒ – सांरिंरिंनि॒ ~ ~ नि सां – निसां, सारिरि निसानि॒

ध ध प नि
– सांरिंरिं निसांनि॒ – नि सां – निसां, रिरिसानिसानि॒ – रिंरिंसांनिसांनि॒ – नि सां – निसां, सां – सांरिं = मं

ध मं म ध ध॒
सांनि॒नि॒ – मपनि॒निसांरिं गं ~ पंमंमं – रिं, ग॒ ~ पमम – रि – सानि॒ नि॒ ~ ~ नि॒ सा।

ध ध ध
(१३) रिसा – मरि – पम – निप नि॒ = ध निसांरिं – सां – निसां, नि॒ – निप निसांरिं – सां – निसां,

प ध प प
नि॒निप सांसांनि रिंरिंसां निसांरिं – सां – निसां, नि॒ नि॒पमप धनिसांरिं – सां – निसां, नि॒पनि॒मप धनिसांरिं –

सां – निसां, ममरि पमम नि निर मर—ध—निसांरिं – सां – निमां, सांरिंनिसां नि ∿∿ ∿∿ म प, पनिमर ग ∿∿ ∿∿ पमम – रि, सा सारि=म सानि नि – नि सा।

(१४) सारि—साम—रिप—मनि—मप नि – नि सां – निसां, सारिरि सामम रिपप मनिनि ममनि ∿∿ ∿∿ नि सां – निसां, रि=सा—निसा नि=ध—मप नि ∿∿ ∿∿ नि सां – निसां, रि—रि=सा निसा नि—नि – प मर नि ∿∿ नि सां – निसां, म—रि=म रिसासा नि – रिंसांसांनि ∿∿ ∿∿ नि सां – निसां, रिंरिंमा निसांनि ∿∿ ∿∿ म प, निमर ग ∿∿ ∿∿ पमम रि – सा निसा।

(१५) सारि—साम—रिप—मनि—मप—नि=ध नि सां नि – ध, निसां रिंसांनि, सांनि—रिंनिसां नि=ध, निसांरिंसांनि – ध, निधनि सां नि – ध, निसां रिंरिंसां सांनि – ध, रिंरिंसां सानि – ध, सां=नि रिंनिसां नि=ध, म—प—नि—नि—सां=नि रिंनिसां नि=ध, रि प नि नि सां रिं=मं नि=ध, सांसांरिं मंमंरिंसां नि=ध, रिं – मंमंरिंसां नि=ध, सां=रिं मंमंरिंसां नि=ध, रि – ममरिसा नि=ध, रिं – मंमंरिंसां नि=ध, रिं – मंरिंसां नि=ध, रिंरिंसांनिसां रिं – मंरिंसां नि=ध, निध सांनि रिंसां रिं – मंरिंसां नि=ध, मर=म पनि=ध निसां=नि, सांरिं=मंरिंसां नि=ध नि सां – निसां, निसांरिंसां नि ∿∿ म प, पनिमर ग ∿∿ पमम – रि – रिसासा नि ∿∿ नि सा – निसा।

मल्हार

शुक्त तानें

सारिनि्सा रिरिनि्सा, रिरिनि्सा नि्नि्मप मपनि्नि सारिनि्सा। रिरिसा रिरिसानि्सा ममरिसा नि्पमप मपनि्नि सारिनि्सा। ममम पपप नि्नि्नि् धनिनि सारिनि्सा। सासा रिरि पप ग्मरिसानि्सा, मरिसा नि्पमप मपनि्—नि सारिनि्सा सासासा रिरिरिनि्सा पमगम रिसानि्सा, रिरिसा—रिरिसानि्सा मपनि्—नि सारिनि्सा। सारिरिसा रिपपम पमगम रिसानि्सा, सारिरिसा पनि् म प मपनि्—नि सारिनि्सा। रिसासा—रिसासा सानि्नि्—सानि्नि् नि्पप—नि्पप ममम—पपप नि्नि्नि्निनिनि धनिसारिनि्सा। सासा रिरि पप पनि्मप ग्मरिसानि्सा, ममरिसानि्सा नि्नि्मप ग्मरिसानि्सा। सासासा रिरिरि पपप नि्नि्नि् मपग्मरिसानि्सा। सारिसामरिप मनि् मप ग्मरिसानि्सा। नि्नि्ध नि्नि्ध नि्धनि्नि्मप ग्मरिसा। रिरिरि पपप नि्धनि्नि्मप ग्मरिसा। सासासा पपप नि्धनि्नि्मप ग्मरिसा। रि—प——पमप नि्नि्मप ग्मरिसा, मपनि्नि् नि्नि्मप ग्मरिसा। सासा रिरि पप नि्नि् मप निनि सांसां नि्नि्मप ग्मरिसानि्सा। सारिरिसा रिपपम मनि्नि्प मपनि्निसांरिं निसां नि्पमप ग्मरिसा। पप=म ग्मरिसा नि्नि्—नि् पनि्मप ग्मरिसा, सांसां=सां नि्नि्मपनि्निसांसां नि्नि्मप ग्मरिसा। सासा रिरि पप नि्नि्मप नि्निसांरिं निसां नि्नि्मप ग्मरिसा। सासा रिरि पप नि्नि्मप नि्निसांरिं निसां नि्नि्मप ग्मरिसा। सारिसा—सारिसा पनि्प—पनि्प सांरिं सां—सांरिंसां नि्नि्मप ग्मरिसानि्सा। सासासा रिरिरि पपप नि्नि्नि् नि्धनिनि सांरिंनिसां, सांरिंसां—सांरिंसां नि्नि्मपनि्नि सांरिंनिसां नि्नि्मप ग्मरिसा। नि्नि्मप नि्धनिनि सारिनि्सा नि्धनिनि सांरिंनि्सां, ग्गग्ग् ममरिसा। सारि साम रिपमप मनि् धनि सांरिंनिसां, निसांरिं—निसांरिं—निसां नि्नि्मप ग्मरिसा, सारि—सारि साम—रिम रिपमप मनि्मप मनि्धनि सांरिंनिसां गं्मंरिंसां नि्नि्मप नि्नि्मप ग्मरिसा। रिरिसारिनि्सा ममरिमरिसा नि्नि्पनि्मप रिंरिंसांरिंनिसां नि्नि्मप ग्मरिसा। रिसासा रिसासा रिरिसारिनि्सा, नि्पप नि्पप नि्नि्पनि्मप, रिंसांसां रिंसांसां रिंरिंसांरिंनिसां सांसां रिंरिं पंपं गंमं—रिंसांनिसां नि्नि्मप ग्मरिसा। सारिरिसा साममरि रिपपम मनि्नि्ध निसांसांनि सांरिंनिसां मंमंरिंसां नि्नि्मप ग्मरिसा। रिसासा—रिसासा—रिसारिसारिसा सानि्नि्—सानि्नि्—सानि्—सानि्सानि् नि्नि्मप ममम पपप नि्नि्नि् निनिनि सारिनि्सा। रिसासा—रिसासा मरिरि—मरिरि मरिपप नि्नि्मप, ममम पपप नि्धनि्ध निनिसांरिंनिसां, रिंसांसां—रिंसांसां रिंसां—रिसां रिंसां नि्नि्मप, ममम पपप नि्धनि्ध निनिसांरिंनिसां नि्नि्मप ग्मरिसा।

राग मल्हार

बड़ा ख्याल

ताल—तिलवाड़ा

गीत

स्थायी—करीम नाम तेरो तू साहेब सतार ।

अंतरा—दुःख दरिद्र दूर कीजे सुख देहो सन्नन को
अदारंग विनती करत रहे सुन लेहो करतार ॥

स्थायी

०				५			

०				१२			
						नि सासारिगमपम रि	-सानि नि - -प-
						क• •• ••• री	ऽ म• •ऽ ऽना ऽ

×				५			
ध ध नि नि	ध नि - नि	नि सा - -	निसा - - -	सारिनिसा -	ध ध नि नि	नि सा	निसा - - -
• •	• ऽम	ते • ऽ ऽ	• • ऽ ऽ ऽ	रो • • • ऽ	• •	तू •	• • ऽ ऽ ऽ

०				१२			
नि-रिसानिसा-	रिसानि सासारि	म म पप- - -धपग ग	म रि ग मपमम	सा रि - - -	सा	पनिगम सासारिगमपममरि	-सानि नि - -प-
साऽ •••• ऽऽ	• • • • हे ब	स•ऽऽ ऽऽ••ता•	• ••••	• ऽ ऽ ऽ	र	क• •• •••री	ऽम••ऽ ऽनाऽ

राग मल्हार

छोटा ख्याल

ताल – त्रिताल

गीत

स्थायी—उमँड घुमँड घन बरसे बूँदरा चलत पुरवाइ सननननननन
थर थर काँपे मनवा लाजे झींगरवा बोले झननझनन झननन।

अंतरा—चमक चमक चमके जुगनवा दमक दमक दमके दामिनिया
मनभावन गर लागन आयो भिक तान तान धिट तिकै
धिट टिट धा धिट क्टि धा॥

स्थायी

×				५				०				१३			
								(प॒)सा	(सा)म	(म)ग॒	(ग॒)म	रि	रि	सा	सा
								उ	मँ	ड	घु	मँ	ड	घ	न
(सा)नि॒	नि॒	(ध॒)नि॒	नि॒	सा	नि॒	सा	–	(म)ग॒	(म)ग॒	(ग॒)म	(सा)रि	–	रि	सा	सा
ब	र	से	बूँ	•	द	रा	ऽ	च	ल	त	पु	ऽ	र	वा	इ
–	(सा प)नि॒ नि॒	प म	प	(म)ग॒	(म)ग॒	(म)ग॒	(म)ग॒	–	(सा ग॒)म म	रि	सा	रि	–	सा	–
ऽ	स न	न न	र्न	न	न	न	न	ऽ	थ र	थ	र	काँ	ऽ	पे	ऽ
नि॒	नि॒	नि॒	(ध॒)–	नि॒	नि॒	गा	–	नि॒	सा	रि	(ध॒)नि॒	(ध॒)नि॒	प॒	नि॒	म॒
म	न	वा	ऽ	ल	र	जे	ऽ	झीं	गर	वा	बो	•	ले	झ	न
प॒	नि॒	नि॒	(ध॒)नि॒	नि॒	नि॒	सा	सा								
न	झ	न	न	झ	न	न	न								

अंतरा

x				५				०				१३			
ग	म	रि	प	प	प	नि॒	(ध)	नि	–	सां	सां	सां	सां	सां	–
च	म	क	च	म	क	च	म	के	ऽ	जु	•	ग	न	वा	ऽ
(ध)नि॒	(ध)नि॒	(ध)नि॒	(ध)नि॒	नि	नि	सां	सां	(प)मां	(नि)रिं	सां	सां	(सां)ध	नि॒	प	–
ऽ	दम	क	ट	म	क	द	म	के	•	दा	•	मि	नि	या	ऽ
म	प	(नि)धनि	सां	नि॒	प	म	प	(म)ग॒	(म)ग॒	म	प	म	म	म	म
म	न	भा•	•	व	न	ग	र	ला	•	ग	न	आ	यो	भ्रि	क
	ग	रि	प	–	प	(प)सां	सांनि	सां	(सां)ध	नि॒	प	(म)ग॒	(म)ग॒	(म)	(म)ग॒
ता	•	न	ता	ऽ	न	धि	क•	ति	लै	•	ये	धि	ट	कि	ट
(म)ग॒	म	–	रिसा	रि	रि	सा	–								
धा	•	ऽ	धिट	कि	ट	धा	ऽ								

तानें

	× १	२	३	४	५	६	७	८	० ९	१०	११	१२	११ १३	१४	१५	१६
१)						मम	रिसा	नि्सा	ऊ	मँ	ड	धु	मँ	ड	घ	न
२)					मग्'	मम	रिसा	नि्सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
३)				मग्	ग्, म	गग्	मग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
४)	सासा	सा,रि	रिरि,	नि्नि	नि्, नि्	नि्नि्	सारि	नि्सा	,,	,,		,,	,,	,,	,,	,,
५)	रिरि	रि,नि्	नि्नि्,	नि्नि्	नि्, रि	रिरि	सारि	नि्सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
६)	मम	म,प	पप	नि्नि्	नि्, नि्	नि्नि्	सारि	नि्सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
७)	सासा	सा,रि	रिरि	पप	म प, ग्	म म ग् ग्	मम	रिसा	,,	,,	,,	,,	,	,,	,,	,,
८)	सासा	म सा, रि	रिरि	म रिरि	रि, प	पप	गम	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	
९)	मप	नि्ध	नि्नि्	रिरि	नि्सा	पप	गम	रसा	,,	,,	,,	,,	,,	—	—	—

×				५				०				१३			
१०) सानि	नि,रि	सासा,	मरि	प –	– प	गम	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
११) निध	ध, सा	निनि,	रिसा	सा, म	रिरि,	पम	म, ध	पप	गम	रिसा	निसा	उमँ	ड घु	मँड	घन
१२) रिसा	सा, म	रिरि,	पम	म,ध	पप	(नि) धनि	सां	उ	मँ	ड	घु	मँ	ड	घ	न
१३) सामा	रिरि	पप	निनि	मप	(नि) धनि	सांरि'	निसां	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१४) सारि	रि, सा	मम	रिप	प, म	निनि	मप	(नि) धनि	सांरि'	निसां,	साम	– ग	– म	रिसा	– सा	– सा
										उमँ	ऽ ड	ऽ घु	मँ ड	ऽ घ	ऽ न
१५) रिमा	सा,रि	सासा,	मरि	रि,म	रिरि,	पम	म,प	मम,	निम	प,नि	मप,	रि'सां	सां,रि'	सांसां,	निम
पनि	मप,	गग	गग	गग	मम	रिसा	निसा	उ	मँ	ड	घु	मँ	ड	घ	न
१६) निध	सानि	रिसा	मरि	पम	निप	निध	सांनि	रि'सां	निनि	मप	गम	रिसा	निसा,	निनि	मप
गम	रिसा	निसा,	निनि	मप	गम	रिसा	निसा,	उ	मँ	ड	घु	मँ	ड	घ	न
१७) रिमा	सा, रि	सासा	रिसा	रिसा	रिमा	रिसा	रिसा,	सानि	नि,सा	निनि	सानि	नानि	सानि	सानि	सानि,
सानि	नि, सा	निनि,	मानि	सानि	सानि	मानि	सानि,	रिमा	सा, रि	सासा	रिमा	रिसा	रिमा	रिसा	रिमा,
रिमा	सा, म	रिरि,	पम	म, नि	मप,	(नि) धनि	सां	उ	मँ	ड	घु	मँ	ड	घ	न
१८) रिमा	सा, रि	सासा,	मरि	रि, म	रिरि,	पम	म,प	मम,	निम	प,नि	मप	निनि	नि,नि	निनि,	निनि
नि,नि	निनि,	रि'सां	सां,रि'	सांसां,	रिमा	सा,रि	सामा	उ	मँ	ड	घु	मँ	ड	घ	न

×				५				०				१३			
१९) रि'सां	सां,रि'	सांसां,	रिसा	सा, रि	सासा,	म ग॒	म ग॒	म ग॒	मम	रिसा	नि॒सा	मं गं॒	मं गं॒	मं गं॒	मंमं
रि'सां	निसां	रि'रि'	निसां	नि॒नि॒	मन	धनि	सां	उ	मँ	ड	धु	मँ	ड	ध	न
२०) म ग॒	म –	म –	म –	म –	मम	रिसा	नि॒सा,	मं गं॒	मं –	मं –	मं –	मं –	मंमं	रि'सां	निसां
सांरि'	रि',सां	रि'रि',	निसां	सां,नि	सांसां,	धनि॒	नि॒, ध	नि॒नि॒,	मन	प,म	पप,	ग॒म	म,ग॒	मम,	मारि
रि,सा	रिरि,	नि॒सा	सा,नि॒	सासा,	रिसा	मरि	पम	नि॒प	नि॒ध	सांनि	सां	उमँ	डधु	मँड	धन,
रिसा	मरि	पम	नि॒प	नि॒ध	सांनि	सां	उमँ	डधु	मँड	धन,	धुमँ	डध	न,धु	मँड	धन

राग मल्हार

छोटा ख्याल

ताल—त्रिताल

गीत

स्थायी—बिजुरी चमके बरसे मेहरवा आई बदरिया
गरज गरज मोहे अत ही डरावे ।

अंतरा—घन गरजे घन बिजरी चमके
पपिहा पिउ की टेर सुनावे, कहा करौं—
कित जाऊँ मोरा मन हिय तरसे मा ॥

स्थायी

×				५				०				१३			
								रि नि	नि	सा	–	प नि	–	प	–
								बि	जु	री	ऽ	चम्	ऽ	के	ऽ
म	प	नि	–ध	नि	–	सा	–	रि सा	रि	–	–	सा	–	निसा–	–
ब	र	से	ऽ•	•	ऽ	मे	ऽ	ह	र	ऽ	ऽ	वा	ऽ	••ऽ	ऽ
नि	नि	निध	नि	सा	नि	सा	–	म रि	म	रि	प	प	निनि	पम	प
आ	ई	••	ब	द	रि	या	ऽ	ग	र	ज	ग	र	ज•	मो•	हे
म ग	म ग	म ग	ग म	रि	–	सा	–								
अ	त	ही	ड	रा	ऽ	वे	ऽ								

अंतरा

				५				०				३			
म रि	ग रि	रि प	प	प	–	नि॒	नि॒ध	नि	नि	सां	–	सां	सां	सां	–
ध	न	ग	र	जे	ऽ	म	न•	त्रि	ल	री	ऽ	च	म	के	ऽ
सां नि॒	नि॒	नि॒	–ध	नि	नि	सां	–	प सां	सां रिं	सां नि	सां	सां	ध	नि॒म	प
प	पि	हा	ऽ•	पि	यु	की	ऽ	टे	•	र	सु	ना	•	••	ये
म रि	म	–	रि	प	–	नि॒	ध नि॒	नि	सां	रिं	नि	सां	–	प सां	नि रिं
फ	हा	ऽ	फ	रीं	ऽ	कि	त	जा	•	ऊँ	मो	रा	ऽ	अ	व
सां	सां	रि	सा	रि	–	सा	–								
हि	य	त	र	सैं	ऽ	मा	ऽ								

राग मल्हार

तराना

ताल—त्रिताल

गीत

स्थायी—उदतन नन तन देरे ना दिर दिर ना।
दिर दिर ना तनन ना दिर दिर तनन॥
तन दिर दिर दिर दिर तुं दिर दिर दिर।
दिर दिर दिर दानि दीं॥

अंतरा—ना दिर दिर दानि तुं दिर दिर दिर दिर।
दानि दिर दिर दानि, री दानि तुं दिर दिर॥
दिर दिर, दिर दिर दिर दिर दिर दिर दिर दिर।
उदानि दानि तदानि दीं तन नन यलि यललीं॥
यलि यललीं यललीं, तकृधान् धुम किटतक गदिगन।
नक् धिरकिट धिरकिटतक धा, नक् धिरकिट तक॥
नक् धिरकिट धिरकिट तक धुम् धिरकिट तक धिरकिट धुम् धिरकिट तक
दिर दिर दिर दानि दीं॥

स्थायी

×				५				०				१३			
								नि	सा	रि	रि	ध नि	नि	प	प
								उ	द	त	न	न	न	त	न
नि म	प	नि	-ध	नि	—	सा	—	रि नि	नि सा	सा रि	रि	नि	नि	प	प
दे	रे	ना	ऽ•	•	ऽ	•	ऽ	उ	द	त	न	न	न	त	न
नि म	प	नि	—	—	-ध	नि	नि	सा	—	सा	म	रि	म	म	म
दे	रे	ना	ऽ	ऽ	ऽ•	दिर	दिर	ना	ऽ	दिर	दिर	ना		न	

×				२				०				१३			
रि	म	रि	प	प	प	सांनि	सां	ध	नि॒	प	प	प	नि॒नि॒	म	प
ना	दिर	दिर	त	न	न	त •	न	दिर	दिर	दिर	दिर	तुं	दिर	दिर	दिर
म ग॒	म ग॒	म	रि	–	रि	सा	–								
दिर	दिर	दिर	दा	ऽ	नि	दीं	ऽ								

अंतरा

रि	म	रि	प	प	प	नि॒ध	निसां	ध	नि॒	प	प	म प	प	प	प
ना	दिर	दिर	दा	नि	तुं	दिर	दिर	दिर	दिर	दा	नि	दिर	दिर	दा	नि
म प	नि॒	नि॒ध	नि	सां	सां	सां	सां	नि	नि॒	नि॒	नि॒ध	नि	नि	सां	सा।
रि	दा	नि•	तुं	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर
सां	मं	मंग॒ं	मं	रिं	रिं	सां	सां	रिं नि	–	सां	सां	सां रिं	सां रिं	सां नि॒	नि
उ	दा	नि•	दा	नि	त	दा	नि	दीं	ऽ	त	न	न	न	य	लि
नि॒	नि॒	प	–	प	सां	सां	नि॒	प	म	प नि॒	प	म ग॒	–	म ग॒	–
य	ल	लो	ऽ	य	लि	य	ल	ला	•	य•	ल	लों	ऽ	•	ऽ
ग॒	मं	ग॒ं	मं	रिं	रिं	सां	सां	म ग॒	म ग॒	म ग॒	म	रि	रि	सा	–
तक्	कड़ा	न्	धुम	किट	तक	गदि	गन	नक्	धिर	किट	धिर	किट	तक	धा	ऽ
सा	म	रि	म	प	प	प	नि॒	पम	प	प	प	प	नि॒	पम	प
नक्	धिर	किट	धिर	किट	तक	धुम	धिर	किट	तक	धिर	किट	धुम	धिर	किट	तक
म ग॒	म ग॒	म ग॒	म ग॒	म	रि	सा	–								
दिर	दिर	दिर	दा	•	नि	दीं	ऽ								

राग मल्हार

ध्रुपद

ताल—चौताल

गीत

स्थायी—नीर भरे नील बरन निराधार धर समीर।
धावत उनमत्त गज पग बंधन तोरे॥

अंतरा—धुँवा पंक चेत दंत धुरवा सोइ सुंड दंड।
चलत मग जोर वात जल बरसत घन घोरे॥

स्थायी

x		०		५		०		९		११	
सां	–	सां	मां	सां – नि	रिं	सां	–	सां	सां ध	नि् म	प
नी	ऽ	र	भ	रे ऽ •	•	नी	ऽ	ल	ब •	र	न
(प)नि्	प	–	(नि्)म	प	प	प	नि्(ध)	नि सां	सां ध	नि्	प
नि	रा	ऽ	धा	•	र	ध	र	स •	मी •	•	र
(म)ग॒	(म)ग॒	(प)म		(म प)नि् नि्	प म	(नि्)प	(म)ग॒	म	रि सा	रि	सा
धा	•	व	त	उ •	न •	म	त	•	ग •	ग	ज
नि्	सा	(म)रि	प	प	प	प	नि्	नि्(ध)	नि	सां	(ध)नि
प	ग	बं	•	ब	न	तो	•	•	रे	•	•

अन्तरा

×		०		५		०		९		११	
म – प	(घ) नि॒	(घ) नि॒	नि	सां	नि	सां	–	सां	(रि') नि	सां	सां
पुँ ऽ •	या	•	पं	•	क	चे	ऽ	त	दे	•	त
नि॒	(ध) नि॒	नि	सां	सां – –नि	रि'	(रि') नि	सां	सां	सांध	नि॒ म	प
धु	र	धा	•	सो ऽ ऽ •	ई	शुं	•	ठ	ट•	• •	ठ
नि॒ प	नि॒ प	प रि'	ग॒' रि'	रि'	–	(मं) ग॒'	(पं) मं	(मं) पं	(मं) ग॒'	मं	रि'
च	ल	त	म	ग	ऽ	जो	•	र	या	•	त
नि	म	(मं) रि'	रि'	(रि') नि	सां	(प) नि॒	प	प	नि॒	(ध) – नि	सां नि
ज	ल	ब	र	स	त	ध	न	घो	•	ऽ रे	• •

देशकार

आरोहावरोह—गरिसा, सग गप धसां ध, पधगप, गपधप ग – रिसा, रिध – सा।

जाति—औडव – औडव।

ग्रह—गान्धार।

अंश—पंचम।

न्यास—पंचम।

अपन्यास—धैवत।

विन्यास—मध्य षड्ज।

मुख्य अंग—सरिधसा, पधगप, धसांध, धसांरिसां ध - प, पधगप, ग – पधप ग – रिसा – रिध – सा।

समय—प्रातःकाल।

प्रकृति—तरल।

विशेष विवरण

सामान्यतः यह राग भूपाली को बचा कर गाना पड़ता है, क्योंकि इसमें भूपाली के ही पाँच स्वर लगते हैं। स्वरों के आने जाने में, ग्रह-अंशादि में, स्वर-संगति और ठहराव में परिवर्तन होने से राग का रूप बदल जाता है। जैसे चित्रकला में आकृति को अंकित करते समय मुख के अवयव छोटे, बड़े, लघु दीर्घ वगैरह होने से आकृति में अन्तर पड़ जाता है, तद्वत् राग के अंगों में यानी स्वरों में दीर्घत्व, अल्पत्व, वक्रत्व वगैरह परिवर्तन से राग में भी परिवर्तन होता है। भूपाली में गान्धार स्वर बहुत बल पाता है और वह प्रायः पंचम या धैवत की मींड के स्पर्श से अधिक प्रौढ़ व गम्भीर बन जाता है। ऋषभ का उच्चार भी भूपाली के आरोहावरोह में काफ़ी मात्रा में रहता है। किन्तु भूपाली में पंचम होने पर भी उस पंचम पर आप नहीं ही ठहर सकते, कभी मुक़ाम नहीं कर सकते हैं। भूपाली के पंचम पर ठहरते ही अथवा पधगप गप गप, पधपध, गप, ऐसी स्वरावलि का उच्चार होते ही वहाँ भूपाली मिट जाएगी और देशकार का रूप दिखाई देगा। तद्वत् देशकार में भूपाली से बचने के लिए बारम्बार पंचम का उच्चारण होना चाहिए, उस पर मुक़ाम करना चाहिए और तार सप्तक की ओर उसकी गति रखनी चाहिए। जब भी पूर्वांग में आना हो और मध्य षड्ज की तरफ़ झुकना हो, तब हमेशा गान्धार के दीर्घोच्चार में ऋषभ ढका रहना चाहिए। ऋषभ ढका नहीं रहेगा तो वह भूपाली को आने के लिये इशारा करेगा। आरोह करते समय भी ऋषभ अल्प मात्रा में ही लिया जाना चाहिए।

साथ ही यह ध्यान रहे कि गान्धार पर किन्हीं अन्य स्वरों के आन्दोलन न लिए जाएँ। पंचम या धैवत के आन्दोलन पाते ही यह गान्धार गुणियों की भाषा में भूपाली का निदर्शक हो जाएगा। इसलिए देसकार का गान्धार कभी भी मींड से न लिया जाए, उस पर कभी आन्दोलन न दिया जाए, उसे पंचम या धैवत का स्पर्श न किया जाए, और गान्धार कहते ही तत्काल पंचम पर जाकर मुकाम कर दिया जाए या षड्ज पर पहुँचना हो तो आच्छादित ऋषभ लेकर विन्यास किया जाय।

इसके धैवत का भी विशेष रूप से उच्चार करना आवश्यक है। भूपाली का धैवत तार षड्ज को छू कर मींड से या आन्दोलन से उच्चारा जाता है, किन्तु देसकार में धैवत का अधिक उपयोग होने पर भी वह धैवत ऐसा आन्दोलित न बनाया जाय कि जिससे राग के अंग का भंग हो। कितना ठहरा जाय, कैसे ठहरा जाय, यह गुरुमुख से ही सीखा जाए। धगप, पधगप, धसांध – सांरिंधसां, धसांरिंसा ध – प, गपधप ग – रिसा, रिध – सा। ये स्वर-क्रियाएँ इस राग को व्यक्त करने में समर्थ हैं। इनको कंठगत कर लें और गुरुमुख से अपना लें। तभी इसका चलन ज्ञात होगा।

इसका सामान्य चलन इस प्रकार है :—

सा, गपध—गप, गपगधप, धसांध, धसांरिंसांध – प, पधगपगधप, गपधसांध, पधसांध, धरिंसांध, सांरिंधसां, पधगप, गपधपग – रि सा –, रिध – सा।

मध्य द्रुतगति से ही इन स्वरों का उच्चारण करना चाहिए, विलंबित गति से नहीं।

इस राग की प्रकृति तरल है भोली-भाली है, सरल है। पं० भातखंडे ने इसकी प्रकृति गंभीर मानी है। उन्होंने लिखा है—'ह्या रागाची प्रकृति गम्भीर आहे।' हमारी समझ में, जो उत्तरांग-प्रधान राग होते हैं और मींड से, आन्दोलन से, धीर गति से जिनके स्वरों के उच्चार नहीं होते, वे प्रायः चंचल ही होते हैं। पं० भातखंडे इसे उत्तरांगप्रधान राग तो मानते हैं, पर फिर भी न जाने क्यों उसे गंभीर प्रकृति का बताया है। इसकी चाल भी भूपाली के सदृश विलम्बित नहीं है और न इसमें मन्द्र आलप्ति होती है। वास्तव में मन्द्र आलप्ति और विलम्बित गति वाला राग ही गम्भीर हो सकता है। हमारी राय में देसकार की प्रकृति गम्भीर नहीं, अपितु चंचल ही है।

सा – गप धगप, यों 'सा' के उच्चार के बाद गान्धार से ही इसका चलन आरम्भ होता है। इसलिए गान्धार को इसका ग्रह स्वर मानना चाहिये। पंचम इसका अंश और न्यास स्वर है। धैवत और गान्धार अनुगामी स्वर हैं। ऋषभ का अल्पत्व, मध्य तार आलप्ति और मध्य द्रुतगति इसकी युवावस्था और तरल प्रकृति को अभिव्यक्त करते हैं। यह राग प्रचारानुसार सुबह गाया जाता है, और पूर्ण जागृति का द्योतक है, यद्यपि समय के बन्धन को न माननेवाले कुछ गायक शाम या रात को भी इसे गाते सुने गए हैं।

—

राग देशकार

मुक्त आलाप

(१) सा – सारिध – सा, – सा ध – सा – रि – सा ध प – प ध सा – रिध – सा, सा ग – रिसा – रिध – सा, ग ग – रिसा – रिध – सा, सा ग ग – रिसा – रिध – सा, ध सा सा ग ग – रिसा – रिध – सा, सारिसासा ग – रिसा – रिध – सा।

(२) सारिसासा – ग – सारिध – सा, सारिसासा – ध सा ग – रिसा – रिध – सा, सा ग ग, ध सा सा ग – रिसा – रिध – सा, ध सा – धसारिसा ध – प, प सा ग – रिसा – रिध – सा धसारिसा ध – प ग – रिसा – रिध – सा।

(३) साधध रिसासा ग – रिसा – रिध – सा, सारि – रिसा – धसा – साध – ध ग – रिसा – रिध – सा, सा गपधप ग – रिसा – रिध – सा।

(४) सा ग – प – धप ग – रिसा – रिध – सा, सा ग ग – प धप ग – रिसा – रिध सा, प ग – प – धप ग – रिसा – रिध – सा, सारिसासा ग प पधप ग – रिसा – रिध – सा, रिसासा पगग, धपप ग – रिसा – रिध – सा।

प सां ग सां ग ग सा
(५) सा – गप—ध – ग – प, प – गपधप ग – रिसा, धधप—गपध – ग – प, प—पग गध –

प प ग सां प ग प सा
ध—धप पध – ग – प, ग – प—धप ग – रिसा – रिध – सा।

सा ग प ग सां ग ध सां
(६) सा, साग ग, गप प, ग=प प, पध – ग – प प, धधप गपग पध – ग प, सागसा गपग

सां सां सा ग सां ग प
पध – ग प, ग=प गप=ग प=ध पध=प ग – प, साग—गप—पध – ग – प, प—धप ग –

रिसा – रिध – सा।

सा सां ग सां सां
(७) सा ध – ग – प, ग प पध – ग प, पधप गपग पधसां ग प, ध – सां पध – पध
प ग सां प प सां सां सा ग प
ग प, गप पध – ध – सां प, प – ध ग प – ध—धप गपध – ध=सां प, प—ध ग प, सा – ग—प—ध –

ध=सां—प, प=ध ग प – गपध गधपध – ध=सां—प, प=ध ग प – धप—धप पग—पग धपध – ध=सां प,

प=ध ग प – धपध – पगप – धपध – ध=सां प, प=ध ग प, धपध पगप गपध ध=सां प, प=ध ग प,

प ग
धप—धप पग—पग गसा—पग—धप ध – ध=सां प, ग प – गप गधधप ग रिसा – रिध – सा।

सा ग प
(८) सा—गसा ग—पग प—धप ध – धसां प – पध ग प, सा ग ग – ग प प – प ध ध धसां प – पध

ध सा प धध प प ग
ग प, पसा—साग – साग—गप – गप – पध – धसां प – पध ग प, सांसांध पधसां – प – पध ग प, ध धप—प –

ध ग प ग ग सा प प ग ध ध प
सांसां—ध—ध – धसां प – पध ग – प, प – प=ग—ग – ध ध – प—प – सांसां=ध—ध – धसां प – पध ग –

ध सा
प, सागपग – गपधप – पधसांध – धसां प – पध ग – प, सासागपग सागपध – धसां प, पध ग – प, ग प – प पधप

ग – रिसा – रिध – सा।

प ग

(९.) सारिगप धसांध - धसांरिंसां ध, धसां - ध - धसांरिंसां ध, प ध ध सां - ध - धसांरिंसां ध, गप पध

प प

धसां - ध - धसांरिंसां ध, धधप गपध - सांसांध पधसां - ध - धसांरिंसां ध, धपप सांधध सां - ध धसांरिंसां ध,

सा

पगग धपप सांधध सां = ध धसांरिंसां ध, ध सां - धसांरिंसां ध - प - पध ग प, गपधप ग - रिसा - रिध - सा ।

ध सा ग प रिं

(१०) सागग गपप पधध धसा - सांरिं - ध - सां, धपप सांधध सां - ध - सां, प ध = प धसां = ध सां

रिं

रिं - ध - सां, गप - पध - पध - धसां - धसां - सांरिं - ध - सां, धधप - प - सांसांध - ध - रिंरिंसां - सां -

रिं रिं प प ग ध ध ग सां सां ध

रिं - ध - सां, सा - ग - प - ध - सां - ध - सां, धसांरिंसां ध - प, पध ग प, ग - गपधप ग - रिसा -

रिं प ध सां रिं प

रिध - सा ।

(११) सा - सागपधसां - रिंध - सां, ग - गगपधसां - रिंध - सां, - सां - ध पधसां - रिंध - सां,

ध

प प ध ध

ध ध - प गपध - सांसां - ध पधसां - रिंध - सां, गपधप - पधसांध - धसांरिंसां - रिंध - सां, ग - प - ग

पध - प धसां = ध सांरिंध - सा, गप = ग पध = प ध सां = ध सांरिंध - सां रिंरिंसां धसांरिंसां ध, सांसांध - ध -

प

ध प प ग ध ध प सां सां ध

रिंरिंसां - सां धसांरिंसां ध, ध - ध - प प = प सांसांध ध = ध रिंरिंसां सां = सां धसांरिंसां ध, धसांरिं धरिंसांध -

ध ग

धसां धसांध - सांरिं सांरिंसांध - पध पधध - धसां धसांध - सारिं सांरिंसांध - ध - सां, धसांरिंसां ध - प, पध -

प

धग - प, ग - प गपधप ग - रिसा - रिध - सा ।

(१२) सा सां सांरिंधसां, सा—साग – ग—गप – प—पध – ध—धसां – सां—सांरिं – ध – सां,

धसांसांगं – रिंसां – रिंध – सां, सां गं गं – रिंसां – रिंध – सा, ध—सां—ध सां—गं—रिंसां – रिंध – सां,

प—धप ध सां – ध—सांध – सां गं – रिंध – सां, पध ध—प धसां सां – ध सांगं गं – रिंसां – रिंध – सां,

गप—पसां—सांग रिंसां – रिंध – सां, सांग गंपं पंपं गं – पं, गं गं गंपंधंपं गं—रिंसां – रिंध – सां, धसांरिंसां

ध – प, गपधप ग – रिसा – रिध – सा।

राग देशकार

शुक्ल तानें

सासा गग पपधप गपधप गगरिसा, पधप पधप गप गपधप गगरिसा। सागगसा गपपग गपधप गगरिसा। पपग पपग गप गपधप गगरिसा। सासा—गग पप धध गधपप गगरिसा। धपप धपप गप गपधप गगरिसा। गग—पप—धध—गप गपधप गगरिसा। गगग पपप धध सांसांधप गपधप गगरिसा। पगग धपप सांध सांसांधप पधगप गपधप गगरिसा। सासा—गग—पप—धध सांसांधप पधगप गपधप गगरिसा। पधध—पधध—गप धसांसां—धसांसां—पध पधध—पधध—गप गपधप गगरिसा। सांरिंसांसां धसांधप गपधप गगरिसा। धसांरिं धरिंसधप गपधप गगरिसा। सागपध गपधसां पधसांरिं सांरिंसांध धसांधप पधगप गपधप गगरिसा। सांरिंसां—सांरिंसां धसां धसांरिंसां धसांधप, पधप—पधप गप गपधप गगरिसा। [गगग[1] रिसासा, गगग पपप धधध पपप गगग रिसासा, पपप धधध सांसांसां धपप गगग पपप धधध पपप गगग रिसारिधसा।] सागपग गपधप, सागपग गपधप पधसांध, सागपग गपधप पधसांध धसांरिंसां, धसांरिंसां पधसांध, धसांरिंसां पधसांध गपधप, सागपग गपधप गगरिसा। रिंसांधसां।सांधपध, रिसांधसां सांधपध धपगप पगसग, सागपग गपधप गगरिसा। सांरिंसां—सांरिंसां—धसां, धसांध—धसांध—पध, पधप—पधप—गप गपधप गगरिसा। सारिसा—सारिसा—धुसा पधप—पधप—गप धसांध—धसांध—पध, सांरिंसां—सांरिंसां—धसां, सांगंरिंसां सांरिंसांध धसांधप पधगप गपधप गगरिसा।

टिप्पणी—इस राग में ऋषभ का अल्पत्व दिखाने के लिए तानों में गान्धार को दो-दो बार लेते हैं और यथासम्भव ऋषभ को आरोह में छोड़ देते हैं।

---

१. ब्रेकेट के अन्तर्गत जितनी तानें हैं, उन्हें विशेष तेज़ी से लेना चाहिए।

राग देशकार

बड़ा ख्याल

ताल – विलम्बित एकताल

गीत

स्थायी—तुम पर वारी कृष्ण मुरारी
इतनी हमारी सुनो बनवारी।

अंतरा—लेकर चीर कदम पर बैठे
हम सब जल माँहि उघारी॥

स्थायी

०		९		११	
				सा – सां ध	– सांध सांप सांध
				तु ऽ म •	ऽ प • •• र •

×		०		५	
ध	सां		प ग	प	प ध
सां	ध सां धसां धसांरिसां	ध प – –	प ध – ग प –	ग – प ग प	ग गप धसांध प
वा	• ऽ• • • • • • •	री • ऽ ऽ	• • ऽऽ • • ऽ	कृ ऽ • • •	• ष्ण •••• मु

•		९		११	
ग	रिसा - - - सारि ध	ध सा – –	सा	सा ग सारि ध	ध सा – सा
य	••ऽऽ ऽ •• •	• • ऽ ऽ	री	इ ऽ• त • •	नी • ऽ ह

अंतरा

	०		५	

	९		११	
			प ग – प ग प	– सांध सांप सांध
			हे ऽ • • •	ऽ क • • • र •

×		०		५	
धसां – –	– – सांसां –	सां	– – – सां	सां – रिं ध सां	ध – ध सां रिं
चौ • ऽ ऽ	ऽ ऽ • • ऽ	र	ऽ ऽ ऽ क	द ऽ • म •	ऽ • प र

०		९		११	
ध सांरिंसांसां – – –	सां ध – सां धसां धसांरिंसां	ध प – –	प ध – – ग प –	प ग – प ग प	– – – प
बै • • • ऽ ऽ ऽ	• • ऽ • • • • • •	ठे • ऽ ऽ	• • ऽ ऽ • • ऽ	ह ऽ • म •	ऽ ऽ ऽ स

×		०		५	
प सां गं गं – – –	गं गं – – –	रिंसांसां – – – –	ध सां सांरिं ध सां –	सां ध – –	सां ध – सां धसां धसांरिंसां
च • ऽ ऽ ऽ	न • ऽ ऽ ऽ	ल • • ऽ ऽ ऽ ऽ	• • • • ऽ	मों • ऽ ऽ	• ऽ • • • • • •

०		९		११	
ध प – –	प ध – – ग प ध	धधपधपपसांसांधसां•ध	रिंरिंसांरिंसांसांधपगग.रसा		
ही • ऽ ऽ	• • ऽ ऽ • • ट	घा• • • • • • • • • • •	• • • • • • री• • • • •		

राग देशकार

छोटा ख्याल

ताल—त्रिताल

गीत

स्थायी—जाग जाग जाग कीन्हों रे मोर
कहत कहत सुनत सुनत दूचर की रस बतियाँ।

अंतरा—बैठ बैठ बैठे न्यारे हो फिर बैठे भुजन सों भुज मिला
केलि करत बीती रतियाँ॥

स्थायी

×				५				०				१३			
							सा	(सां) ध	ध	(मां) ध	(सां) ध	ध	सांध	सांप	ध
							जा	•	ग	जा	•	ग	जा•	••	ग
सां	–	धसां	रिंसां	ध	प	–	–	(प) ग	प	पध--	प	ग	–	रिसा--	सा
की	ऽ	••	••	नो	•	ऽ	ऽ	•	•	•	रे	मो	ऽ	••ऽऽ	र
(सा) ध॒	सा	ध॒	सा	सा	सा	(प) ग	प	ग	प	प	प	(ध) ग	–	प	प
क	ह	त	क	ह	त	सु	न	त	सु	न	त	दू	ऽ	च	र
(प) ग	प	(प) ध	प	ग	रिसा--	सा	(सा) सां	ध	ध						
की	•	र	स	ब	ति•ऽऽ	याँ	जा	•	ग						

अंतरा

X				५				०				१३			
								प	ग	ग	प	—	प	सां	ध
								बै	•	ठ	बै	•	ठ	वै	•
सां	—	सां	—	सां	रिं	सां	—	सांध	(सां)ध	(सां)ध	—	(ध)सां	—	सां	रिं
ठे	ऽ	न्या	ऽ	रे	•	हो	ऽ	फि•	र	बै	ऽ	ठे	ऽ	भु	ज
सां	रिं	—	सां	रिं	सां	ध	प	ग	प	ग	प	ध	ध	प	ध
न	सों	ऽ	भु	ज	मि	ला	•	के	•	लि	क	र	त	बी	•
(ध)सां	(ध)सां	(प)ध	प	ग	रि	सा									
ती	•	र	ति	यां	•	•									

राग देशकार

छोटा ख्याल

ताल—झपताल

गीत

स्थायी—चिरियाँ चुँचुवानी चकवा की सुन बानी।
कहत यशोदा रानी जागो मोरे लाला॥

अंतरा—रवि की किरण जानी कुमुदनी सकुचानी।
समुदित विकसानी दधि मथत बाला॥

स्थायी

×		३			०		८		
ध	ध	ध ग	प	गप	ध – सां ध	प	ग	रिसा –	सा
चि	रि	याँ	•	चुं•	• • • •	चु	वा	• • ऽ	नी
सा	सा ध़	ध़ सा	–	ग	ग – प	गपधप	ग	रिसा –	सा
च	क	वा	ऽ	की	सु ऽ •	न•••	बा	• •	नी
सा	सांध	सांध	–	सां ध	धसांरिंसां	ध प	सां ध	सां	सां
क	ह •	त •	ऽ	य	शो• • •	दा •	रा	•	नी
सां रिं	सां	ध सां	ध – – प	ग – – प	प सां ध –	ग – – प	प सां ध –	ध ग	प
जा	गो	मो	• ऽ ऽ •	रे ऽ ऽ •	ला • • ऽ	• ऽ ऽ •	ला • • ऽ	•	•

अंतरा

×		२			०		३		
प ग	प	प सां	सां ध	सां	सां	सां	रिं ध	सां	सां
र	वि	की	•	कि	र	न	जा•	•	नि
सां	सां ध	ध सां	—	सां ध	प – धप	धसां रिंसां –	सां ध	—	प
कु	मु	दा	ऽ	नी •	स ऽ ••	कु• • • ऽ	चा	ऽ	नि
सां	गं – – सां	गं	रिंसां – –	सां	प – धप	धसां रिंसां –	सां ध	सां ध	प
स	मु ऽ ऽ •	दि	• • ऽ ऽ	त	चि ऽ ••	क• • • ऽ	सा	•	नी
सा	सां ध	सां ध	सां ध	प	सां ध	सां – सांरिं –	सां ध प –	प ध – –	ध ग ६
द	धि •	म	थ	त	धा	• ऽ • •	ला • •	• • ऽ ऽ	• •

तानें

×		२			०		८		
१)					सासागग	पपधध	पप, पध	पपगप	गगरिसा
२)					सासासा,ग	गग पप	प, धधध,	पपप	गगरिसा
३)					पधप, प	धप, पध	प, पधप,	गपधप,	गगरिसा
४)					पधसांसां	धप, पध	पप, गप,	गधपप	गगरिसा
५)					साग	पध	सांसांधप	पधपप	गगरिसा
६)					सासासा, ग	गग, पप	प, धधप,	सांसांधप	गगरिसा
७) सागपग	गपधप,	पधसांध,	धसांरिं'सां,	सांरिं'सांध,	धसांधप,	पधपप	गपगध	पपगप	गगरिसा
८) सागपग	गपधप,	सागपग	गपधप	पधसांध,	सागपग	गपधप	पधसांध	धसांरिं'सां,	सागपग
गपधप	पधसांध	धसांरिं'सा	सांगंरिं'सां	सांरिं'सांध	धसांधप	पधपप	गपगध	पपगप	गगरिसा
९) सारिसा,सा	रिसा, सारि	धसा, पध	प, पधप	पधगप,	सांरिं'सां,सां	रिं'सां,सांरिं'	धसां, धसां	ध, धसांध	धसांरध
पधप,प	धप, पध	गप, गप	ग, गपग	पधप, प	धप, धसां	ध, धसांध	सांरिं'सांसां	धप, गप	गगरिसा
१०) सासासा,ध	धध, पध	पप, गप	गगरिसा,	सासासा,सां	सांसां,सांरिं'	सांसांधप,	पधपप,	गपगध	पप, गप
गगरिसा	सासासा, प	पप, सासा	सा,धधध,	सासासा,सां	सांसां, सासा	सा, पंपंपं	गंगंरिं'सां	सांसांधप	गगरिसा

×		३			०		८		
११) सासासा,सां	सांसां,धसां	ध, धसांध,	धसांधप,	सांरिं'सां,सां	रिं'सां,सांरिं'	सांरिं'सांध,	धसांध,ध	सांध,धसां	धसांधप,
पधग, प	धप; पध	पधगग,	गपगप,	पधपध	धसांधसां	सांरिं'सांरिं'	धसांधसां	पधपध	गपगप
गपधसां	धप, पध	सांरिं'सांध,	धसांरिं'गं	रिं'सां,सांरिं'	सांसांधप	पधपप	गपगध	पपगप	गगरिसा
१२) धधपध	पप, गप	गधपप	गगरिसा,	सांसांधसां	धप, धध	पधपप	गपगध	धपगप	गगरिसा,
गंगंसांरिं'	सांसा,सांसां	धसांधप,	धधपध	पप, गप	गधधप,	गगरिसा,	पगग,ध	पप, सांध	ध,रिं'सांसां,
सांधसांध	सांध, सांध	ध,सांधध,	धपधप	धग, धध	प,धपप,	गपपग,	पधधप,	धसांसांध,	सांरिं'रिं'सां
						ध		ध	ध
सांसां-सां	सांरिं'सांसां	धप, पध	पप, गप	गधपप	गगरिसा	ध प ग प	प –, धप	ग प प –	ध प ग प
						चिरियाँ •	• ऽ चिरि	याँ • • ऽ	चिरियाँ •

राग देशकार

गीत—त्रिताल

गीत

स्थायी—झाँझरिया झनके मा पायल् मोरे पावा
पायल् मोरे पावा पायल् मोरे पावा मा ये ।

अंतरा—टरो रे लोगनवा सगरे जगत के
को (कहो) प्यारे के सिंगार जैये माँ ये ॥

स्थायी

×				५				०				१३			
								सा	–	ध	प	ध	–	धसां	पध
								झाँ	ऽ	झ	रि	या	या	झ•	••
सां	–	धप	प	गप	धप	ग	रिसा	(प) ग	प	–	गर	गप	पग	(सां) ध	प
न	ऽ	के•	•	••	••	मा	••	•	•	ऽ	पा•	जल्	मो•	•	रे
ग	–	–	–रि	सा	–	रि	ध़	सा	–	–	गप	पध	धसां	–	ध
पा	ऽ	ऽ	ऽ•	•	ऽ	वा	•	•	ऽ	ऽ	पा•	जल्	मो•	ऽ	रे
सां	–	सां	–	सां	–	सां	ध	(ध) सां	सांरिं	–	[illegible]	ध	–	ध	–
पा	ऽ	वा	ऽ	वा	ऽ	ज	ल्	मो	••	ऽ	रे	पा	ऽ	वा	
(प) ध	(प) ध	प	(प) ध	(प) ध	प	गप	धप	ग	[illegible]	[illegible]	[illegible]	ध	–	[illegible]	
मा	•	•	•	•	•	ये•	••	झाँ	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]			

१३

अन्तरा

×				५				०				१३				
								–	–	–	ग	प	सां ध	सां	सां ध	
								ऽ	ऽ	ऽ	उ	गे	रे	•	लो	
सां	–	सां	–	–	–	सांरिं	ध	सां	–	–	सां	ध	सां	–	ध	
ग	ऽ	न	ऽ	ऽ	ऽ	बा•	•	•	ऽ	ऽ	स	ग	रे	ऽ	ज	
ध सां	सां रिं	सां	–ध	ध	प	ध	–	सां	ध	सां	–	सां	प	ध	–	
ग	•	त	ऽ•	के	•	•	ऽ	बीं	•	•	ऽ	प्या	•	रे	ऽ	
सां	सांरिं	–	सां	ध	–	प	प	सां ध	सां	–	–	धप	प	–	–	
कै	••	ऽ	सि	गा	ऽ	•	र	जै	•	ऽ	ऽ	ये•	•	ऽ	ऽ	
प ध	प ध	प	प ध	प ध	प	गप	धप									
मां	•	•	•	•	•	ये•	••									

राग देशकार

ध्रुवपद—चौताल

गीत

स्थायी—शंभो महादेव शंकर त्रैलोचन वामदेव ।
भक्त भजत त्रिपुरान्तक मदन दहन वृषभ ध्वज गरल धरे ॥

अंतरा—विश्वनाथ विश्वंभर शिव वरदापद पशुपत पिनाकपत ।
सुरपद जगदीश भगवान भूत संग डमरु धरे ॥

संचारी—आदिदेव नागभूषन योगीराज परमेश विश्वरूप चिदानन्द ॥

आभोग—आदिनाथ विश्वकर दयाधीश नीलकंठ निजानन्द निरंजन ।
दक्षयज्ञ नाशन परब्रह्म भवानीश चिंतामणि शरणागत भवभय हरे ॥

स्थायी

×		०		५		०		९		११	
							सां	–	धपप	–	(प)ग
							शं	ऽ	मो••	ऽ	म
प	(प)रि	ग	(ग)प	–	धसांपध	सां	–	–	(सां)ध	प	–
हा	•	•	दे	ऽ	व•••	शं	ऽ	ऽ	क	र	ऽ
(प)ग	–	प	–	(सां)ध	प	(प)ग	–	रि	सा	–	सा
त्रै	ऽ	लो	ऽ	च	न	वा	ऽ	म	दे	ऽ	व
ध	सा	ध	(रि)सा	रि	रि	ग	पधप –	ग	– रि	सा	सा
भ	•	क्त	भ	ज	त	त्रि	पु••ऽ	रा	ऽ •	न्त	क

×		०		५		०		३		११	
सा	रि	सा	(ग) रि	ग	ग	प	ध	(सां) प	(सां) ध	सां	सां
म	द	न	द	ह	न	वृ	प	म	•	ध्व	ज
सां	रि'	सां	(सां) ध	सां	(सां) प	(सां) ध					
ग	र	ल	ध	रे	•	•					

अंतरा

प	(सां) ध	सां	सां	—	सां	सां	सां	—	रि'	सां	—
वि	•	श्व	ना	ऽ	थ	त्रि	श्वं	ऽ	भ	र	ऽ
सां	रि'	—	(गं) सां	(गं) रि'	गं	गं	— रि'	सां	सां	(सां) ध	(सां) ध
शि	व	ऽ	ब	•	•	द्री	ऽ •	•	प	त	•
प	ध	—	(सां) प	(सां) म	सां	सां	—	रि'	सां	म	प
प	शु	ऽ	प	त	पि	ना	ऽ	क	प	त	•
ग	ग	रि	ग	प	(सां) ध	प	ग	— रि	सा	—	सा
सु	र	•	प	त	•	ज	ग	ऽ •	दी	ऽ	श
सा	सा	—	(प) ग	प	प	प	ध	धप	सांध	सां	सां,
म	ग	ऽ	वा	•	न	भू	•	त•	सं•	•	ग
सां	रि'	सां	(सां) ध	सां	(सां) प	(सां) ध					
रु	म	रु	ध	रे	•	•					

संचारी

×		०		५		०		९		११	
प	ग	ग – प	ग प	–	प	प	ध	सां ध	ध सां	ध	प
आ	•	दि ऽ •	दे	ऽ	य	ना	•	ग	घु	ल	न
ग	प	सां ध	गं	सां	सां	रिं	सां	सां ध	–	–	प
यो	•	गी	•	स	ह	प	र	मे	•	•	श
प ग	–	गरि	रि ग	–	पध	प	प ग	– रि	सा	–	सा
वि	ऽ	श्व•	रू •	ऽ	प•	चि	दा	ऽ •	नं	ऽ	द

आभोग

×		०		५		०		९		११	
सा	–	सा	प ग	प	प	प	ध	सां ध	सां ध	प	–
आ	ऽ	दि	ना	•	थ	वि	•	श्व	क	र	ऽ
प ग	प	सां ध	ध सां	–	सां	सां	–	रिं	सां	–	सां
द	या	•	धी	ऽ	श	नी	ऽ	ल	कं	ऽ	ठ
सां	ध	– सां	सां	–	सां	प रिं	सां	–	ध	प	–
नि	जा	ऽ •	नं	ऽ	द	नि	रं	ऽ	ज	न	ऽ

×		०		५		०		९		११	
प ग	–	ग – प	ग प	–	प	प	सां ध	सां	मं	प	–
द	ऽ	ख ऽ •	य	ऽ	श	ना	•	•	दा	न	ऽ
ग	ग	रि	रि ग	–	पध	प	ग	– रि	मा	–	सा
प	र	•	ब्र	ऽ	ह्म•	म	चा	ऽ •	मो	ऽ	ह
सा	–	प ग	प	प	म	ध सां	रिं	सां	ध	धसांरे–	म
चि	ऽ	ता	•	म	णि	श	र	णा	•	ग • •ऽ	त
सां	रिं	सां	ध	सां	सां प	सां ध					
म	व	भ	य	ह	रे	•					

विभास

आरोहावरोह—सा रि़ ग प ध़ सां, सां ध़ प ग रि़ सा।

जाति—औडव - औडव।

ग्रह—षड्ज।

अंश—कोमल धैवत। कोमल ऋषभ उपांश।

न्यास—पंचम।

विन्यास—षड्ज।

मुख्य अंग—गपध़ - प, गपगरि़ - सा।

समय—रात्रि का अवसान और उषःकाल की सन्धि।

प्रकृति - उत्तरगामी होकर धीर-तरल।

विशेष विवरण

विभास प्रातर्गेय राग माना गया है। इसमें 'मनि' वर्जित हैं और 'रिध़' अति कोमल हैं। इस राग का चलन उत्तरांग की ओर बढ़ता रहेगा। इसका धैवत एक विशेष प्रकार से उच्चरित होना चाहिए। वह धैवत पंचम के बहुत समीप है। आरोह करते समय पधसां की बजाय 'पधपसां' करना अधिक समुचित होगा। कारण 'पधसां' करते समय धैवत के चढ़ जाने की सम्भावना है। वह न चढ़े, इसलिए 'पध़' करते ही पुनः पंचम पर आकर 'सां' को छूना चाहिए। प्रायः देखा गया है कि ये कोमल 'रि - ध' अभ्यास करते समय ध्यान न रखने से विद्यार्थियों से चढ़ जाते हैं और चढ़कर कभी-कभी देसकार का रूप भी ले लेते हैं। इसीलिए गुणीजन सावधानी के रूप में 'पधपसां' जाने के लिए विद्यार्थियों को बताते रहते हैं।

इन्हीं स्वरों का एक अन्य राग है—रेवा या रेवगुप्ती। विभास में रेवा का आभास न हो, इसलिए गान्धार पर और ऋषभ पर न ठहरने का ध्यान रखा जाए। यथा—सारि़, गरि़, साध़ सारि़, सा—अथवा सारि़ग, गरि़ग, ध़सारि़ग, परि़ग, रि़ग रि़ - सा—इन स्वरावलियों से सर्वदा अछूते रहें।

विभास का चलन निम्न रूप से होगा—

सारि़गप, धप, पधप, गपधप, गपगरि़, गपधप, गपगरि़गपधप, पधपसां धप, धसांरि़सां, धसांधप,
ग
गप पध़ - प, सांधप, सां - पधप, पगरि़ग, गप रि़सा।

इसमें रि॒गरि॒, रि॒ध॒ध॒रि॒—इन स्वर-संगतियों का उपयोग भी सर्वथा त्याज्य समझें, अन्यथा श्री की छाया दीखने का डर है और उससे त्रिवेणी का आभास होने की सम्भावना है।

वैष्णव सम्प्रदाय में इस राग में बालकृष्ण को जगाने वाले बहुत से गीत पाए जाते हैं। अष्टसखाओं के बहुत से पदों में कृष्ण बलराम को जसुमति के जगाने के अवसर पर गाए गए गीतों में विभास का पर्याप्त प्रयोग पाया जाता है। वैष्णव मन्दिरों में सूरदास आदि गायक-कवि समय-समय और अवसर-अवसर पर, ऋतु २ पर भिन्न २ रागों में पदों की रचना करके मन्दिरों में गाते थे। अभी तक वह परम्परा चल रही है। सम्भव है भिन्न २ ऋतुओं में भिन्न २ समय पर मन्दिरों में गाये जाने वाले रागों की परिपाटी का, अमुक राग अमुक समय पर गाया जाय, ऐसी शास्त्रीय संगीत में अधुना प्रचलित परम्परा पर भी कुछ प्रभाव पड़ा हो।

विभास में गान्धार, पंचम और तारगति—ये जागृतिसूचक तत्त्व हैं। साथ ही अति कोमल ऋषभ-धैवत अल्प निद्रितावस्था के दर्शक हैं। इसलिये यह राग अर्धनिद्रित और अर्धजागृत अवस्था को दिखाता है।

जिनके कान श्रुतियों के सूक्ष्म नाद को ग्रहण करने की क्षमता रखते हैं, वे तो तत्काल समझ जाएंगे कि इस रागमें प्रयुक्त ऋषभ-धैवत को अति कोमल क्यों कहा गया है। किन्तु स्थूल मान से स्वरों को देखने वालों के लिये यह स्पष्ट करना समुचित होगा कि इस राग को गाते समय तानपुरे पर पंचम मिला रहता है और उसके कारण खरज से शुद्ध गान्धार प्रबल रूप से निरन्तर गुंजन करता रहता है और वही शुद्ध गान्धार राग में भी पुनः २ प्रयोग में आता रहता है। ऐसी अवस्था में गान्धार से (अवरोहगति से) षट्श्रुति के अन्तर से संवाद करने वाला अति कोमल ऋषभ इस राग में सहज ही में प्रयुक्त होता है और उसी प्रकार गान्धार से (आरोहगति से) सप्तश्रुति के अन्तर से संवाद करने वाला अति कोमल धैवत भी इस राग में प्रयोग में आता है। इन सूक्ष्म स्वरान्तरों को प्रत्यक्ष क्रिया में देखकर, सुन कर ही हमारे गुरुदेव कोमल, अति कोमल, तीव्र, तीव्रतर आदि स्वर-नामों का विभिन्न रागों में प्रयोग किया करते थे। विद्यार्थी इन सूक्ष्म स्वरान्तरों को अपने कानों द्वारा पहिचानने का यत्न करते रहें, यहाँ इस उल्लेख का यही उद्देश्य है।

इस राग के रस के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कह सकूँ ऐसी अवस्था में मैं नहीं हूँ। कई बार गाया, सुना, किन्तु केवल केवल स्वर, लय और उच्चार मात्र से उसका रसदर्शन नहीं हो पाया। इतना अवश्य कह सकता हूं कि इसकी प्रकृति धीर-तरल है, क्योंकि एक ओर तो यह मध्य-द्रुत गति में और तार सप्तक में ही अधिकतर बरता जाने वाला राग है और दूसरी ओर 'रि॒ – ध॒' अति कोमल के प्रयोग से और निशा के अवसान-काल में गाया जाने के कारण कुछ धीर-गंभीर भाव भी इसमें विद्यमान है।

राग विभास

मुक्त आलाप

प प ग प
(१) सा, सारि़सा, गपध़ - प, ग प प ध़ - प, पध़पप - ग प ध़ - प, गपधप - गपगरि़ - सा।

प प प
(२) सा - रि़गप—ध़ - प, गप=ग पध़=प, रि़ग=रि़ गप=ग पध़=प, सारि़=सा रि़ग=रि़
प
गप=ग प—ध़=प, गपधप ग रि़ - सा।

सा रि़ ग प रि़ ग प
(३) सा रि़ ग प ध़ - प, सारि़ गगरि़ - रि़ग पपग - गप धुपप, पध़=प

प प प प
गप=ग प ध़ - धुप, पध़=प गप=ग रि़ग=रि़ गप=ग पध़ - धुप, पध़ - प गप=ग रि़ग=रि़ सारि़=सा

प प
रि़ग=रि़ गप=ग पध़ - धुप, गपधुप ग रि़ - सा।

(४) सा रि़ ग प ध़ - प, प=ध़—पध़=प ग=प—गप=ग प ध़ - प, प - ध़ - पध़=प
ग=प—गप=ग रि़=ग —रि़ग=रि़ ग=प—गप=ग पध़ - प, प=ध़—पध़=प ग=प—गप=ग
रि़—ग—रि़ग=रि़ सा=रि़—सारि़=सा रि़=ग —रि़ग — रि़ ग=प—गप=ग प ध़ - प, गपधप ग रि़ - सा।

(५) सा रि़ ग प ध़—पधुपप, रि़सा गरि़ पग धुप ध़—पधुपप, रि़सासा - गरि़रि़ - पगग - धुपप
प
ध़ - पधुपप, रि़सासा गरि़रि़ - गरि़रि़ पगग - पगग धुपप - ध़ - पधुपप, गपधुप ग रि़ - सा।

ग
(६) सा रि़ ग प—पग - प ध़ - पधुपप, सारि़=सा रि़ग=रि़ गप=ग प - ध़ - पधुपप,
प प ग ग ग रि़ रि़ रि़ सा प
ध़—धुप प ध़ - पधुपप, प—पग ग प ध़ - पधुपप, ग—गरि़ रि़ ग प ध़ - पधुपप, ग प धुप ग रि़ - सा।

ग प धु प   प प ग   ग ग ग   रि रि
(७) सा रि ग प ध् – पधुपप, धुधुप पध् – पधुपप, पपग पध् – पधुपप, गगरि

ग ग प प ग   सा सा रि रि ग ग प प ग प   रि रि सा ग ग रि
पपग धुधुप पध् – पधुपप, रिरिसा गगरि पपग धुधुप पध् – पधुपप, गगरि–रि – पपग–ग –

प प ग ग   प प ग ग ग रि रि रि सा ग ग रि प प ग ग
धुधुप–प – पध् – पधुपप, धुधुप–प – पपग–ग – गगरि–रि – पपग–ग – धुधुप–प –

प
ध् – पधुपप, ग = प गपधुपगरि – सा – रि सा।

सा सा   रि रि   ग ग   प प   ग ग
(८) रिरिसाधु सा गगरिसारि पपगरिग धुधुपगप ध – पधुपप, पपग रिगपधु – पधुपप,

रि रि   प प   ग ग   रि रि
गगरि सारिगप ध् – पधुपप, धुधुपगप ध् – पपगरिग प – गगरिसारि गपध् – पधुपप,

गप धुप ग रि – सा।

(९) पधुप गपग पध् – पधुपप, पधुप गपग रिगरि गपग पध् – पधुपप, पधुप गपग रिगरि सारिसा

रिगरि गपग पध् – पधुपप, पधुप–पधुप – गपग–गपग – पध् – पधुपप, पधुप–पधुप – गपग–गपग –

ग
रिगरि–रिगरि – गपग–गपग – पध् – पधुपप, पधुप–पधुप – गपग–गपग – रिगरि–रिगरि –

सारिसा–सारिसा – गपग–गपग – पध् – पधुपप, गगगरि – सा।

ग प ग ग प प ग प रि
(१०) प–पधु – धुपप, प–पपग – प–पधु – धुपप, धु–धुपप – प–पधु – धुपप, ग–गरिरि–

ग प ग प सा रि ग प ग
प–पगग – धु–धुपप – प–पध् – धुपप, रि–रिसासा – ग–गरिरि – प–पगग – धु–धुपप – प–पधु –

प
धुपप, पगपधुप ग रि – सा।

राग विभास

बड़ा ख्याल

ताल—विलम्बित एकताल

गीत

स्थायी—प्रात समये नन्दलाल दरस को
सब ब्रजवासी आ नन्द द्वारे ।

अंतरा—बंदीजन सब हरि गुन गावे
जागो यदुपते तुम देव मुरारे ॥

स्थायी

×		०		५	

०		९		११	
					प प प ग रि ग प ए • • •

×		०		५	
प धु – –	– धु प धु	प	प ग – –	– ग – प धु प ग	रि
प्रा • ऽ ऽ	ऽ त स म	ये	• • ऽ ऽ	ऽ • ऽ • •• •	•

०		९		११	
सा – सा धु	सा	– रि – –	प – ग प ग	रि	सा
• ऽ नँ द	ला	ऽ ल ऽ ऽ	ऽ द र स	को	•

x		०		५	
ग प ग	–	प प	प पध् – – – –	– ध् – –	प – ग
स ब	ऽ	ब्र ज	बा •• ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ सी ऽ ऽ	ऽ आ

०		९		११	
प – ध् सां	– – सां रिं	सां	ध् – सां ध् – –	प	प प प ग रि ग प
नं ऽ • दे	ऽ ऽ • •	द्वा	• ऽ • • ऽ ऽ	रे	ए • • •

अंतरा

x		०		५	
प – – –	ध सां	सां सां	– रिं	सां	सांसां – – –
थं ऽ ऽ ऽ	दी	ज न	ऽ स	ब	•• ऽ ऽ ऽ

०		९		११	
सां सां	– – रिं गं	गं रिं	सां	ध् – सां ध् –	प
ह रि	ऽ ऽ गु न	गा	•	• ऽ • • ऽ	वे

x		०		५	
प ग	ग प	– प ध् प	ध्	प – ग –	ध् – – प ध्
आ	गो	ऽ प हु प	ते	हु ऽ म ऽ	ऽ ऽ दे •

०		९		११	
ध् सां	– – सां रिं	सां	ध् – सां ध् –	प	प प प ग रि ग प
•	ऽ ऽ च मु	रा	• ऽ • • ऽ	रे	ए • • •

राग विभास

छोटा ख्याल

ताल—त्रिताल

गीत

स्थायी—केव (कृष्ण) कुँवरवा आइल हमरा
मोरे घरवा नाँहिन कन कन वार रे कनवार ।

अंतरा—मगमदृणा के सदा रँगीले ।
प्रेम दिवाना सा ते तुमरे ऊपर ।
तन मन वार तन मन वार ॥

स्थायी

×				५				०				१३			
								प	ग	—ग	प	ग	रि॒	सा	—
								के	•	ऽस	कुँ	व	र	वा	ऽ
सा	—	सा	सा	सा	सा	सा ध॒	—	सा	सा	—	रि॒	प ग	ग	प	—
आ	ऽ	इ	ल	ह	म	रा	ऽ	•	मो	ऽ	रे	घ	र	वा	ऽ
सां ध॒	सां	ध॒	प	—	पग	—प	ध॒	प	—	पग	ग	प ग	पग	प	ध॒
नाँ	•	हिं	न	ऽ	कन	ऽक	न	वा	ऽ	••	र	रे	••	क	न
प	प ग	ग रि॒	सा	—	सारि॒	गप	ध॒प								
वा	•	•	र	ऽ	ए•	••	••								

अंतरा

×				५				०				१३			
–	(प) ग	– ग	ग	प	–	ध्	–	प–ध्	(ध्) सां	–	सां	सां	रिं	सां	–
ऽ	म	ऽ म्म	द	श	ऽ	के	ऽ	सऽ•	दा	ऽ	रँ	गी	•	ले	ऽ
–	रिं	गं	सां	सां	–	सां	–	ध्	ध्	रिं	–	ध्	ध्	सां	–
ऽ	प्रे	म्	दि	वा	ऽ	ना	ऽ	ता	•	ते	ऽ	तु	म	रे	ऽ
सां	–	सां	सां	–	प ग	– प	ध्	प	–	प ग	ग	–	प ग	– प	ध्
,क	ऽ	,प	र	ऽ	त न	ऽ म	न	वा	ऽ	• •	र	ऽ	त न	ऽ म	न
प	(प) ग	(ग) रि	(रि) सा	–	सारि	ग प	ध् प	(प) धप	(ग) प ग	– ग	प	ग	रि	सा	–
वा	•	•	र	ऽ	ए •	• •	• •	के •	• •	ऽ स	कुँ	व	र	वा	ऽ

तानें

	×			५				०				१२			
१)					पप	गप	गरि	सा	प के	– ग ऽ स	प कुँ	ग घ	रि र	सा वा	– ऽ
२)					पप	गप	पग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
३)					सारि	गप	पग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
४)				सारि	गप	धप	पग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
५)				धप	पग	रिसा	धप	पग	रिसा	प के	– ग प ऽ स कुँ	,,	,,	,,	,,
६)				पध	प, प	धप	गप	पग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,
७)				पध	प धप,	गप	ग पग,	गप	धप	पग	रिसा	प ग के •	– ग प ऽ स कुँ	गरि घर	सा वा
८)				सारि	सारि,	रिग	रिग, ।	गप	धप	पग	रिसा	,,	,,	,,	,,
९)				रिसा	सा, ग	रिरि,	पग	ग, ध	पप	पग	रिसा	,,	,,	,,	,,
१०)				गग	रिग	रिसा	धध,	पध	पग	पग	रिसा	,,	,,	,,	,,

	×				५				०				१३			
११)	—				सा	रि	ग	प	–	धप	पग	रिसा	,,	,,	,,	,,
१२)					पध	प, प	धप,	पध	प, प	धप	पग	रिसा	,,	,,	,,	,,
१३)					सारि	सा, सा	रिसा,	पध	प, प	धप	पग	रिसा	,,	,,	,,	,,
१४)					सारि	गरि,	रिग	पग,	गप	धप	पग	रिसा	,,	,,	,,	,,
१५)					गरि	सारि,	पग	रिग,	धप	गप,	पग	रिसा	,,	,,	,,	,,
१६)	सारि	पग	धध	पध	सांसां	धप	पग	रिसा	प	–	–ग	प	ग	रि	सा	–
									के	ऽ	ऽस	कुँ	व	र	वा	ऽ
१७)	सारि	गप	धसां	–रिं	सांसां	धप	पग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१८)	सांरिं	सां,सां	रिंसां	पध	प, प	धप	पग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१९)	सांरिं	रिंसां,	पध	धप	गप	धप	पग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
२०)	गंग	रिसा,	धध	पग,	सांसां	धप	पग	रिसा		,,	,,	,,	,,		,,	,,

×				५				०				१३			
२१) सासा	सा, प	पप,	रि'रि'	सांसां	ध_प	पग	रिसा	"	"	"	"	"	"	"	"
२२) सरि	सा,सा	रिसा,	रि	रि, रि	गरि	गग	ग, ग	पग,	पध_	प, प	ध_प,	ध_सां	ध_,ध	सांध_,	सांरि'
सां,सां	रि'सां,	ध_सां	ध_,ध_	सांध_,	पध_	प, प	ध_प	गप	ध_प	पग	रिसा	प–	–गप	गरि	सा–
												केऽ	ऽरकुँ	वर	वाऽ
–	प ग	प	ध_	प–	–गप	गरि	सा	–	प ग	प	ध_	प–	–गप	गरि	सा–
ऽ	ए	•	•	केऽ	ऽ कुँ	व र	वा	ऽ	ए	•	•	केऽ	ऽरकुँ	वर	वाऽ
२३) गग	रि_ग	रि_सा,	ध_ध_	पध_	पग,	सांसां	ध_सां	ध_प	रि'रि'	सांरि'	सांध_,	सांसां	ध_सां	ध_प,	ध_ध_
पध_	पग	पप	गप	गरि_	गग	रि_ग	रि_सा	प	–	–ग	प	ग	रि_	सा	–
								के	ऽ	ऽस	कुँ	व	र	वा	ऽ
२४) सारि	सारि,	रिग	रिग,	गप	गप,	पध_	पध_,	ध_सां	ध_सां,	सांरि'	सांरि'	सांरि'	सां,सां	रिसां,	ध_सां
ध_,ध_	सांध_,	पध_	प, प	ध_प	गप	पग	रिसा	प	–	–ग	प	ग	रि_	सा	–
								के	ऽ	ऽस	कुँ	व	र	वा	ऽ
२५) सारि_	सारि,	रिग	रिग,	गप	गप,	पध_	पध_,	ध_सां	ध_सां,	सांरि'	सांरि',	ध_	–सां	रि'सां	ध_प
प	–ध_	सांसां	ध_प,	ग	–प	ध_प	गरि_,	रि_	–ग	पग	रि_सा	प–	–गप	गरि_	सा–
												केऽ	ऽरकुँ	वर	वाऽ
–	सा	–	सा	प–	–गप	गरि_	सा–	–	सा	–	सा	"	"	"	"
ऽ	जा	ऽ	जा	केऽ	ऽरकुँ	वर	वाऽ	ऽ	जा	ऽ	जा	"	"	"	"
२६) गरि_	रि_,ग	रि_रि_	गरि_	गरि_,	पग	ग, प	गग,	पग	पग,	ध_प	प,ध_	पप	ध_प	ध_प,	रि'सां
सां,रि'	सांसां,	रि'सां	रि'सां	सांसां	ध_प	पग	रि_सा	प	–	–ग	प	ग	रि_	सा	–
								के	ऽ	ऽस	कुँ	व	र	वा	

×			५				०				११				
२७) सारि_	गरि_	गरि_	रि_, ग	रि_रि_,	रि_ग	पग	पग	ग, प	गग,	गग	धूप	पग	ग,ग	गग,	धूसां
रि_'सां	रि_'सां	सां,रि_'	सांसां	सांरि_'	– सां	सांसां	धूप	पग	रि_सा	सां,	सांरि_'	– सां	सांसां	धूप	पग
रि_सा	सां,	सांरि_'	– सां	सांसां	धूप	पग	रि_सा	प	–	– ग	प	ग	रि_	सा	–
								के	ऽ	ऽ स	कुँ	ग	र	वा	ऽ
२८) गग	रि_ग	रि_सा,	धूधू_	पधू_	पग	रि_'रि_'	सांरि_'	सांधू_	गंगं	रि_'गं	रि_मं	रि_'रि_'	सांरि_'	सांधू_	सांसां
धूसां	धूप,	धूधू_	पधू_	पग	गग	रि_ग	रि_सा,	प –	-गप	गरि_	सा,प	गरि_	सा,प	गरि_	सा –
								के ऽ	ऽसकुँ	घ र	वा,कुँ	घ र	वा,कुँ	घ र	वा ऽ
(२९) सासा	सा, प	पग,	पग	रि_सा,	पप	प, सां	सांसां	सांसां	धूप,	सांसां	सां,पं	धंपं	पंगं	रि_'सां,	सांसां
धूप	'ग	रि_सा,	सांस.	धूप	पग	रि_सा,	ऽसां	ऽप	पग	रि_सा	प	प –	-गप	गरि_	सा –
											हो	के ऽ	ऽसकुँ	घ र	वा ऽ
सा	–	–	प	प –	– गप	गरि_	सा –	सा	–	–	,,	,,	,,	,,	,,
वा	ऽ	ऽ	हो	के ऽ	ऽसकुँ	घ र	या ऽ	वा	ऽ	ऽ	,,	,,	,,	,,	,,
(३०) सारि_	रि_सा,	रि_ग	गरि_,	गप	पग,	पधू_	धूप,	धूसां	सांधू_	गरि_'	रि_'सां,	रि_गं	गंरि_',	सांरि_'	रि_सां,
धूसां	सांधू_,	पधू_	धूप,	गप	पग,	रि_ग	गरि_	सारि_	रि_सा	सा	सां	प –	-गप	सरि_	सा –
												के ऽ	ऽसकुँ	घ र	वा ऽ

राग विभास

ताल—द्रुत एकताल

गीत

स्थायी—छाँड़ो कृष्ण जुगल पैयाँ मोर भई अँगना।

अंतरा—दीपक की जोत फीकी चंद्रहु को चँदना,
मुख को तंबोल फीको नयनन के अंजना॥

स्थायी

×		०		५		०		९		११	
गप	ध्	प	प ग	–	गरि्	प ग	प	ग	रि्	–	सा
छाँ•	•	ड़ो	कृ	ऽ	ष्न•	जु	ग	ल	पैं	ऽ	याँ
प	ग	प	प	प	–	ध्	प	ध्	ग	प	–
मो	र	र	म	ई	ऽ	अँ	ग	ना	•	•	ऽ

अन्तरा

प	ग	प	प	ध्	–	सां	–	सां	रिं	सां	–
दी	•	प	क	की	ऽ	जो	ऽ	त	फी	की	ऽ
सां	सां ध्	ध्	सां	रिं	–	सां	रिं	सां	सां ध्	प	–
चं	•	द्र	हु	को	ऽ	चँ	द	ना	•	•	ऽ
प	ग	प	–	प	–	प	–	ध्	प	ध्	–
मु	ख	को	ऽ	तं	ऽ	बो	ऽ	ल	फी	को	ऽ
प	ग	प	ध्	सां	–	सां	रिं	सां	सां ध्	प	–
न	य	न	न	के	ऽ	अं	ज	ना	•	•	ऽ

राग विभास

ध्रुवपद – सूलताल

गीत

स्थायी—गायन विद्या गुरु के अंग ब्योरे।
साध ले उत्तम ढंग जामें वरत॥

अंतरा—सरस्वती सुमिरन जे गुनि करियत।
तवहि बजत अंग के रंग के चेत॥

स्थायी

×		०		५		७		०	
ग	–	रि॒	सा	सा	–	सा	रि॒सा	सा	ध॒
गा	ऽ	य	न	वि	ऽ	द्या	••	गु	रु
सा	रि॒	ग (प)	प	प	ध॒प	ग	रि॒	सा	–
के	•	अं	ग	ब्यो	••	•	•	रे	ऽ
सा	ग (प)	प	–	सा (प)	ग (प)	प	प	–	ध॒
सा	ध	ले	ऽ	उ	•	•	त्त	ऽ	म
सां	–	ध॒	प	–	ग	–	रि॒	सा	सा
ढ	ऽ	ग	जा	ऽ	में	ऽ	ब	र	त

अंतरा

×		०		५		७		०	
[प]ग	म	प	ध्	सां	सां	—	रि'	सां	—
स	र	स्व	ती	सु	मि	ऽ	र	न	ऽ
[सां]प	ध्	सां	सां	सां	रि'	[ध]रि'	सां	ध्	प
जे	•	शु	नि	क	रि	य	•	•	त
प	म	[ग]प	ग	प	प	प	ध्	ध्	—
त	च	हि	य	ज	त	थं	ग	फे	ऽ
सां	रि'	[प]सां	[सां]ध्	प	ग	रि	सा	—	सा
रं	ग	के	•	•	•	•	चे	ऽ	व

राग विभास

ध्रुवपद—झपताल

गीत

स्थायी—श्याम सुन्दर मुरली मनोहर, गोवरधन धारन ।

अंतरा— वृन्दावन विहार गुरु के कारन गोपी मन रंजन ॥

स्थायी

×	•	३	४	०	६	७	८	०	१०	११	१२	१३	०
ध ग	प ध़	प ग	पग	रि़सा	सारि़	गप	गरि़	सासा	सारि़	गप	(प) ध़प़	सां	ध़प
श्या•	• •	म सुं	•द	र •	मु र	लीन	मो •	ह र	गो •	धर	ध न	धा	र न

अंतरा

प ग	प ध़	सांसां	सांगं	– सां	(रिं सां) सां रिं	(ध) सां रिं	सांसां	ध़प	ग प	ध़सां	ध़प	पग	रि़सा
वृं•	दा•	व न	वि हा	• र	गु रु	के •	का •	र न	गो •	पी •	मन	रं•	ज न

राग दरबारी कान्हड़ा

म — नि॒ — म

आरोहावरोह—सारि ग॒ ∿∿ म प ध॒ ∿∿ नि॒ – प, म प सां ध॒ ∿∿ नि॒ – प, म प ग॒ ∿∿ म रि सा।

जाति—वक्र सम्पूर्ण – औडव।

नि॒ — ध॒ सा — नि॒

ग्रह—मन्द्र धैवत। सा, ध॒ ∿∿ नि॒ – सा।

अंश—पूर्वांग में गान्धार, उत्तरांग में धैवत।

न्यास—पञ्चम।

अपन्यास—ऋषभ।

विन्यास—मध्य षड्ज।

नि॒ — ध॒ सा नि॒ — म

मुख्य अंग—सा ध॒ ∿∿ नि॒ सा, ध॒ ∿∿ नि॒ – प॒, सा, रि सारि ग॒ ∿∿ म – रिसा।

समय—रात्रि के प्रथम याम के अन्त में या द्वितीय याम के आरम्भ में।

प्रकृति—गंभीर।

विशेष विवरण

दरबारी या दरबारी कान्हड़ा बड़ा प्रसिद्ध और गम्भीर राग है। धैवत और गान्धार पर क्रमशः कोमल निषाद और शुद्ध मध्यम के आन्दोलन देने से इस राग का रागत्व प्रस्फुटित होता है और उसीसे इसका गाम्भीर्य भी बढ़ता है। गान्धार, धैवत, निषाद इसमें सामान्य प्रचलित भाषा में कोमल लगते हैं, फिर भी यह ध्यान रहे कि इसमें आसावरी की कोमलता नहीं है, न ही आसावरी का कोई अंग कहीं भी दिखाई देता है। केवल स्वरांग ही राग की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त नहीं है। रागांग, क्रियांग, स्वरांग, स्वरों पर आन्दोलन, उनका ठहराव और उच्चार—ये सब राग-भाव और राग-रूप को प्रकट करते हैं।

इस राग के गान्धार धैवत, निषाद का इस तरह उच्चार किया जाता है जिससे उन में प्रौढ़ पुरुष का दर्शन होता है। इसको मन्द्र और मध्य सप्तक की विलम्बित आलापचारी इसे गंभीर प्रकृति का राग प्रमाणित करती है।

ध॒ सा — नि॒ — नि॒

ध॒ ∿∿ ∿∿ नि॒ – सा, प॒ ∿∿ ∿∿ नि॒ – प॒, और ग॒ ∿∿ म – रिसा, ये मुख्य विचार प्रयाची हैं।

नि॒ — ध॒ सा

इसके आरम्भ में षड्ज के उच्चार के बाद ही मन्द्र धैवत से ध॒ ∿∿ ∿∿ नि॒ सा, यों विलम्बित गति से धैवत को दो चार बार आन्दोलन देने के बाद निषाद से षड्ज पर पहुँचते ही दरबार में दरबारी कान्हड़ा छा जाता है।

स्वर, प्रकृति, लगाव, उठाव, आन्दोलन, उच्चार ये सब गंभीर होते हुए भी न जाने क्यों इस राग में शादी के अवसर के गीत बहुत पाये जाते हैं। 'बनरा बनरी ब्याहन आया', 'मुबारकबादियाँ शादियाँ', 'दुलहिन तेरी अच्छी बनी', 'सुहागन चोलना'—वगैरह ख्याल और त्रिताल के अन्य कई ऐसे पद हैं, जिनमें शादी का वर्णन पाया जाता है। हमारी राय में इस राग के लिए नये पद बनाने चाहिए। गंभीर भाव नये शब्दों में, नई कविता में, नये स्वरों में, नये आलापों में भरने चाहिए। संगीत के क्षेत्र में ऐसे बहुत से कार्य करना शेष है।

इस राग का ग्रह स्वर मन्द्र धैवत है क्योंकि तंबूरे के साथ 'सा' मिलाने के बाद तुरन्त ही नि॒ ध॒ ∿∿ ∿∿ ध॒ सा नि॒ सा, कहकर ही हम राग का आरम्भ करते हैं। पंचम इसका न्यास स्वर है और ऋषभ अपन्यास है यानी इन दोनों पर ठहराव होता है। पंचम के न्यासत्व का अर्थ यह कभी न समझा जाय कि सा रि ग॒ ∿∿ म प, इस प्रकार पंचम पर रुका जा सकता है, अपितु ऐसा करने से काफ़ी का दर्शन होगा। म नि॒ ध॒ ∿∿ ∿∿ नि॒ – प, यों अवरोह करते समय नि॒ – प संगति से ही पंचम पर ठहराव होगा, ठीक वैसे ही जैसे कि म ग॒ ∿∿ म – रि कहने के बाद तत्काल षड्ज पर पूर्ण-विराम यानी विन्यास किया जाता है। इसकी तानों में सारंग का अंग अधिक दिखाई देता है और वही गुणिसम्मत है। केवल बीच-बीच में कोमल गान्धार और धैवत को वक्र रूप से दिखा दिया जाता है। नि॒ – प और म – रि ये सारंग के स्वर होने पर भी इस राग के पोषक हैं, बल्कि अवरोह करते समय ये दो स्वर-संगतियाँ लेना अनिवार्य है, क्योंकि इन्हीं से यह राग अभिव्यक्त होता है। विद्वज्जन का यह कथन सत्य है कि सारंग के स्वरों में ही कोमल गान्धार-धैवत के वक्र प्रयोग से कान्हड़ा अंग की रचना हुई है। कान्हड़ा अंग के प्रायः सभी रागों में सारंग के ये अंग पाए जाते हैं। इसका सामान्य चलन इस प्रकार है—

नि॒ ध॒ सा — म म म — नि॒ नि॒ नि॒
सा – ध॒ ∿∿ नि॒ – सा, सारि ग॒ ग॒ ग॒ म – रिसा, मप ध॒ ध॒ ध॒ नि॒ – प, मप स ध॒ ∿∿ नि॒ – प,
म
नि॒नि॒पमप ग॒ ∿∿ ∿∿ म – रिसा।

———

स्वर, प्रकृति, लगाव, उठाव, आन्दोलन, उच्चार ये सब गंभीर होते हुए भी न जाने क्यों इस राग में शादी के अवसर के गीत बहुत पाये जाते है। 'बनरा बनरी ब्याहन आया', 'मुबारकबादियाँ शादियाँ', 'दुलहिन तेरी अच्छी बनी', 'सुहागन चोलग'—वग़ैरह ख्याल और त्रिताल के अन्य कई ऐसे पद हैं, जिनमें शादी का वर्णन पाया जाता है। हमारी राय में इस राग के लिए नये पद बनाने चाहिए। गंभीर भाव नये शब्दों में, नई कविता में, नये स्वरों में, नये आलापों में भरने चाहिए। संगीत के क्षेत्र में ऐसे बहुत से कार्य करना शेष है।

इस राग का ग्रह स्वर मन्द्र धैवत है क्योंकि तंबूरे के साथ 'सा' मिलाने के बाद तुरन्त ही नि् ध् ∿∿ ∿∿ ध् सा नि् सा, कहकर ही हम राग का आरम्भ करते हैं। पंचम इसका न्यास स्वर है और ऋषभ अपन्यास है यानी इन दोनों पर ठहराव होता है। पंचम के न्यासत्व का अर्थ यह कभी न समझा जाय कि सा रि ग् ∿∿ म प, इस प्रकार पंचम पर रुका जा सकता है, अपितु ऐसा करने से काफी का दर्शन होगा। म प ध् ∿∿ ∿∿ नि् नि् – प, यों अवरोह करते समय नि् – प संगति से ही पंचम पर ठहराव होगा, ठीक वैसे ही जैसे कि ग् ∿∿ म म – रि कहने के बाद तत्काल षड्ज पर पूर्ण-विराम यानी विन्यास किया जाता है। इसकी तानों में सारंग का अंग अधिक दिखाई देता है और वही युक्तिसम्मत है। केवल बीच-बीच में कोमल गान्धार और धैवत को वक्र रूप से दिखा दिया जाता है। नि् – प और म – रि ये सारंग के स्वर होने पर भी इस राग के पोषक हैं, बल्कि अवरोह करते समय ये दो स्वर-संगतियाँ लेना अनिवार्य है, क्योंकि इन्हीं से यह राग अभिव्यक्त होता है। विद्वज्जन का यह कथन सत्य है कि सारंग के स्वरों में ही कोमल गान्धार-धैवत के वक्र प्रयोग से कान्हड़ा अंग की रचना हुई है। कान्हड़ा अंग के प्रायः सभी रागों में सारंग के ये अंग पाए जाते हैं। इसका सामान्य चलन इस प्रकार है—

नि् ध् सा म म म नि् नि् नि्
सा – ध् ∿∿ नि् – सा, सारि ग् ग् ग् म – रिसा, मप ध् ध् ध् नि् – प, मप सां ध् ∿∿ नि् – प,
म
निनिपमप ग् ∿∿ ∿∿ म – रिसा।

———

राग दरबारी कान्हड़ा

मुक्त आलाप

सा नि् रि नि् नि्सा सा रि नि् ध्सा नि् नि् पसा
(१) सा, नि् सा, नि् सा – सारिरिनि् – सा, नि् ध् ~~~ नि् सा, सा – रिसा ध् ~~~ नि् सा सा –

सा नि् सा नि् सा नि् सा नि् नि् सारि नि् पसा नि्
नि् रिसा ध् ~~~ नि् सा, रि सा रि ध् ~~~ नि् सा, ध् नि् सा रि – ध् ~~~ नि् सा।

प सा नि् पसा नि् नि् नि्
(२) रिनि् – रिसा ध् ~~~ नि् सा, सा – नि् ध् ~~~ ध् नि् सा – नि् ध् ~~~, सानि् सा – नि्

नि् नि् ध् सा नि् नि् सा नि् नि् सा प नि् सा
ध् ~~~, रिसारि – नि् ध् ~~~, नि् सासा = नि् रिरि = सा सासा = नि् ध् नि् सा, रिरिसानि् सारि – रि ध् नि्

नि् ध् नि् नि् सा नि् ध् नि् प नि् ध् नि् सा नि् ध्
सा, सासानि् ध् नि् – ध् रिरिसानि् सा = नि् ध् नि् सा, सासा – नि् – नि् = ध् रिरि = सा – सासा = नि् – नि् = ध्

नि् पसा नि्
ध् नि् – सा।

नि् सा नि् पसा नि् नि् सा सा नि् सा
(३) रिरिसानि् सा ध् ~~~ ~~~ नि् ~~~ ~~~ सा, रिरिसानि् सा – रिसा ध् ~~~ ~~~ नि् ~~~

नि् नि् सा नि् पसा नि् नि् सा नि् सा नि्
~~~ सा, रिरिसानि् सा – रि ध् ~~~ नि् ~~~ ~~~ सा, रिरिसानि् सा – रिनि् – रिसा – रि ध् ~~~ ~~~

पसा नि्
नि् ~~~ सा।

नि् सा नि् नि् सा नि् पसा नि् प नि् ध् नि् सा नि् नि् सा नि्
(४) रिरि = सा – सा – रिरिसा ध् ~~~ नि् सा, सासा = नि् – नि् रि – रि = सा – सा – रिरिसा ध् ~~~

पसा नि् नि् सा नि् सा नि् पसा नि् नि्
नि् सा, निसारिरिसानि् सा रिरिसा ध् ~~~ ~~~ नि् ~~~ ~~~ सा, सा – नि् रिसा पसानि् नि् रिसा ध् ~~~

पसा
~~~ नि् ~~~ ~~~ सा।

निसां, निरिं'सां रिं'सांध ∿∿ नि सां – निसां, रिं'नि – रिं'सां – रिं'नि – रिं'सां – रिं'ध – नि सां – निसां,

निम – निप – निम – निप – नि ग म रि – सा।

(१६) सारिग ∿∿ मगध ∿∿ ध नि रिं', रिं'सांरिं' – रिं'निरिं' –, रिं'सां सांनि रिं', रिं'सां सांनि

निध सांनि रिं', गं रिं'रिं'—रिं'सांसां – रिं'सांसां—सांनिनि – रिं', गं रिं'—रिं'सांसां रिं'सां—सांनिनि

सांनि—निधध—सांननि रिं' –, गमध ∿∿ धनिसां – नि ध नि रिं', मपसांसांनि निध –

धनिरिं'—रिं'सां सांनि – रिं', मपसांसांनि धनिरिं'रिं'सां सांनि – निध – सांनि – रिं' – सां – निसां, रिं'रिं'सां

ध ∿∿ नि – प मपसां ग ∿∿ ग म प ग ∿∿ म रि – सा।

(१७) निसारिमपनिसांरिं' गं ∿∿ मंरिं' – सां, ग ∿∿ म रि – सा ; ममरिसा निसारिमपनिसांरिं'

गं ∿∿ मं रिं' – सां, ग ∿∿ म रि – सा ; सारिग ∿∿ मपध ∿∿ सांरिं'गं ∿∿ मं रिं' – सा, ग ∿∿ म

रि – सा, मंमंरिं' रिं'रिं'सा सांसांनि धनिसांरिं' गं ∿∿ मं रिं' – सां, ग ∿∿ म रि – सा ; गं रिं' रिं'सांसां

रिं'सां सांनिनि सांनि निधध सांनिनि रिं'सांसां गं ∿∿ मं रिं' – सां, ग ∿∿ म रि – सा, रिं'रिं'सांनिसांरिं'

ध ∿∿ नि प, निनिपमप सां ग ∿∿ म – रिसा – निसा।

मंगं—मंगं—मंगं मंमंरिंसां, सांरिंसां—सांरिंसां रिंसां—रिंसां—रिंसां रिंरिंसांनि निसांनि—निसांनि सांनि—सांनि—सांनि पनिरम, गमग—गमग गम गमरम गमरिसा। सारिरिसा साममग गमरम गमरिसा। सारिरिसा साममग गपरम मनिनिर पसांसांनि निरिंरिंसां सांमंमंगं मंमंरिंसां रिंरिंसांनि सांसांनिर निनिपम परमग गमरम गमरिसा। मग=म रिसानि सा, निध=नि पमग म, मंगं=मं रिंसांनि सां, निध=नि पमग म, मंगं=मं रिंसांनिसां मंमंरिंसां रिंरिंसांनि सांसांनिर निनिपम परमग ममरिसा। नि सारिम—पनिसांरिं गं मंरिंसां ग मरिसा गं मंरिंसां निनिपम ग मरिसा। सासासा—रिरिरि सासासा—मग ग सासासा—पपप सासासा—निनिनि सासासा—सांसांसां सासासा—रिंरिंरिं सांनिरम ग मरिसा। गमगम गमरिसा, धनिधनि धनिरम, गंमंगंमं गंमंरिंसां, निनिपम गमरिसा। सारि—सारि गम—गम मप—मप धनि—धनि निसां—निसां सांरिं सांरिं गंमं—गंमं सांरिं—सांरिं निसां—निसां धनि—धनि मप—मप गम—गम सारि—सारि नि सा—नि सा। ममम पपप धध निनिरम गमरिसा, सांसांसां रिंरिंरिं गंगं मंमंरिंसां रिंरिंसांनि सांसांनिर निनिपम गमरिसा।

राग दरबारी कान्हड़ा

बड़ा ख्याल

ताल—विलम्बित एकताल

गीत

स्थायी—हज़रत तोरे कमाल* जू के बल बल जैये री माई पीर मेरो साँचो ।

अंतरा—समशुल औलिया पीर दुःख दलिद्द दूर करन
ताके रोशन चहूँ ओर ॥

स्थायी

	×		०		५	
	०		९		११	
					सा सा रि रिसा नि॒सा रिरिसा-	नि॒ ध॒ नि॒ प
					ह •• •• ••ज ऽ	र • • त
	×		०		५	
प सा	नि॒सा - - -	सा रिसासानि॒ - ध॒ -	नि॒सानि॒ - - ध॒ - (नि॒)	नि॒ सा - -	नि॒सा - - -	
तो	•• ऽ ऽ ऽ	•••• ऽ •ऽ	• • •ऽऽ•	रे • ऽ ऽ	•• ऽ ऽ ऽ	

---

* इस ख्याल में 'तोरे कमाल' के स्थान पर कुछ लोग 'तुर्कमान' भी गाते हैं। हमारी परम्परा में हमें 'तोरे कमाल' ही मिला है और कमाल के शब्दों साथ उसका अर्थ भी जुड़ जाता है, इसलिये हम इसी प्रकार गाते हैं।

राग दरबारी कान्हड़ा

छोटा ख्याल

ताल—त्रिताल

गीत

स्थायी—ये तुव सौं ही करीम रहीम हकीम पाक परवरदिगार
गरबिय को गरब दूर कर दारत है छिन में दुखिया को मोरे दाता।

अंतरा—जो मो मन की इच्छा सो पुजयो साईं, सदारंग को दीजे
दीन दुनी में जो बताने ॥

स्थायी

×				५				०				१३			
												(रि)नि॒	सा	रि	सा
												ये	•	तु	व
(नि॒)ध॒	–	(नि॒)ध॒	–	(सा)नि॒	–	सा	–	(रि)नि॒	सा	–	सा	(रि)नि॒	सा	–	सा
सौं	ऽ	•	ऽ	ही	ऽ	•	ऽ	क	री	ऽ	म	र	ही	ऽ	म
(नि॒)रि	(म)रि	–	सा	सा	–	सा	(रि)सा	(रि)सा	(रि)नि॒	(रि)सा	रि	(नि॒)ध॒	–	नि॒	प॒
ह	की	ऽ	म	पा	ऽ	क	प	र	व	र	दि	गा	ऽ	•	र
म॒	म॒	प॒	प॒	(नि॒)ध॒	(नि॒)ध॒	नि॒	सा-रिसा	ध॒--नि॒	नि॒	सा	सा	(रि)नि॒	सा	रि	–
ग	र	बि	य	को	•	ग	रऽ••	बऽऽ•	दू	•	र	क	र	डा	ऽ
रिसा	रि	(म)ग॒	(म)ग॒	मप	पनि॒	(म)ग॒	–	मप	पनि॒	(म)ग॒	–	म	ग॒	म	ग॒
र•	त	है	•	छि•	न•	में	ऽ	दु•	खि•	या	ऽ	•	•	को	•

× ० ५

प सां	– – निसां सां	रिं सां नि नि	सां सां सां नि नि नि नि प	रिंरिं – – –	नि – – – रिं
पी	ऽ ऽ • • र	दु ल	• • • द	रि • ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ द

० ९ ११

रिंरिं – रिंसां	रिं रिंरिं – सां नि –	नि सांसां – – रिंसां ध –	नि प	म मनिनिपमप, मनि	म म निपमप, निरग –
द • ऽ र •	• • ऽ • फ •	• • ऽ ऽ • • रऽ	• न	ता•• ••• ••	•••• ••केऽ

× ० ५

म रि – रि सा	सा म म रि	रि प म प – निप पम	म नि प नि – सांनि निप	सां	रिरि – – सा
रो ऽ श •	न च	हूँ ऽ •• ••	• ऽ •• ••	•	ओ• ऽ ऽ •

० ९ ११

रिं रिंरिं – – न	निसां निसां प –	नि प – नि पनि म –	प म – प मप ग –	म – – ग गम रिसा	नि ध – नि प
•• ऽ ऽ •	•• •• • ऽ	•• •• • ऽ	• ऽ • •• • ऽ	ऽ ऽ र इ• ज•	र ऽ • त

राग दरबारी कान्हड़ा

छोटा ख्याल

ताल—त्रिताल

गीत

स्थायी—ये तुव सों ही करीम रहीम इकीम पाक परवरदिगार
गरविय को गरव दूर कर डारत है छिन में दुखिया को मोरे दाता।

अंतरा—जो मो मन की इच्छा सो पुजवो साईं, सदारंग को दीजे
दीन दुनी में जो बताये ॥

स्थायी

×				५				०				१३			
												(रि)नि॒	सा	रि	सा
												ये	•	तु	व
(नि॒)ध॒	—	(नि॒)ध॒	—	(सा)नि॒	—	सा	—	(रि)नि॒	सा	—	सा	(रि)नि॒	सा	—	सा
सों	ऽ	•	ऽ	हो	ऽ	•	ऽ	क	री	ऽ	म	र	ही	ऽ	म
(नि॒)रि	(म)रि	—	सा	सा	—	सा	(रि)सा	(रि)सा	(रि)नि॒	(रि)सा	रि	(नि॒)ध॒	—	नि॒	प॒
इ	की	ऽ	म	पा	ऽ	क	प	र	व	र	दि	गा	ऽ	•	र
म॒	म॒	प॒	प॒	(नि॒)ध॒	(नि॒)ध॒	नि॒	सा-रिसा	ध॒--नि॒	नि॒	सा	सा	(रि)नि॒	सा	रिं	—
ग	र	वि	य	को	•	ग	रऽ••	वऽऽ•	दू	•	र	क	र	दा	ऽ
रिसा	रि	(म)ग॒	(म)ग॒	मप	पनि॒	(म)ग॒	—	मप	पनि॒	(म)ग॒	—	म	ग॒	म	ग॒
र•	त	है	•	छि•	न•	में	ऽ	दु•	खि•	या	ऽ	•	•	को	•

×				५				०				१२			
मप	मम	रि	सा	रि	–	सा	–	नि॒सा	रिम	रि	सा	नि॒	सा	रि	सा
••	••	मो	रे	दा	ऽ	ता	ऽ	••	••	ये	•	•	•	तु	व

अंतरा

×				५				०				१२			
सा	– रि	म ग॒	म ग॒	प म	म	प	–	प	–	प	–	–	–	प	–
जो	ऽ •	मो	•	म	न	की	ऽ	इ	ऽ	च्छा	ऽ	ऽ	ऽ	सो	ऽ
नि॒ म	प	म नि॒	प नि॒	प	म	रि	सा	रि	नि॒	सा	–	सा	–	सा नि॒	सा नि॒
पु	ज	वो	•	•	•	•	•	साँ	•	•	ऽ	ई	•	स	दा
नि॒ म॒	प॒	नि॒ ध॒	नि॒ ध॒	सा नि॒	सा	सा	–	म	रि	म	म	प	– म	नि॒	प
रं	ग	को	•	दी	•	जे	ऽ	दी	•	न	दु	नी	ऽ •	में	ऽ
सां	–	–	–	नि॒नि॒	पम	रिसा	नि॒सा	रि	–	सा	–	रि नि॒	सा	रि	सा
चो	ऽ	ऽ	ऽ	च •	ता•	••	••	•	ऽ	थे	ऽ	ये	•	तु	व

तानें

	×				५				०				१३			
१)											ग॒म	रिसा	नि॒	सा	रि	सा
													ये	•	तु	व
२)									ग॒म	ग॒म	रिसा	नि॒सा	,,	,,	,,	,,
३)									ग॒	– म	रिसा	नि॒सा	,,	,,	,,	,,
४)									सासा	रिरि	ग॒म	रिसा	,,	,,	,,	,,
५)									मग॒	ग॒,म	ग॒ग॒	मग॒	मम	रिसा	नि॒सा	रिसा
															ये•	तुव
६)									रिसा	सा,म	ग॒ग॒	मग॒	ग॒म	रिसा	,,	,,
७)									सारि	ग॒	–	ग॒म	रिसा	नि॒सा	,,	,,
८)									ध॒नि॒	सारि	ग॒	ग॒म	रिसा	नि॒सा	,,	,,
९)									नि॒ध॒	सानि॒	रिसा	मग॒	मम	रिसा	,,	,,
१०)									नि॒सा	रिसा	सारि	मग॒	ग॒म	रिसा	,,	,,

	×				५				०				१३			
११)							निसा	रिसा	सारि	मग	गम	पम	गम	रिसा	,,	,,
१२)					धनि	सानि	निसा	रिसा	सारि	मग	गम	पम	गम	रिसा	,,	,,
१३)					सारि	सा, सा	रिसा,	गम	ग,ग	मग	गम	पम	गम	रिसा	,,	,,
१४)					निध	धनि	धध	मग	गम	गग	गम	पम	गम	रिसा	,,	,,
१५)					सासा	रिरि	गग	मम	पम	गम	रिसा	निसा	नि ये	सा •	निसा • •	रिसा तुव
१६)	धनि	ध,ध	निध	निसा	नि,नि	सानि	सारि	सा, सा	रिसा,	साम	ग,ग	मग	गम	रिसा	निसा ये•	रिसा तुव
१७)	सानि	नि,सा	निनि	रिसा	सा,रि	सासा	रिसा	रिसा	मग	ग,म	गग	मग	मम	रिसा	निसा ये•	रिसा तुव
१८)	धनि	ध निध	निसा	नि सानि	सारि	सा रिसा	साम	ग मग	गम	पम	गम	रिसा	–	नि– ये ऽ	सारि • तु	–सा ऽ व
१९)	सानि	धनि	रिसा	निसा	मरि	सारि	पम	गम	निनि	पम	गम	रिसा	,,	,,	,,	,,
२०)	सासा निनि	नि,सा पम	सानि गम	धनि रिसा,	रिरि निनि	सा,रि पम	रिसा गम	निसा रिसा,	मम निनि	ग,म पम	मरि गम	सारि, रिसा	पप प ये	म, प – ऽ	पम –म ऽ •	गम निप तुव

×				५				०				१३			
(म)ग॒	–	–	–,	प	–	–म	नि॒र	ग॒	–	–,	नि॒प,	ग॒	–	–,	नि॒प
सों	ऽ	ऽ	ऽ,	ये	ऽ	ऽ•	तुव	सों	ऽ	ऽ,	तुव	सों	ऽ	ऽ,	तुव
२१) मग॒	ग॒, म	ग॒ग॒	पम	म,प	मम	नि॒ग॒	ध॒,नि॒	ध॒ध॒	नि॒नि॒	पम	ग॒म	रिसा	नि॒सा	नि॒सा	रिसा
														ये •	तुव
२२) नि॒सा	रिम	पनि॒	सांरिं'	(मं)ग॒'मं	रिं'सां	नि॒नि॒	पम	ग॒म	रिग॒	नि॒सा	रिसा	–	रिसा	–	रिसा
										ये	तुव	ऽ	तुव	ऽ	तुव
२३) मग॒	ग॒,म	ग॒ग॒,	पम	म,प	मम,	नि॒ध॒	ध॒,नि॒	ध॒ध॒,	सांनि॒	नि॒,सां	नि॒नि॒	रिं'सां	सां,रिं'	सांसां	मंगं॒
गं॒,मं	गं॒गं॒,	मंमं	रिं'सां	नि॒नि॒	पम	ग॒म	रिसा,	नि॒सा	रिसा	ध॒,	नि॒सा	रिसा	ध॒,	नि॒सा	रिसा
								ये •	तुव	सों	ये •	तुव	सों	ये •	तुव
२४) नि॒सा	रिसा	सा,रि	मग॒	ग॒म	पम	मप	नि॒ध॒	ध॒नि॒	सांनि॒,	नि॒सां	रिं'सां	सांरिं'	मंगं॒,	गं॒मं	रिं'सां
नि॒नि॒	पम	ग॒म	रिसा	नि॒सा	रिम	पनि॒	सां	–,	नि॒प	(म)ग॒	–,	नि॒सा	रिम	पनि॒	सां
									तुव	सों	ऽ				
–	नि॒प	(म)ग॒	–,	नि॒सा	रिम	पनि॒	सां	–,	नि॒प	(म)ग॒	–,	नि॒प	(म)ग॒	–,	नि॒प
	तुव	सों	ऽ						तुव	सों	ऽ	तुव	सों	ऽ	तुव
२५) सासा	सा,रि	रिरि,	ग॒ग॒	ग॒,म	मम,	पप	प,ध	ध॒ध॒,	नि॒नि॒	नि॒,सां	सांसां,	रिं'रिं'	रिं',मं	गं॒गं॒,	मंमं
रिं'सां	नि॒नि॒	पम	ग॒म	रिसा	नि॒सा	रिम	पनि॒	सांरिं'	गं॒	–	ग॒	–,	नि॒सा	रिम	पनि॒
सांरिं'	गं॒	–	ग॒	–,	नि॒सा	रिम	पनि॒	सांरिं'	गं॒	–	ग॒	–,	सा	नि॒सा	रिसा
													ये	• •	तुव

राग दरबारी कान्हड़ा

गीत—त्रिताल

गीत

स्थायी—बंदनवार बाँधो रे बाँधो सब मिल के मालनिया
मम्मदसा प्यारे के घर आज ।

अंतरा—सदा रँगीले तानन सों मधुवा गावो मालनिया
सब साहिब सों आज ॥

स्थायी

×				५				०				१३			
													म_म_ नि_नि_	प_म_	प_
													धं •	द•	न
नि_ ध_	–	सा नि_	सा नि_	सा	रि	सा	रि	म ग_	म ग_	म ग_	म ग_	म	रि	–	सा
वा	ऽ	•	•	र_	बाँ	•	धो	रे	•	•	•	•	बाँ	ऽ	धो
साम'	ग_म	रि	सा	रिनि_	सा	साम	ग_म	रि	सा	नि_ ध_	नि_	सा	प_	म_	प_
स•'	ब•	मि	ल	के •	•	मा•	••	ल	नि	या	•	•	बं	द	न
नि_ ध_	–	सा नि_	सा नि_	सा	रि	सा	रि	म ग_	–	म ग_	म ग_	–	रि	सा	रि
वा	ऽ	•	•	र_	बाँ	•	धो	रे	ऽ	•	•	ऽ	म	म्म	द
म ग_	म ग_	म ग_	म नि_	प	म	रि	सा	नि_	सा	रि	नि_	सा	प_	म_	प_
सा	•	•	प्या	रे	के	घ	र	आ	•	•	ज	•	बँ	द	न

राग दरबारी कान्हड़ा

ध्रुवद—चौताल

गीत

स्थायी—खरज रिखम गान्धार, मध्यम पंचम धैवत निखाद,
ये सप्त सुर सुध नीके सुढाय गाय,
धुरपद मध सुनियो गायन गुनि ।

अंतरा—आरोहि अवरोहि जाकी उलट पुलट होय,
निखाद धैवत पंचम मध्यम गान्धार रिखभ ॥

स्थायी

×		०		५		०		९		११	
सा	सा	सा	रि	सा रि	सा रि	म ग्	म ग्	–	म ग्	–	ग्
ख	र	ज	रि	ख	भ	गां	•	ऽ	धा	ऽ	र
म	–	म	म	प	–	प	प	नि् ध्	नि् ध्	नि् ध्	नि् ध्
म	ऽ	ध्य	म	पं	ऽ	च	म	धै	•	व	त
सां नि्	सां नि्	–	नि्	सां	ध्	–	ध्	नि्	प	म	प
नि	खा	ऽ	द	ये	•	ऽ	स	•	स	सु	र
नि्	ग्	–	पम	नि	प	नि्	ग्	ग्	ग्	ग्	म
न	सों	ऽ	नी•	•	के	सु	ला	•	ये	गा	•
म	ग्	म	प	ग्	–	म	रि	सा रि	सा	सा	–
ध	धु	र	प	दं	ऽ	म	ध	सु	नि	यो	ऽ

×		०		५		०		९		११		
नि्	प	नि्	म	प	नि्	ग्	-	ग्	म	रि		
गा	•	•	•	•	य	न	ऽ	•	•	गु	नि	

अन्तरा

सा	–	–	सां	–	सां	रिं नि्	सां नि	सां नि्	सां नि्	–	सां
आ	ऽ	ऽ	ये	ऽ	ही	अ	व	•	रो	ऽ	ही
म सां	–	सां	रिं नि्	सां	रिं	मं रिं	रिं नि्	सां	नि् ध्	नि्	प
आ	ऽ	की	उ	ल	ट	पु	ल	ट	हो	•	य
सां नि्	सां नि्	–	नि्	नि् ध्	–	नि् ध्	नि् धनि्	नि् प	–	प	प
नि	खा	ऽ	द	धै	ऽ	व	त•	पं	ऽ	च	म
म	–	म	म	म ग्	–	म ग्	–	ग्	रि	रि	रि
म	ऽ	ध्य	म,	गां	ऽ	धा	ऽ	र	रि	ख	भ

राग मालगुंजी

आरोहावरोह—नि॒ सा गम धनि॒सां नि॒ धग, मग, रिगम, मग॒ रि-सा ।

जाति—औडव-वक्र-संपूर्ण ।

ग्रह—ऋषभ । रिनि॒-सारिग-म ।

अंश—गान्धार ।

न्यास—मध्यम ।

अपन्यास—धैवत ।

विन्यास—षड्ज ।

मुख्य अंग—रिनि॒-सारिग-म ।

समय—रात्रि का द्वितीय प्रहर ।

प्रकृति—न गंभीर, न तरल ।

विशेष विवरण

यह राग विशेष प्रचार में नहीं है । हमारी परंपरा से हमे यह प्राप्त हुआ है । हमारे पूज्य दादागुरु पं० बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर को ग्वालियर परंपरा से यह प्राप्त हुआ था, और उन के प्रधान शिष्य हमारे गुरुदेव पं० श्रीविष्णुदिगंबर पलुस्कर की कृपा से उनके शिष्यों को प्राप्त हुआ और उन के द्वारा भारत में इस का प्रचार हुआ है ।

यह राग मुख्यतः दो रागों के सम्मिश्रण से पैदा हुआ है, ऐसा कहा जाता है । एक रागेश्री, दूसरा बागेश्री । आरोह में कहीं२ रागेश्री का सा रूप रहता है और अवरोह में कहीं२ बागेश्री का भास होता है । इन दोनों का सम्मिश्रण होते हुए भी इस राग का अपना निरालापन कायम रखते हुए, उन दोनो का अविर्भाव तिरोभाव होता रहता है । भैरव-बहार, वसंत-बहार या ऐसे अन्य सम्मिश्रण के समान दोनों रागों का पूरा रूप इस में निदर्शित नहीं होता, बल्कि दोनों का मिल कर एक तीसरा निराला ही रूप प्रकट होता है ।

'रिनि॒ – सारिग-म' इतना कहने मात्र से इस राग का प्रादुर्भाव होगा । इसका चलन इस प्रकार है :—

रिनि॒ – सारिग – म, रिगमग॒रि – सा, गमध – पधनि॒ – ध निध, प धप, म पम ग मग रिग – म, मग॒रिसा ।

नि॒सागमधनि॒सां, सांरिं – सां निध –, पधनि॒ ध निध प धप म पम ग मग रिग – म, मग॒रिसा । रिनि॒ – सारिग – म ।

इसमें शुद्ध निषाद अत्यल्प है, केवल उत्तरांग में 'सा' को छूते समय इसका उपयोग किया जाता है।

जहां 'मधनिध' और 'मगरिसा' होता होता है, वहां क्षण भर के लिये बागेश्री की छाया दिख जाती है। किन्तु तत्काल ध निध प धप म पम ग मग रिग – म इस क्रिया से बागेश्री का तिरोभाव हो जाता है और 'मगरिसा' के पुनः आविर्भाव होते ही रिनि – सारिग–म, इस क्रिया से बागेश्री पुनः तिरोहित हो जाती है। तद्वत् नि सागमधनिर्सां यों बागेश्री की छाया जरा सी दिखाई देते ही पुनः नि सांनि ध निध प धप म पम ग मग रिग – म यह स्वरावलि लेने से और 'रिगमगरि – सा' यों करने से बागेश्री तिरोहित हो जाती है और मालगुंजी प्रस्थापित हो जाती है।

शंका की जा सकती है कि बागेश्री में भी तो पंचम लगता है। वास्तव में बागेश्री में पंचम न लगाना ही उचित है, क्योंकि यह बागेश्री-कान्हड़ा की क्रिया है। फिर भी बागेश्री में जिस ढंग से पंचम लगाया जाता है, उस से इसमें पंचम लगाने का ढंग निराला है। इसमें तार षड्ज से मध्य गान्धार तक डोलते हुए स्वरों से नीचे उतरा जाता है और पंचम भी उसी प्रकार डोलते हुए लिया जाता है। हां, तानों में सांनिधप यों सीधा अवरोह होता है।

यह ध्यान रहे कि इसमें 'गसा गमप गरिनि सा' न लिया जाए, क्योंकि उस से हंसकिंकिणी दिखाई देगी। भीमपलासी के अंग से शुद्ध गान्धार लेकर गाई जाने वाली हंसकिंकिणी और इसमें बहुत अन्तर है। इसीलिये 'गमध' जाने को कहा है। 'गमप' जाने की मनाही है और उतरते समय पूर्वांग में 'रिगमगरि – सा' यों ही लेना चाहिए।

इस राग में अधिक चीजें नहीं मिलती इसका जो बड़ा ख्याल हमारी परंपरा में है, उसे सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह पता चलता है कि इस राग का आरोह दो ढंग से होता है।

१) सा, रिमपध } और २) गमधनिसां
सा, ललकुट } मोरमुकुट

किन्तु इसकी आलापचारी और तान क्रिया में 'सारिमपध' वाला आरोह – कम नहीं बरता जाता, सर्वथा 'नि सागमध' ही जाते हैं।

इस राग का सारा दारोमदार 'रिनि – सारिग – म'– इसी टुकड़े पर हैं और यह क्रिया इसके रागत्व को परिस्फुट करने के लिये बार-बार ली जाती है।

यद्यपि तान-क्रिया में 'नि सागमध' जाते हैं, और इस दृष्टि से निषाद इसका ग्रह स्वर होना चाहिए, फिर भी राग की आलप्ति के लिये और राग को प्रस्थापित करने के लिये जो ऊपर लिखा टुकड़ा आवश्यक है, उसका आरम्भ ऋषभ के बिना नहीं होता। इसलिए ऋषभ को ग्रह स्वर मानना चाहिये। शुद्ध गान्धार अंश स्वर है क्योंकि उसी पर राग का रागत्व निर्भर है। आरोह और अवरोह में मध्यम पर मुकाम किया जाता है, इसलिये मध्यम न्यास स्वर है। शुद्ध गान्धार का दीर्घ उच्चार कर के ही मध्यम पर ठहराव किया जाता है।

राग मालगुंजी

मुक्त आलाप

नि् सा नि्   नि् सा   नि् धसा
१) सा, नि् ∿∿ ध नि् सा, रिरिसानि्सा – नि् ∿∿ ध नि् सा, सा नि् ध नि् सा ग,

नि् सा
ग – रिगम ग्   रि – सा   रिरिसानि्सा – नि् ध नि् सा ग – रिगम ग् ∿∿ रि – सा, रिरिसानि्सा –

ग
सासानि्धनि् – सा ग – रिगम ग् ∿∿ रि – सा, रिनि्रिसा ग – रिगम ग् ∿∿ रि सा, सानि्रिसा ग-

नि्ध – सानि् – रिसा ग – रिगम ग् ∿∿ रि – सा।

ग ग रि
(२) ममग ग – म ग् – रि – सा, रिरिसानि्सा – ममगरिग – म पम ग् ∿∿ रि – सा, सासानि्धनि्

रिरिसानि्सा ममगरिग – म पम ग् ∿∿ रि – सा।

(३) रि सा नि् ध नि् सा ग, रिसानि्धनि्सा ग, म ग् रि सा नि् ध नि् सा ग, मग्रिसानि्धनि्साग –

रि   नि् रि
म पम ग् ∿∿ रि – सा, सा ग ग – म पम ग् ∿∿ रि – सा, नि्सा साग ग – म पम ग् ∿∿ रि – सा,

ध नि् रि
धनि्नि्सा साग ग – म पम ग् ∿∿ रि – सा; म पम ग् ∿∿, रि ग – म पम ग् ∿∿, सा ग – म

पम ग् ∿∿ रि – सा।

सा नि् सा
(४) सा, रिनि् – सारि ग – म, रिग – म, नि् सा ग – म, रिनि् – रिसा ग – म, रिनि् – साध –

सा म   ग   रि   सा सा   नि् ग ग   रि   ध ध   ध
नि् सा ग – म, ग – म = ग – ग = म, रिरि = सासा – म – म = ग – ग = म, सा – सा = नि् – नि् –

सानि नि रिसासा मगग पमम धपप निधध सांनिनि सां – निसां, सानि रिसासा मगगमम निधसांनिनि सां – निसां,

सा ग म ध
निरिरिसा साममग गपपम मनिनिध सां – निसां, सांरिंसां — निसांनि — धनिध — पधप — मपम — गमग रिग — म,

सा
म ग ∿∿ रि – सा।

ग मधनिसागं मं सां
(९) नि सागमधनिसां गं – रिंगं – मं – गं ∿∿ रिं – सां, रिंनि – रिंसां – गं – मं गं ∿∿ रिं – सां,

सां
रिंसांनि धनिसांगं – मं गं ∿∿ रिं – सां, रिंरिंसांनिसां गं – सांसांनिधनि सां गं – मंपंमं गं ∿∿ रिं – सां ;

सा
रिरिसानि सा ग – सासानि धनि ग – रिग – मपम ग ∿∿ रि – सा।

सा
(१०) रिरिसानि धनि सागमधनिसां गं – ग – मपम – ग ∿∿ रि – सा, नि सागमधनिसां – सा,

नि सागमधनिसांरिं – रि, नि सागमधनिसांगं – ग, मपम ∿∿ रि – सा

(११) नि सागमधनिसां – निसां, ध नि सां गं – रिंगंमं – गं ∿∿ रिं – सां, रिंसांनिधनिसांगं – सांमंगं ∿∿ रिं – सां, रिंरिंसांनिसां – मंमंगंरिंगं – मंपंमं गं ∿∿ रिं – सां, सां मं – गं रिंगं – मंपंमं गं ∿∿ रिं – सां, मगमरिग = म सांनिसांधनि = सां मंगंमंरिंगं = मं मंपंमं गं ∿∿ रिं – सां, सांनिधपमगमधनिसां गं – रिंगं – मंपंमं – गं ∿∿ रिं – सां, मगरिसानि धनि सागमधनिसांगं – मंपंमं – गं ∿∿ रिं – सां, सांनिधपमगमधनिसांगं – ग – मपम ग ∿∿ रि – सा।

मुक्त तानें

सानि्धनि् साग मगरिसा, रिरिसानि्धनि् सागमगरिसा, सारिरि सारिरि सानि्धनि् सागमगरिसानि्सा। मगरिसा रिरिसानि्धनि् सागमग रिसा, धनि्सानि् नि्सारिसा सागमग मगरिसा, रिरिसारि सानि्धनि् सागमग मगरिसा, सारिसा—सारिसानि्सा धनि्सागमगरिसा सारिसा—सारिसा नि्सानि्—नि्सानि् धनि्ध—धनि्ध धनि्साग मगरिसानि्सा। नि्सागम धधपम मगगम मगरिसा। रिरिसारिसानि् धनि्साग मगरिसानि्सा। मगरिसा नि्धमम मगरिग मगरिसा। मगरिसा नि्सागम धधपम मगरिसा। नि्सागम धनि्धप धधपम मगरिसा। रिगम रिगम रिगमप गम मगरिसा। नि्सागम धनि्धप मधपम मगरिसा। नि्सागम धनि्सानि् धप मगरिसानि्सा। नि्सागग सागमम गमधध म मनि्नि् धनि्सांनि्धप मगरिसानि्सा। सांसां—नि् धनि् सांरिं सांनि्धप मगरिसा। साग—गम—मध—धनि्धप मगरिसानि्सा। सागग गमम मधध धनि्नि् नि्सांसां सांनि्नि् नि्धध धपप पमम मगग मगरिसानि्सा। सारिसा—सारिसा नि्सानि्—नि्सानि्, गमग—गमग सारिसा—सारिसा नि्सानि्—नि्सानि्, धनि्ध—धनि्ध पधप—पधप मपम—मपम गमग—गमग सारिसा—सारिसा नि्सानि्—नि्सानि् धनि्सागमध नि्सां—नि् धपमगरिसानि्सा। नि्सागसा सागमग गमधम मधनि्ध धनि्सांनि् नि्सांरिंसां, रिंसांनि्सां सांनि्धनि् नि्धपध धपमप पमगम मगरिसा। नि्सागम धनि्सांरिं गंरिंसांनि्धप मगरिसानि्सा। सांरिंगंरिं नि्सांरिंसां धनि्सांनि् पधनि्ध मपधम गमपम रिगमगरिसानि्सा। सांगंरिंसां नि्रिंसांनि् धसांनि्ध पनि्धप मधपम गपमग रिगमगरिसानि्सा। रिगमगरिसा धनि्सांनि्धप रिंगंमंगंरिंसां सांनि्धपमगरिसानि्सा। रिगम—रिगम रिगमगरिसा, धनि्सां—धनि्सां धनि्सांनि्धप, रिंगंमं—रिंगंमं रिंगंमंगंरिंसां सांनि्धपमगरिसा। नि्सागमधनि् सांगंमंगंरिंसां सांनि्धपमगरिसा। रि——ग मगरिसा, ध——नि् सांनि्धप, रिं——गं मंगंरिंसां सांनि्धप मगरिसा। सासासा गगग ममम धधध नि्नि्नि् सांसांसां गंगंगं मंमंमं मंगंरिंसां सांनि्धप मगरिसा। सासासा—गगग गगग—ममम ममम—धधध धधध—नि्नि्नि् नि्नि्नि्—सांसांसां सांसांसां—गंगंगं गंगंगं—मंमंमं मंगंरिंसां सांनि्धप मगरिसानि्सा।

राग मालगुंजी

बड़ा ख्याल

ताल—विलम्बित एकताल

गीत

स्थायी— ए बन में चरावत गैयाँ लाल मुकुट लिये
देखो सर मों रज पंक धरे।

अंतरा—मोर मुकुट सीस अधक बिराजे
संग सखा बिरछन की छैयाँ॥

स्थायी

×		०		५	

०		९		११	
		सा रि ग – ग म – पम ए ऽ • • ऽ ••	म ग ग रि सा रि व न में च	ग मसा – – रा •• ऽ ऽ	नि रि ग रिसासानि धनि सा रि • • • • • • व त

×		०		५	
ग – – – गै ऽ ऽ ऽ	सा ग ग – रिग म • ऽ •• •	म याँ	मसा – – ला• ऽ ऽ	सा रि प – गरि पम धप – ध ऽ क• ल• कु• ऽ •	पध – – – ट• ऽ ऽ ऽ

०		९		११	
प पध–नि ध नि–सांनि •• ऽ• • • ऽ • •	ध निध प धप लि •• • ••	म पम ग मग • •• • ••	रि ग म – – ये • ऽ ऽ	सा म म मग ग ग दे• • •	रि – ग मग – – • ऽ • •• ऽ ऽ

×		०		५	
सा रि	सा	ग ग सा रि	ग मसा – –	ध सा सा – रि रि –	ध सा – सारि नि॒सां
खो	•	स र	मौं •• ऽ ऽ	र ऽ • न ऽ	पें ऽ •• ••

०		९		११	
– सा ध सानि॒	रिसा ग – –	पूर्ववत्			
ऽ क • ध •	रे• • ऽ ऽ	मुखड़ा			

अंतरा

०		९		११	
			– गम मध धनि॒	नि॒ं नि॒सां – –	सां – – नि॒सां
			ऽ मो• र• मु•	कु• ट• ऽ ऽ	सी ऽ ऽ ••

×		०		५	
सां	नि॒सां – – –	रिं नि॒–सां नि॒सां –	सां नि॒ नि॒सां रिं सां	ध सां सां सां नि॒ नि॒ नि॒	ध – – – नि॒
स	•• ऽ ऽ ऽ	अ• ऽ• ध• ऽ	• •• • क	वि • • •	रा • • ऽ•

०		९		११	
प प ध–नि॒ ध नि॒–सांनि॒	ध नि॒ध प धप	म पम ग मग	रि ग म – –	प ग म	– नि॒ ध नि
जे •ऽ• • •ऽ••	• •• • ••	• •• • ••	• • ऽ ऽ	सैं •	ऽ ग • स

×		०		५	
नि सां – –	नि॒सां – – –	सा रिं सां	प सां नि॒	नि॒ ध	प प ध – नि॒ ध नि॒ – सांनि॒
खा • ऽ ऽ	•• ऽ ऽ ऽ	वि र	छ न	की	है •ऽ• • •ऽ••

०		९		११	
ध नि॒ध प धप	म पम ग मग	सा ग म – पम – –	ग म॒ रि सा रि – ग	ग मसा – –	नि॒ रि ग रिसासानि॒ धनि॒ सा रि
यौं •• • ••	• •• • ••	• • ऽ •••ऽऽ	ज न में च ऽ•	रा •• ऽ ऽ	•••• •• व त

राग मालगुंजी

तराना

ताल—चिताल

स्थायी— तना देरे ना दीं दीं दीं, तन देरे ना तदानि दीं,
त दीं तन देरे ना तदानि दीं,

अंतरा—उदतन देरे ना तनन तन देरेना,
धनि् ध प म प ग म ग् रिसा ग म,
नक्धेत् धिरकिटतक धा धीना तिरकिट-
तक धुम किटतक कत्ते किदनग धाति धा क्डान्
किड धाति धा क्डान् किड धाति धा ॥

स्थायी

×				५				०				१३			
											रि़	सा नि़	सा नि़	सा	रि
											त	ना	•	दे.	रे
ग	–	–	ग	म	–	ग	मग्	रि	सा	–	–	–	–	सा नि़	सा
ना	ऽ	ऽ	दीं	•	•	दीं	••	दीं	•	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	त	न
रि	मग्	रि	सा	रि	रि नि़	सा	नि़ध्	नि़	सा	–	म	ग	रि ग	म	ध
दे	रे•	ना	•	त	दा	•	नि•	दीं	•	ऽ	त	दी	•	त	न
पध	सानि	ध	प	म	ग	रि ग	म	ग्	रि	सा					
दे•	रे•	ना	•	त	दा	•	नि	दीं	•	•					

अंतरा

०				१३			
गम	धनि्	सांनि	सां	निसां	निरिं	सांनि्	धध
उद	तन	दे रे	ना	तन	नत	न दे	देना
×				५			
धनि्	धप	मग	गम	गरि	सा	ग	म
०				१३			
मध –	––धध	धधधध	ध	धनि्	निनिनिनि	निनि सांसां	सांसांसांसां
नक्धेत्	ऽऽधिर	किटतक	धा	धीना	ति र कि ट	त क धु म	कि ट त क
×				५			
निसां	सांसांसांसां	निसां	निरिं	–रिंसांसां	ध – निध	ध – मि –	––धध
कत्ते	किड़नग	धाति	धाक्ड़ा	ऽन् किड़	धाऽति •	धा ऽ कड़ान्	ऽऽकिड़
०				१३			
गम	गरि	सा					
धाति	धा•	•					

तानें

	×				५				०				१३			
१)									रिग	मग	रिसा	त	ना	ऽ	दे	रे
२)								मग	रिग	मग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,
३)					मग	ग, म	गग,	मग	रिग	मग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,
४)					नि्सा	रम	धध	मग	रिग	मग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,
५)					धध	प, प	पम,	मग	रिग	मग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,

	×				५				०				१३			
६)					धप	पम,	पम	मग	रिग	मग्	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,
७)					रिरि	सा, म	म ,	मग	रिग	मग्	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,
८)		नि्सा	गम	धध	पध	पम	गप	मग	रिग	मग्	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,
९)	नि्सा	गम	धनि्	धप	पध	पम	मप	मग	रिग	मग्	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,
१०)	धनि्	ध, ध	नि्ध	पध	प, प	धप,	मप	म, म	पम	मग्	रिग	,,	,,	,,	,,	,,
११)	नि्सा	गम	धनि्	सांनि्	धप	धनि्	धप	मग	रिग	मग्	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,
१२)	मग्	रिसा	नि्सा	गम	धनि्	सांनि्	धप	म ग	रिग	मग्	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,
१३)	सांरिं'	सां, नि्	सांनि्	धनि्	ध, प	धप	मप	म, ग	मग	मग्	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,
१४)	नि्सा	गम	धनि्	सांरिं'	गं्रिं'	सांनि्	धप	मग	रिग	मग्	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,
१५)	नि्सा	गग	रिग	मम	गम	धध	मध	नि्नि्	धनि्	सांसां	नि्सां	रिं'रिं'	सांनि	सांसां	नि्ध	निनि्
	धप	धध	पम	पप	मग	मग	गम	गम	रिग	मग्	रिसा	त	ना	ऽ	दे	रे
१६)	*रिग*	*मग्*	*रिसा*	*धनि्*	*सांनि्*	*धप*	*रिं'गं*	*मंगं्*	*रिं'सां*	*धनि्*	*सांनि*	*धप*	*रिग*	*मग्*	*रिसा,*	*नि्सा*
	गम	धनि्	सांरिं'	गं्रिं'	सांनि्	धप	मग	रिग	मग्	रिसा	नि्सा	त	ना	ऽ	दे	रे
१७)	सासा	सा, ध	मध,	पध	पम,	गप	मग,	रिग	मग्	रिसा,	सासा	सा,सां	सांसां	सांरिं'	सांनि्	धसां
	नि्ध	पनि्	धप	मध	पम	गप	मग	रिग	मग्	रिसा	नि्सा	त	ना	ऽ	दे	रे
१८)	रिं'गं्	रिं', रिं'	गं्रिं',	सांरिं'	सां, सां	रिं'सां,	नि्सां	नि, नि्	सांनि	धनि्	ध, ध	नि्ध,	पध	प, प	धप,	मप
	म, म	पम,	गम	ग, ग	मग,	रिं'रिं'	सांनि्	धप	मग्	रिसा	नि्सा	त	ना	ऽ	दे	रे

परिशिष्ट

(पाठ्यक्रम के उपांग स्वरूप राग)

परिशिष्ट

(१) राग सूरमल्हार

सा
आरोहावरोह—(१) सा - सां - नि्ध - मर नि्ध - प, मरि - सा तथा (२) नि़सांरिमरनिसांरिं - नि्ध -

रि
मपनि्ध - प, रि - प, गरि, गुगुरि रिरिसानि़ सा।

जाति—औडव - वक्र - संपूर्ण।

ग्रह—षड्ज।

अंश—धैवत, क्योंकि इसके बिना यह राग सारंग से अलग नहीं हो सकता।

न्यास—पंचम।

अपन्यास—ऋषभ।

विन्यास—षड्ज।

सा सां
मुख्य अंग—सा सां - नि्ध - मर नि्ध - प।

समय—सारंग के समान दोपहर। मौसमी राग होने से वर्षा में आठों प्रहर।

प्रकृति—न तरल न गंभीर।

विशेष विवरण

सूर - मल्हार राग के लिए किंवदन्ती है कि वह महाकवि श्री सूरदासजी का बनाया हुआ है। वैष्णव संप्रदाय में भगवल्लीला के सभी पद रागबद्ध गीतों में ही गाए जाते हैं और संभव है इसी प्रकार सारंग में थोड़े से स्वरों के अन्तर से सूरदासजी ने किसी पद को गाया हो और तब से उसे सूर-मल्हार की संज्ञा मिली हो। जो हो, लेकिन यह सूर-मल्हार के नाम से प्रसिद्ध है।

इस राग में दो निषाद, शुद्ध धैवत और अतीव अल्प मात्रा में विशेष ढंग से कोमल गान्धार का प्रयोग किया जाता है।

सारंग में अवरोह करते समय नि्ध - मर नि्ध - प, इतनी क्रिया मात्र से सूर-मल्हार का आविर्भाव होता है। तान-क्रिया करते समय सारंग के अवरोह में सीधे ढंग से धैवत का प्रयोग युक्तिसम्मत है। कुछ लोग इसमें 'गमरिसा' करते भी

ध
देखे जाते हैं और साथ ही मल्हार का नि् निसां करने वाले कुछ अनजान गवैये भी सुने जाते हैं। वास्तव में इस राग में

सां सां
ददपमप निध – मप निध – प, रिरिसानिसा ममरिसारि पपमरिम धधपमप निध – म प निध – प, रिसा मरिरि –

सां सां
मरि पमम – पम धपप – निध – मप निध – प, सारि=सा रिम=रि मप=म पमधप निध – मप निध – प,

सा रि म सां सां म रि
सारि रिम मप पनिध – म प निध – प, मधमप रि, रि प पमम रि, गुगुरि रिरिसानिसा।

सां सां सां ध
(९) ममरिसा निसारिमपनिध – मप निध – प, सानि रिसा मरि पम धप निध – मप नि ध – प, म
ध सां
प सां – नि – ध – मप निध – प, मरि पम धप सांनि – ध – मप निध – प, मरिमसारिनि रिसा रिमप सांनि – ध –
ध सां प रि
मप नि ध – प, धधपमप मधमप रि, रि – म प – पमम रि, गुगुरि रिरिसानिसा।

प प ध
(१०) निसारिमपसां – निसां, निध – म प सां – निसां, निध – पमम रि – म प सां – निसां, मरिमसामरि
ध
पमधप सां – निसां, निधनिपधमधप सां – निसां, ममरिसानिसारिमपनि ध – म प सां – निसां, निसारिमपनिसांरिं निध-म
ध सां
प सां – निसां, रिंरिंसांनिसां निध – म पमधप निध – प, पमधप म रि सारि=सा – निसा।

(११) नि सारिमपनिसांरिं, रिरिसानिसा रिमपनिसांरिं –, सां – रिसां=रिं, नि=सांनि=रिं,
सा सां
प=सांनि=सां – नि=सांनि=रिं, म=धम=प प=सांनि=सां नि=रिंसां=रिं, रिं नि – ध – म प निध=प,
सां म
रिंरिंसांनिसांरिंनिध – म प नि ध – प, मधमप रि, रिम – सारि – निसा।

टिप्पणी—इस राग में आलाप पूरा करते समय गुगुरि रिरिसानिसा यह टुकड़ा कहीं-कहीं जोड़ देना चाहिये, जैसा कि ऊपर के आलापों में कहीं-कहीं दिखाया गया है।

मुक्त तानें

निसारिमपनिधप ममरिसा। पम धप निनिधप ममरिसा। मरि—पम—धप निनिधप ममरिसानिसा। रिसा—मरिपम धप निनिधपममरिसा। निसारिमपनिमप —निनि—धप ममरिसा। ममरिसा रिमपनि पमधप निनिधप ममरिसा। निनिध धधप मप निनिधप ममरिसा। ममरि रिरिसा निसा निनिध धधप मप निनिधप ममरिसा। गगरि रिरिसानिसा मरि —पम धपमप निनिधप ममरिसा। गगरि रिरिसानिसा धधप पपमरिम निनिध पधपमप सांनिधप ममरिसा। निसारिमरिसा रिमपनिपम पनिसांरिं सांनिधप ममरिसा। मरिरिसा पममरि धपपम निधधप सांनिनिप रिंसांसांनि रिंरिंसांनिधप ममरिसानिसा। सारिरिमपप पममरिरिसा, रिमपपनि निधधपम, मपपनिनिसां सारिंरिंसांसांनि, सांनिधप ममरिसा। रिंसांसांनि सांनिनिध निधधप धपपम पममरि मरिरिसा। सारिरिसा—रिममरि मपपम—पधधप पसांसांनि—निरिंरिंसां, सारिं – रिं सांनिधप ममसा। ममरिमरिसा धपपधपम सांसांनिसांनिप रिरिंसांरिंसानि रिंरिंसांनिधप ममरिसानिसा। रिसासा मरिरि पमम धपप सांनिनि रिंसांसां मंरिंमंमंरिंसां सांनिधप ममरिसा। गंगंरिं रिंरिंसांनिसां रिंरिंरिंसां सांसांनिपनि रिसांसांनि निनिपमप निनिध धधपमप निनिधपममरिसा। गगरि रिरिसानिसा गंगंरिं रिंरिंसांनिसां सांनिधप ममरिसा। साममरि रिपपम मधधप पसांसांनि निरिंरिंसां सांमंमंरिं रिंसां सांनि निध धप पममरि रिसानिसा। रि——म रिसानिसा, नि——रिं सांनिधप, रिं——मं रिंसांनिसां सांनिधप ममरिसा। रि=प——मरिम पनिधप ममरिसा, प=सां——नि पनिसांरिंसांनिधपमप, नि=रिं——रिंसांरिं मंमंरिंसां सांनिधप, मपनिसां रिंमंरिंसां सांनिधप ममरिसा।

अंतरा

		३		११	
		प प म म प –	रि' रि' – – नि नि	निसां – –	– – निसां सां
		ग र वा ऽ	ऽ ऽ म र	ज• ऽ ऽ	ऽ ऽ •• च

×		०		५	
सां	निसां – – –	मप निसां रि' –	सां – सां सां	प सां रि' रिसां सांनिनि –	ध म प –
हूँ	•• ऽ ऽ ऽ	ओ• •• • ऽ	र ऽ थ र	से •• ••• ऽ	• • • ऽ

०		९		११	
– – रि–म म–प	पसां नि – –	म – – प – नि प	म रि	सा ग–ग रिरिरि सानि	सा – – सा
ऽ ऽ तऽ• मऽ•	ही• • ऽ ऽ	ऽ ऽ •ऽ• स	दा	रंऽ• ••• ••	• ऽ ऽ ग

×		०		५	
रि नि नि सा	–	निसारिमपनि – –	नि ध म प –	– – प–सां नि–सां	सां रि'
अ त	ऽ	ही• • • • • • ऽ ऽ	• • • ऽ	ऽ ऽ सुऽ• खऽ•	पा

०		९		११	
सां – प –	म – मध प	पसां नि ध –	प – म – ध प	म म रि रि	रि – नि सा रा
••• ऽ • ऽ	• ऽ •• •	•• • ये ऽ	• ऽ •ऽ• •	ग र	ऽ ज •

तराना—त्रिताल

स्थायी—दानि दीं तन धीती लीती नों, तानों तानों तानों तों तदारे तारे दानि ।
अंतरा—ना दिर दिर दिर धीती लन दीं तन नन दीं ततनन ।
निता रे तदीं दीं तन तों ततनन तों तों तों ततनन तारे तारे दानि ॥

स्थायी

×				५				०				१२			
						म	प	नि्	–ध	पम	(नि्)प	(म)रि	रि	सा	सा
						दा	नि	दीं	ऽ•	त•	न	धी	ती	ली	ती
(सा)सां	–	–	–रिं'	सांनि्नि्	–ध	(प)म	प	नि्	–ध	पम	(नि्)प	(म)रि	रि	सा	सा
नों	ऽ	ऽ	ऽ•	•••	ऽ•	दा	नि	दीं	ऽ•	त•	न	धी	ती	ली	ती
सां	–	–	–	–	–	–	–	(सां)रिं'	–	–	–	सां	–	–	–रिं'
नों	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ता	ऽ	ऽ	ऽ	नों	ऽ	ऽ	ऽ•
नि	–	सां	–	नि्	प	–	–	(प)म	प	(म)रि	–	(म)रि	(प)म	प	नि्ध
ता	ऽ	•	ऽ	नों	•	ऽ	ऽ	ता	•	नों	ऽ	तों	•	•	त•
(प)म	–ध	प	–	रि	रि	सा	सा								
दा	ऽ•	रे	ऽ•	ता	रे	दा	नि								

अंतरा

								म	म	म	म	(नि्)प	प	नि	नि
								ना	दिर	दिर	दिर	धी	ती	ल	न
सां	–	सां	सां	सां	सां	सां	–	रिं'	नि	सां	सां	नि	सां	नि	सां
दीं	ऽ	त	न	न	न	दीं	ऽ	त	न	न	न	नि	ता	•	रे
नि	रिं'	(मं)नि	सां	नि्	–ध	पम	प	(मं)रिं'	–	मं	रिं'	सां	सां	रिं'	–
•	त	दीं	•	दीं	ऽ •	त•	न	तों	ऽ	•	त.	न	न	तों	ऽ
(मं)नि	–	सां	–	नि्	नि्ध	पम	प	म	–ध	प	–म	रि	रि	सा	सा
तों	ऽ	तों	ऽ	त	न•	न•	न	ता	ऽ•	रे	ऽ•	ता	रे	दा	नि

(२) राग झिंझोटी

आरोहावरोह—सारिगम पधसां, सांनिधपमग रिसा ।

अथवा—प ध सारिगमग, मगरिसा नि ध प ध सा ।

जाति—षाडव-संपूर्ण ।

ग्रह—मन्द्र पंचम ।

अंश—गान्धार ।

न्यास—गान्धार ।

अपन्यास—पंचम ।

विन्यास—षड्ज ।

मुख्य अंग—पधसारि गमग, मग रिसानि ध, प ध सा ।

समय—देखिए विशेष विवरण ।

प्रकृति—तरल ।

विशेष विवरण

अपनी मधुरता के कारण खमाज या काम्बोजी ने समाज में जो प्रिय स्थान प्राप्त किया है, झिंझोटी का भी समाज के दिल में वैसा ही स्थान है ।

विद्यार्थी यह समझ चुके हैं कि भरत के षड्जग्राम की जो मध्यम मूर्च्छना है, उससे प्राप्त स्वरावलि में कोमल निषाद आता है । षड्जग्राम के मध्यम को षड्ज मान कर जब मूर्च्छना बनाएँगे तब उस ग्राम का मूल आरंभ स्थान मन्द्र पंचम बन जाएगा और उसे पंचम मानने से झिंझोटी की स्वरावली सहज ही में प्राप्त हो जाएगी । इस प्रकार प ध नि सा रि ग म, म ग रि सा नि ध प—इस स्वरावली के आरोह में से निषाद निकाल देने से झिंझोटी का स्वरूप खड़ा हो जायगा ।

इसकी स्वरावली और मन्द्र मध्य प्रस्तार को ऊपर लिखी दृष्टि से देखने से यह प्रबल अनुमान हो आता कि झिंझोटी का षड्जग्राम की मध्यम-मूर्च्छना से सीधा संबन्ध है । इस अनुमान की पुष्टि एक और बात से भी होती है । भारत के सभी प्रान्तों और चारों दिशाओं के प्रदेशों में विवाह के अवसर पर ब्राह्मणों द्वारा जो मंगलाष्टक गाये जाते हैं, उसकी 'धुन' सभी जगह बिल्कुल एक सी पाई जाती है और वह पूर्णतः झिंझोटी का ही रूप है । इस परंपरा द्वारा यह स्वरावली अटूट रूप से आज तक चली आई है ।

किसी-किसी ने इसे क्षुद्र राग माना है या लोकगीत की एक धुन मान लिया है। किन्तु प्रचार में हम देखते हैं कि इस राग में बहुत से टप्पे, ठुमरी, इतना ही नहीं चौताल और धमार के पद भी पाए जाते हैं। साथ ही यह कहने में किंचित् भी अत्युक्ति का डर नहीं है कि कुछ लोकगीतों में शास्त्रीय रागों की परंपरा का अक्षुण्ण प्रवाह प्राप्त होता है। अफ़ग़ानिस्तान के कुछ लोकगीतों में तो भरत की मूर्च्छनाओं से उत्पन्न राग-रूप के दर्शन होते हैं। अनुसन्धान करने वालों के लिये यह भी एक खोज का विषय है।

इसका सामान्य चलन मन्द्र और मध्य सप्तक में ही होता है, यद्यपि कुछ लोग मन्द्र-मध्य की स्वरावलि को ही मध्य-तार में गाते हुए भी देखे गए हैं। प्रायः देखा गया है कि तानपूरे की पहिली तार मध्यम में मिला कर उसी को षड्ज मान कर इसका गान किया जाता है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि इसमें तार गति नहीं है। इसका चलन यों है—

सा, सानि़ध़ प़ध़सा, प़ध़सारि गमग, रिगमंगरिसा, रिसानि़ प़—सानि़ध़प़ध़सा।

इसमें कोमल गान्धार का थोड़ा सा स्पर्श कहीं २ करते हुए कुछ लोगों को देखा गया है। शोरी मियाँ के कुछ टप्पे ऐसे हैं जिनमें गान्धार कोमल का अल्प प्रयोग किया गया है। तद्वत् सा – निसा – यों करते समय शुद्ध निषाद का भी इसमें अल्प प्रयोग होते हुए देखा गया है।

इस राग के समय के संबन्ध में यह ध्यान रहे कि विवाह के अवसर पर प्रातः, मध्याह्न, सायं या मध्यरात्रि जब भी मुहूर्त होता है तब ब्राह्मण पाणिग्रहण के पूर्व इस राग में मंगलाष्टक गाते हैं।

कहा जाता है कि शोरी मियाँ ऊँट चराते हुए दिन में कहीं किसी वृक्ष की छाया में 'टप्पा' भरते थे यानी जहाँ विश्राम की बैठक जमाते थे, वहीं पर नये-नये टप्पे बाँधते थे। वे प्रेमीजन थे, उन्हें राग का बन्धन छू नहीं गया था, इसलिये उनके प्रायः टप्पे झिंझोटी, खमाज, भैरवी, काफ़ी ऐसे रागों में अधिकतर पाए जाते हैं। इसलिये इस राग के लिये समय का बन्धन नहीं रहा है। फिर भी स्वरों की रचना को देखते हुए खमाज के समय पर इसको गाया जा सकता है।

इसका मन्द्र-मध्य चलन होने पर भी द्रुत गति होने से इसकी प्रकृति तरल है। फिर भी ध्रुपद अंग से गानेवाले इसे कुछ गंभीरता प्रदान करते हैं।

मुक्त आलाप

(१) सा, सा नि़ ध़ प़ ध़, ध़ नि़ प़ ध़ सा, सारिसा नि़ ध़ प़, प़ध़पम़प़ध़सा, प़ध़सारिगमग, गगरिसा रिगमग, गगरिसारिगमग, नि़ नि़ ध़प़ध़ सासानि़ ध़नि़ रिरिसानि़ सा गगरिसारि गमग, ममग रिग—मगरिसा, गरिसानि़ रिसानि़ ध़ – सानि़ ध़प़ – प़ध़सारिगमग, रिगरिसारिगमग, ध़नि़ ध़प़ध़सा, रिगरिसारिगमग, गमरिगसारिनि़ सा, ध़नि़ प़ध़सारिगमग, गरिमग रिसागरि सानि़ रिसा नि़ ध़सानि़ ध़प़ध़सारिगमग, गरिमग ऽ सानि़ रिसा ऽ नि़ ध़सानि़ ऽ ध़प़नि़ ध़ ऽ प़ध़सारिगमग, रिगमगरिसा।

(२) धनि़ पध़ सारिधसा रिगसारि गमग, गमगम रिगरिग सारिसारि नि़सानि़सा धनि़धनि़ पधसारिगमग, गमप—*पमगरि रिगम—*मगरिसा सारिग—*गरिसानि़ निसारि—*रिसानि़ध धनि़सा—*सानि़धप, धसारिग—सारिगमग, गरिमगरिसा।

(३) सा, गमपध—*धपमग, गमप *पमगरि गमप मप, सा ऽ गमप मप, पधसारिगमपध *धगमपरिसानि़ध पधसारिगमग, धधपमग – पपमगरि – ममगरिसा, गगरिसानि़ – रिरिसानि़ध – सासानि़धप – धसारिग सारिगमग, सागमप गमपध *धपमगरिसा, पपमगरिसानि़ध – पधसारिगमग रिगमगरिसा।

(४) सा, गमपधसां, सांनि़धपधसां, धनि़पधसां, धधपमगरिसा गमपधसां, सांसांनि़धप, नि़नि़धपम, धधपमग, पपमगरि, गमपधसां, सां—*सांनि़धप नि़—*नि़धपम ध—*धपमग प—*पमगरि म—*मगरिसा गमपधसां, साग—साग गम—गम मप—मप पधपध सां, सांनि़धप नि़धपम धपमग पमगरि मगरिसा ; गमपधसां, रिं सां—नि़धप सां—नि़—धपम,

ध—प—मगरि प—म—गरिसा – सागमपधसां, पधसारिगमग सागमपधनि़ध गमपधसां, पध सां रिं गं मं गं, गंगंरिंसांनि़धप, धसांरिंगंसांरिंगंमंगं, गंरिंमंगंरिंसां रिंसांगंरिंसांनि सांनिरिंसांनि़ध नि़धसांनि़धप धपनि़धपम धमधपमग मगपमगरि गरिमगरिसा, सानि़धपधसारिगमगऽ रिगमगरिसा।

ऊपर लिखी स्वरावलियों को मध्यगति में गाने से आलाप तैय्यार होंगे और द्रुतगति में गाने से तानें तैय्यार होंगी। टप्पा के गान में ऊपर दिये हुए सारे स्वर-प्रयोग अधिक उपयुक्त होंगे। ठुमरी अंग से जब इस राग को गाते हैं तब इसमें गुणिजन खमाज की मात्रा बढ़ा देते हैं। अन्यथा इसका अधिक चलन तो मन्द्र और मध्य सप्तक में ही है। इसमें कोमल गान्धार का क्वचित् प्रयोग इस प्रकार होता है—ममगरिगमगरिसा, रिमगरिसानि़धप पधसारिगमग।

---

* चिन्हित स्वरों का धक्के के साथ उच्चार होगा।

राग झिंझोटी

ताल दादरा

गीत

स्थायी—कहाँ के पथिक कहाँ कीनो है गवनवा रे ।

अन्तरा १—कौन गाँव कौन ठाँव, कहाँ के निवासी राम,
कवन कारण तुम, तजो है भवनवा रे ॥

अन्तरा २—उत्तर दिशि इक, नगरी अयोध्या,
गाँव उही, ठाँव वहीं, सुनो हो सजनवा रे ॥

अन्तरा ३—दशरथ राजा के हम दोउ हैं कुँवरवा ।
माता के वचन सुनि, तजो है भवनवा रे ॥

अन्तरा ४—ग्रामवधू सकुच सकुच, पूछति सिय सों स-नेह ।
कौन से हैं प्रीतम, कौन से देवरवा रे ॥

अन्तरा ५—सिय मुसकाइ मधुर सैन सों बुझाइ दीन्ह ।
साँवरे से प्रीतम, गोरे से देवरवा रे ॥

अन्तरा ६—तुलसिदास आस प्रभु, चरन कमल धूरि की ।
मेरो मन हर लीनो, जानकी रमनवा रे ॥

स्थायी

×			०			×			०		
प	ध	–	सा	–	रि	सारि	गम	ग	ग	मग	म
क	हाँ	ऽ	के	ऽ	प	थ•	••	ग	क	हाँ•	•
रि	ग	रि	सा	नि	सा	रिग	म	गरि	सा	नि	धा
की	•	नो	है	•	ग	व•	•	न•	वा	•	•
नि	ध	प	ध	सा	रि						
रे	•	क	हाँ	के	प						

अंतरा

×			•			×			°		
सा	–	सा	गम	गरि	ग	गम	प	म	प	–	प
कौ	ऽ	न	गाँ•	••	व	कौ•	•	न	ठाँ	ऽ	व
ग	प	म	ग	रि	ग	गम	प	म	प	–	प
कौ	•	न	गाँ	•	व	कौ•	•	न	ठाँ	ऽ	व
ग	ग	–	गम	पध	प	ग	प	म	गम	रिग	म
क	हाँ	ऽ	के•	••	नि	धा	•	सी	ध•	••	म
म	म	म	म	–	म	मध	पनि̱	धप	म	ग	म
क	थ	न	का	ऽ	र	न•	••	••	तु	म	•
रि	म ग	रि	सा	नि̱	सा	रिग	म	गरि	सा	नि̱	सा
त	जो	•	है	•	म	य•	•	न•	धा	•	•
नि̱	ध̱	ध̱	ध̱	सा	रि						
रे	•	क	हाँ	के	प						

(३) राग जोगी या जोगिय

आरोहावरोह—सा रि॒ म प ध॒ सां, सां – नि ध॒ – प, म – ग रि॒ रि॒ -

जाति—औडव-संपूर्ण ।

ग्रह—षड्ज ।

अंश—ऋषभ, धैवत । गान्धार, निषाद अल्प होने पर भी अनुगामी ।

न्यास—मध्यम, ऋषभ । म पम का दीर्घोच्चार ।

अपन्यास—पंचम ।

विन्यास—षड्ज ।

मुख्य अंग—सारि॒ म – – ग रि॒ ∿∿, पध॒ सां – नि ध॒ ∿∿ ।

समय—सूर्यास्त और सूर्योदय के पूर्व । देखिए विशेष विवरण ।

प्रकृति—अतिशय करुण ।

विशेष विवरण

जोगी विरागभरी करुण रागिनी है । सामान्यतः जो स्वर भैरव या रामकली में लगते हैं, स्थूल मान से वही स्वर इसमें भी लगते हैं, किन्तु इसके आरोहावरोह में और स्वरों के उच्चार में और उनकी गति में अन्तर है और उन्हीं से इस जोगी की करुण-कोमलता और वीतरागिता व्यक्त होती है । इसका सामान्य आरोहावरोह सारि॒मपध॒सां, सांनिध॒पमगरि॒सा-यों है । इसके अवरोह में निषाद-गान्धार का प्रयोग अल्पत्व है । षड्ज और मध्यम की छाया में 'नि' और 'ग' ढके हुए रहते हैं अथवा छिपे हुए ढंग से उनका अल्पोच्चार करना होता है । इन उच्चारों का ज्ञान गुरुमुख से ही प्राप्त होगा । कलामात्र के ज्ञान के लिये गुरु का सान्निध्य अनिवार्य है ।

इस रागिनी के स्वरों में करुणा सहज है । किन्तु इस करुणा में विशेषता है । जीवन भर विरह के दुःख से दुःखित जीव की आशा जब मर जाती है, तब जगत् के प्रति जो उपराम भाव जाग्रत होता है, जो विराग उभरता है, उस विराग से उद्भूत करुणा इस रागिनी के स्वरों में प्रतिबिम्बित होती है । कोई स्वकीया, प्रौढा, प्रोषितपतिका नायिका संसार को त्याग कर राम की रटन में कुछ गद्‌गद् कंठ से गा रही हो, अपना दिल खोल रही हो, कुछ ऐसे भाव इस रागिनी के स्वरों में सुनाई देते हैं । इसका मुख्य स्वरूप इस प्रकार है :—

सारि् म = ग रि् रि्, सारि् म, प धृ - म = ग रि् रि्, रि्म, मप, प धृ - म रि् रि्, सारि् = सा रि्म = रि्

मप = म पधृ = म रि् रि्, रि म - पधृ सां - निधृ - म, प धृ - म रि् रि्, म प धृ सां रि् - सां - नि धृ - धृ - प,

मप पधृ - म रि् रि् - सा।

ऋषभ पर और धैवत पर उतरते समय एक विशेष प्रकार से क्रमशः गान्धार और निषाद का स्पर्श लेना आवश्यक है। राग के रस की और भाव की यही चाबी है। यही ऋषभ-धैवत और उन पर विशेष प्रकार के स्पर्श ही विराग और करुणा को उपजाते हैं। सां = नि धृ धृ, और म = ग रि् रि् इन स्वरों की, उनके उच्चारों की विशेष क्रिया गुरु से ही सीखी जा सकती है।

भैरव में मध्यम से मींड़ से गान्धार लेते हुए ऋषभ पर जिस गंभीरता से उतरते हैं और जिस भीषणता से उस ऋषभ को आन्दोलन दिया जाता है, भैरव की उस भयानक क्रिया का इसमें समूचा त्याग है। यद्यपि भैरव की भीषण स्वर-क्रिया और जोगी की करुण-कोमल क्रिया दोनों ही धैवत और ऋषभ पर आधारित हैं, किन्तु दोनों रागों में इन स्वरों का उच्चार-भेद ही भाव भेद को खड़ा करता है। इसलिये दोनों की भिन्न-भिन्न स्वर—क्रियाएँ गुरुमुख से मुखोद्गत करने से ही भावाभिव्यक्ति हो सकेगी। किताबों से कला नहीं सीखी जाती, यह ध्यान रखा जाए। जो स्वरों को जानते हैं, उनकी भिन्न-भिन्न क्रियाओं से उपजते भावों को पहिचानते हैं, जो भावों में उलझ कर रस में सुलझे हुए हैं वे इसको भली भाँति समझ सकेंगे।

इस राग के उठाव में सारि्म—ये स्वर लिये जाते हैं और पूर्वांग में म = ग रि् रि् और उत्तरांग में सां = नि धृ धृ प—ये क्रियाएँ रागवाची और भाववाची हैं।

इसे सवेरे गाते हुए भी सुना है, रात्रि के बारह बजे भी गाते सुना है और शाम को भी सुना है। हमारी राय में सूर्यास्त और सूर्योदय से पूर्व शान्त, एकान्त एवं वैराग्योत्पादक वातावरण में यह रागिनी गानी चाहिए। अथवा प्रभु के मन्दिर में जब भी आत्मनिवेदन करना हो, गा सकते हैं।

राग जोगी या जोगिया

मुक्त आलाप

(१) सारि म – रि गरि, म – रि गरि – सा, रि – म म – रि गरि – सा।

(२) सा रि म प ध, प ध – पम, म=पम पध – प ध – पम, रिम मप पध – पध – पम, सारि रिम – रिम मप प ध – पम, म – मरि गरि – सा।

(३) सारि – सा रि म प ध, ध पध, ध म प ध, धम मरि – म प ध –, मपम प ध, रि=मरि म=पम प ध, सा=रिसा रि=मरि म=पम प ध, धपध प ध, ध म म – रि गरि – सा।

(४) सारिमप ध – निध – प – ध – म, मप प ध – निध – प – ध – म, रिम मप पध – निध – प – ध – म, सारि रिम मप पध – निध – प – ध – म; मप=म पध, प ध – पम, रिम=रि मप=म प ध, प – ध – पम, सारि=सा रिम=रि मप=म प ध, प – ध – पम, म – ग रि गरि – सा।

(५) सारिमपधसां निसां, सारिम – रिमप – मपध – पधसां – निसां, सारिरिम – रिममप – मपपध – पधधसां – निसां; रि गरि – सा, ध निध – प, रिं गंरिं – सां, ध निध – प, म – रि गरि – सा।

(६) सारिमपधसांरिं, सांनिरिं, धसां – निरिं, मध – पसां – निरिं, रिम – मप – पध – धसां – निरिं, सां – नि ध नि ध – प, म – ग रि गरि – सा।

---

* गरि का यह प्रयोग जोगी का प्राण है। इसे लिखकर समझाना असंभव-सा है। फिर भी इतना ध्यान रखा जाय कि गरि का उच्चार जल्दी तो होगा, किन्तु उस पर आघात बिल्कुल न दिया जाय, बल्कि पहिले वाले 'रि' को ही बढ़ा कर गान्धार को छूते हुए फिर से 'रि' पर ही ठहरना है।

(७) सारि्मपधृसांरि्'मं – रि्' गंरि्' – सां, रि्'रि्'सांनिसांरि्' – रि्'रि्'सांनिसांरि्'मं – रि्' गंरि्' – सां,

धृधृपमपधृसांरि्'मं – रि्' गंरि्' – सां, रि्रि्सानि्सारि्म – धृधृपमरधृसां – रि्'रि्'सांनिसां रि्'मं – रि्' गंरि्' – सां,

रि्रि्सानि्सा रि्म – धृधृपमर धृसां – रि्'रि्'सांनिसां रि्'मं – रि्' गंरि्' – सां, प निधृ – प, रि् गरि् – सा।

टिप्पणी—यथासंभव इस राग में तानें न ली जायँ तो अच्छा। जल्द तानों से निश्चय ही इस में रसभंग होगा। फिर भी यदि कोई अल्प मात्रा में तान लेना चाहें तो उन के लिये थोड़ी सी तानें नीचे दी जाती हैं।

सारि्मपधृप मगरि्सा, सारि्मरधृसां सांनिधृपमगरि्सा, सारि्मरधसांरि्'रि्' सांनिधृप मगरि्सा। मगरि्सा, धृपमगरि्सा, सांनिधृप मगरि्सा। मगरि्सा सांनिधृप मंगंरि्'सां सांनिधृप मगरि्सा। मगरि्सा सारि्मपधृमपधृ मगरि्सा। सांनिधृप धृमरधृ सांनिधृप मगरि्सा। सांनिधृप धृसांरि्'रि्' सांनिधृप मगरि्सा। सारि्मप धृसांरि्'रि्'रि्'रि्' सांनिधृप मगरि्सा, सारि्मर धृधृपधृ मगरि्सा, रिमरधृ सांसांसांसां धृपमगरि्सा, मपधृसां रि्'रि्'रि्'रि्' सांनिधृप मगरि्सा।

गीत—त्रिताल

गीत

स्थायी—अनि अनि चरखड़ा मैनूँ भाँदा
सैंयोनी मैं क्यूँ कर रे कित साडा मन ललचाँदा ।

अंतरा—कच्ची रहदा तार कड़ना सो सानूँ नहिं भाँदा
मनरँग महरम कोउ नहिं जाने सो सानूँ ललचाँदा ॥

स्थायी

×				५				०				१२			
				पध्	म	प	ध्	(ध्)सां	सांनि	रि॒'सां	ध्	–	प	ध्	म
				अ॰	नि	अ	नि	च	र॰	ख॰	ड़ा	ऽ	मैं	॰	नूँ
प	–	प	–	–	–	सा	सारि॒	रि॒	म	–	रि॒	म	प	–	–
माँ	ऽ	दा	ऽ	ऽ	ऽ	सैं	यो॰	नी	॰	ऽ	॰	मैं	॰	ऽ	ऽ
मप--	–	पध्--	–	–	–	(म)ध्	प	म	ग	रि॒	–	–	–	(ग)रि॒	(ग)रि॒
क्यूँ॰ऽऽ	ऽ	॰॰ऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ	क	र	रे	॰	॰	ऽ	ऽ	ऽ	कि	त
(ग)रि॒	–	सा	–	–	–	रि॒	रि॒	म	म	पध्	मप	(प)ध्	–	ध्म--	–
सा	ऽ	डा	ऽ	ऽ	ऽ	म	न	ल	ल	चाँ॰	॰॰	दा	ऽ	॰॰ऽऽ	ऽ

अंतरा

								म	–	प	ध्	(ध्)सां	सां	सां	–
								क	ऽ	च्ची	॰	र	ह	दा	ऽ
–	रि॒'	–	रि॒'सां	(गं)रि॒'	रि॒'	सां	–	(नि॒)ध्	–	(नि॒)ध्	–	सां	–	सां	सां
ऽ	ता	ऽ	र॰	क	ड़	ना	ऽ	सो	ऽ	सा	ऽ	नूँ	ऽ	न	हिं

(७) सारिमपधसारिंमं – रिं गंरिं – सां, रिंरिंसांनिसांरिं – रिंरिंसांनिसांरिंमं – रिं गंरिं – सां, धधपमपधसारिंमं – रिं गंरिं – सां, रिरिसानिसारिम – धधपमरधसां – रिंरिंसांनिसां रिंमं – रिं गंरिं – सां, रिरिसानिसा रिम – धधपमर धसां – रिंरिंसांनिसां रिंमं – रिं गंरिं – सां, ध निध – प, रि गरि – सा।

टिप्पणी—यथासंभव इस राग में तानें न ली जायँ तो अच्छा। जल्द तानों से निश्चय ही इस में रसभंग होगा। फिर भी यदि कोई अल्प मात्रा में तान लेना चाहें तो उन के लिये थोड़ी सी तानें नीचे दी जाती हैं।

सारिमपधप मगरिसा, सारिमरधसां सांनिधपमगरिसा, सारिमरधसांरिंरिं सांनिधप मगरिसा। मगरिसा, धपमगरिसा, सांनिधप मगरिसा। मगरिसा सांनिधप मंगंरिंसां सांनिधप मगरिसा। मगरिसा सारिमपधमपध मगरिसा। सांनिधप धमपध सांनिधप मगरिसा। सांनिधप धसांरिंरिं सांनिधप मगरिसा। सारिमप धसांरिंरिंरिंरिं सांनिधप मगरिसा, सारिमर धधधध मगरिसा, रिमरध सांसांसांसां धपमगरिसा, मपधसां रिंरिंरिंरिं सांनिधप मगरिसा।

राग जोगी

ताल दीपचन्दी

गीत

स्थायी—जिया को मिलने की आस।
तुम बिन झरत-झरत मोरे थकि गो नयनवा।

अंतरा १—पल पल प्रेम पियास बढ़त है, छिन-छिन होत निरास।
तुम बिन घटत घटत मोरा, घटि गो जीवनवा॥

अंतरा २—नित दुख होत उसांस बिथा सों, दिन-दिन होत उदास।
तुम बिन तड़प-तड़प मोरा, मरि गो ये मनवा॥

अंतरा ३—तरस-तरस तोरे दरस-परस को, 'प्रणव' रही अब आस।
तुम बिन जरत-जरत मोरा, जरि गो ये तनवा॥

स्थायी

×			४				०			११			
ग	स रि॒	–	म	–	–	–	ध॒	प	–	ध॒	म	प	ध॒
जि	या	ऽ	को	ऽ	ऽ	ऽ	मि	ल	ऽ	ने	•	की	•
सां	–	–	–	–	–	सां	नि	सां	– नि	रिं॒	–	नि	ध॒
आ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	स	तु	म	ऽ •	•	ऽ	बि	न
प	ध॒	–	प	–	–	ध॒	प	ध॒	प म	प	ध॒नि॒	ध॒	प
झ	र	ऽ	त	ऽ	ऽ	झ	र	त	•	•	••	मो	रे
म	म	–	म	प	म पध॒–	प	म	ग	मग	रि॒	ग रि॒	सा	–
थ	कि	ऽ	गो	•	•• ऽ	न	य	न	••	वा	•	•	ऽ

×				५				०				१३			
ध्	सां	नि	रिं॒	–	–	सांनि	ध्प	म	म	प	प	नि् ध्	नि् ध्	नि् ध्	नि् ध्म
ऑं	•	•	•	ऽ	ऽ	दा•	••	म	न	रँ	ग	म	ह	र	म•
म	म	म	मग	रि्	गरि्	सा	–	सा	–	सा सां	–रिं॒	नि सां	–नि	ध्	प
को	उ	न	हिं•	जा	••	ने	ऽ	सो	ऽ	सा	ऽ•	नूँ	ऽ•	ब	त
पध्	म	प	–												
लॉं•	•	दा	ऽ												

राग जोगी

ताल दीपचन्दी

गीत

स्थायी—जिया को मिलने की आस।
तुम बिन झरत-झरत मोरे थकि गो नयनवा।

अंतरा १—पल पल प्रेम पियास बढ़त है, छिन-छिन होत निरास।
तुम बिन घटत घटत मोरा, घटि गो जीवनवा॥

अंतरा २—नित दुख होत उसांस बिथा सों, दिन-दिन होत उदास।
तुम बिन तड़प-तड़प मोरा, मरि गो ये मनवा॥

अंतरा ३—तरस-तरस तोरे दरस-परस को, 'प्रयाग' रही अब आस।
तुम बिन जरत-जरत मोरा, जरि गो ये तनवा॥

स्थायी

×			४				०			११			
ग	स रि॒	—	म	—	—	—	ध॒	प	—	ध॒	म	प	ध॒
जि	या	ऽ	को	ऽ	ऽ	ऽ	मि	ल	ऽ	ने	•	की	•
सां	—	—	—	—	—	सां	नि	सां	—नि	रिं॒	—	नि	ध॒
आ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	स	तु	म	ऽ•	•	ऽ	बि	न
प	ध॒	—	प	—	—	ध॒	प	ध॒	प म	प	ध॒नि॒	ध॒	प
झ	र	ऽ	त	ऽ	ऽ	झ	र	त	•	•	••	मो	रे
म	म	—	म	प	म पध॒—	प	म	ग	मग	रि॒	ग रि॒	सा	—
थ	कि	ऽ	गो	•	••ऽ	न	य	न	••	वा	•	•	ऽ

(४) कालिंगड़ा

आरोहावरोह—नि॒सागमपध॒निसां, सांनिध॒प मपगमग, मगरि॒सा।

जाति—षाडव-संपूर्ण।

ग्रह—निषाद।

अंश—गान्धार। मध्यम अंश का सहायक, ऋषभ-धैवत अनुगामी।

न्यास—गान्धार।

अपन्यास—पंचम।

विन्यास—षड्ज।

मुख्य अंग—नि॒सागमपध॒मप गमग पध॒पध॒मप गमग।

समय—प्रभात।

प्रकृति—बाल्सुलभ चपल।

विशेष विवरण

सामान्य रूप से कलिंगड़ा लोकगीतों में खूब गाया जाता है, ग्रामगीतों में इस का खूब चलन पाया जाता है। स्वर – दृष्टि से तो इस में 'रि॒ – ध॒, कोमल और बाकी सब स्वर शुद्ध हैं। इसलिये स्थूल रूप से देखने वाले इसे भैरवांग का राग कहेंगे, किन्तु भैरव का धीर, गंभीर भीषण रूप और कालिंगड़ा का बालसदृश चपल रूप—इन दोनों में बहुत अन्तर है। इस की चाल उछलते कूदते छलांग मारते बालकों की नांई रहती है। कहीं किसी स्वर पर ठहरना इसे प्रिय नहीं। केवल छलांग भरी, ठहर गए, फिर छलांग भरी फिर ठहर गए, बस उतना ही ठहरना इसे भाता है। यथा—

नि॒सा गमग, गमपध॒मप, गमग, ध॒पध॒मप गमग, रि॒सारि॒नि॒सा, ध॒पध॒मप, गमग, रिं॒सारिं॒निसां, ध॒पंध॒मप, पध॒पध॒मप गमग, मगरि॒सा – रि॒सारि॒नि॒सा।

कहीं किसी स्वर पर किसी प्रकार का कोई आन्दोलन नहीं देना होगा। गमध॒ ∿∿ ग म रि॒ ∿∿ (नि) ऐसे कहीं जरा भी स्वर को हिलाया तो वहीं भैरव आँख दिखाएगा। चाहे पूर्वांग में गान्धार पर ठहरो, सप्तक के मध्य में पंचम पर ठहरो या मध्य अथवा तार षड्ज पर ठहरो, यही उसकी चाल है, जो सारे राग के अंग में समाई हुई है।

अंतरा

×			४				०			११			
प	ध्	–	सां	–	सां	–	सां	–	–	सां	–	सां	–
प	ल	ऽ	प	ऽ	ल	ऽ	प्रे	ऽ	ऽ	म	ऽ	पि	ऽ
नि	रिं	–	रिं	–	–	रिं	रिं	मं	–	रिं	गं रिं	सां	–
या	•	ऽ	स	ऽ	ऽ	ब	द	त	ऽ	है	•	•	ऽ
ध्	प	–	ध्	–	प	–	ध्	म	–	प	–	ध्	–
नि	स	ऽ	दि	ऽ	न	ऽ	हो	•	ऽ	त	ऽ	नि	ऽ
सां	–	–	–	–	–	सां	ध्सां	सांरिं	–	नि	–	ध्	नि ध्
रा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	स	सु•	म•	ऽ	बि	ऽ	न	•
प	ध्	–	प	–	–	ध्	प	ध्	प म	प	ध्नि	ध्	प
ध	ट	ऽ	त	ऽ	ऽ	ध	ट	त	•	•	••	मो	रा
म	म	–	म	प	म पध्–	प	म	ग	मग	रि्	ग रि्	सा	–
घ	टि	ऽ	गो	•	••	जी	व	न	••	वा	•	•	ऽ

(४) कालिंगड़ा

आरोहावरोह—नि॒सागमपध॒ निसां, सांनिध॒प मपगमग, मगरि॒सा।

जाति—षाडव-संपूर्ण।

ग्रह—निषाद।

अंश—गान्धार। मध्यम अंश का सहायक, ऋषभ-धैवत अनुगामी।

न्यास—गान्धार।

अपन्यास—पंचम।

विन्यास—षड्ज।

मुख्य अंग—नि॒सागमपध॒मप गमग पध॒पध॒मप गमग।

समय—प्रभात।

प्रकृति—बालसुलभ चपल।

विशेष विवरण

सामान्य रूप से कलिंगड़ा लोकगीतों में खूब गाया जाता है, ग्रामगीतों में इस का खूब चलन पाया जाता है। स्वर – दृष्टि से तो इस में 'रि॒ – ध॒, कोमल और बाकी सब स्वर शुद्ध हैं। इसलिये स्थूल रूप से देखने वाले इसे भैरवांग का राग कहेंगे, किन्तु भैरव' का वीर, गंभीर भीषण रूप और कालिंगड़ा का बालसदृश चपल रूप—इन दोनों में बहुत अन्तर है। इस की चाल उछलते कूदते छलांग मारते बालकों की नांई रहती है। कहीं किसी स्वर पर ठहरना इसे प्रिय नहीं। केवल छलांग भरी, ठहर गए, फिर छलांग भरी फिर ठहर गए, बस उतना ही ठहरना इसे भाता है। यथा—

नि॒सा गमग, गमपध॒मप, गमग, ध॒पध॒मप गमग, रि॒सारि॒नि॒सा, ध॒पध॒मप, गमग, रिं॒सारिं॒निसां, ध॒पध॒मप, पध॒पध॒मप गमग, मगरि॒सा – रि॒सारि॒नि॒सा।

कहीं किसी स्वर पर किसी प्रकार का कोई आन्दोलन नहीं देना होगा। गमध॒ (नि) ∿∿ ग म रि॒ ∿∿ ऐसे कहीं जरा भी स्वर को हिलाया तो वहीं भैरव आँख दिखाएगा। चाहे पूर्वांग में गान्धार पर ठहरो, सप्तक के मध्य में पंचम पर ठहरो या मध्य अथवा तार षड्ज पर ठहरो, यही उसकी चाल है, जो सारे राग के अंग में समाई हुई है।

इतना ध्यान रखा जाए कि नि़, सारि़ग, रि़सारि़नि़, सारि़ग, सारि़नि़—इस प्रकार पूर्वांग या उत्तरांग में निषाद पर कहीं भी ठहरा न जाए। इस प्रकार निषाद पर ठहरना गौरी को आमंत्रित करना है ।

कुछ लोग इस में तीव्र मध्यम का प्रयोग करने को कहते हैं, किन्तु तीव्र मध्यम का प्रयोग इसे परज के पास बिठा देगा। यों कहना अधिक सयुक्तिक होगा कि बसन्त के स्वरों या कालिंगड़ा के सदृश उच्चार करने मात्र से परज हो जाएगा। इसलिये हमारी राय में इसमें तीव्र मध्यम का प्रयोग सर्वथा निषिद्ध मानना चाहिए।

इस राग के जो गीत उपलब्ध हैं, उन्हें देखते हुए यह द्रुत-मध्य-गति में गया जाने वाला एक चंचल प्रकृति का राग है। इस के गीत षड्ज, गान्धार, पंचम, धैवत, निषाद इत्यादि स्वरों से आरंभ किये हुए पाए जाते हैं। फिर भी इस की द्रुत आलप्ति और तानक्रिया नि़सागमपधमप – गमग – इस प्रकार निषाद से ही आरंभ होती है, इसलिए निषाद इस का ग्रह स्वर माना गया है, कहीं कोमल निषाद का स्पर्श गाते समय हो जाता है और वह लक्ष्यसम्मत है ।

मुक्त आलाप

टिप्पणी—इस राग में कभी विलंबित गति का प्रयोग नहीं होता।

(१) सा, सारि़सारि़नि़साऽ गमग, नि़सागमरि़गऽ मगरि़सा।

(२) नि़सागमपऽ ध़पध़—मपगमग, गमपगमग, सागमप गमग, गमध़पऽ धमपगमग, सागमप गमपध़—मप-गमग, मगरि़सा।

(३) नि़सागमपध़प, सागमप गमपध़प, नि़सागम सागमप गमपध़—मप गमग, मपध़प मपगमग, गमध़प मपगमग, गम—गप—मध़—पध़मप·गमग, गमपध़—मध़—पध़मप—गमग, सागमप गमपध़ मध़पध़मप—गमगऽ मगरि़सा।

(४) नि़सागमपध़निसां – निध़प धपध़मपगमग, सांनिधसां – निध़प ध़पध़—मपगमग, मगम पमप ध़पध़ सांनिसां ध़पध़—मप—गमग, रि़सारि़नि़सा ध़पध़ मप निसां=निध़प ध़पध़ मपगमग, मगरि़सा।

(५) नि़सागम सागमप गमपध़ मपध़नि पध़निसां रि़'सांरि़'निसां – निध़प ध़मप—गमग, सांरि़'सांरि़'-निसां – नि पध़ पध़ मप=म गमग, सांनिरि़'सां – निध़प, पमध़प=म गमग, पध़निसां ध़निसांरि़' निसां=निध़प ध़मप—गमग, निसां=रि़'सांनिध़प मप=निध़प[1] गमग, मपध़प पध़निध़ ध़निसांनि निसांरि़'सां पनिध़प मपगमग, मगरि़सा।

---

1. कोमल निषाद के अल्प स्पर्श का यह उदाहरण है।

(६) निसागमपध निसां, निरिं सांरिं निसां, ध निध सां – निरिं सांरिं निसां, मपमप मध पध मंपं निध — सांनि — रिं सांरिं — निसां, गमगप — मध — पनि — ध सां — निरिं सां रिंनिसां, साग — साम — गप — मध — पनि — धसांनिरिं सांरिं निसां = निधप धमप — गमग, मगरिसा ।

(७) निसागमपध निसां — गं, मंगंरिं सां सांरिं निसां गं, मंगंरिं सांरिं निसां, सांरिं निसां गं, मंगंरिं सांरिं निसां,

म प ध नि ग म प ध

ध नि निसां गं, मंगंरिं निसांरिं निसां ; मप पध ध नि निसां सांगं, मंगंरिं सांरिं निसां ; गम मप पध धनि निसां

नि सा ग म प ध नि

सांगं, मंगंरिं सांरिं निसां ; साग गम मप पध ध नि निसां सांगं, मंगंरिं सांरिं निसां – निध प धपध — मप — गमग, मगरिसा ।

ऊपर लिखी स्वरावलियों को ही द्रुत गति में लेने से तानें तैयार हो जाएँगी ।

राग कालिंगड़ा

भजन-त्रिताल

स्थायी—भक्ति वड़े वश थाय रमापति भक्ति वड़े वश थाय।
जो ईश्वर वश थाय नहिं तो, जन्म मरण नहि जाय॥

अन्तरा १—भक्ति परम सुख सुं शुभ साधन, सफल करे छे काय।
भक्ति वड़े भगवान सदा वश, निगमागम पण गाय॥

अन्तरा २—वालयाना बल रूप दयाघन, निर्बल थई बंधाय।
संकट सेवक पर आवे तो, त्यां धरणीधर थाय॥

अन्तरा ३—भक्ताधीन दयानिधि भूधर, भक्ति विना न पमाय।
भक्ति विना व्रत जप तप आदिक, अफल अनेक उपाय॥

अन्तरा ४—धन यौवन बल बुद्धि चतुरता, निर्बल ते समुदाय।
रंग रूप कुल जाति विशेषे, न करे कोई सहाय॥

अन्तरा ५—अजामील नारदमुनि शबरी, वयां गणिका गजराय।
'केशव' हरिनो भक्ति सेवा गुण, एक मुखे न गवाय॥

स्थायी

×				५				०				१२			
									ध्	प	म	ग	म	प	ध्
									भ	क्ति	व	ड़े	•	व	श
नि	सां	नि	ध्	प	ध्	म	प	–	ध्	प	म	ग	म	प	प
था	•	य	र	मा	•	प	ति	ऽ	भ	क्ति	व	ड़े	•	व	श
ध्	–	–	–	प	–	–	प	–	म	म	–	म	म	ग	म
था	ऽ	ऽ	ऽ	•	ऽ	ऽ	य	ऽ	जो	ई	ऽ	श्व	र	व	श
प	नि् ध्	प	म	ग	मग	सारि्	नि्सा	–	सा	ग	म	प	प	प	ध्
था	•	य	न	ही	••	तो•	••	ऽ	ज	न्म	म	र	न	न	हि

×				५				०				१३				
पध्	निसां	नि	ध	प	ध्	म	प	–	ध	प	म	ग	म	प	प	
का॰	●●	य	र	मा	●	प	ति	ऽ	भ	क्ति	य	के	●	य	दा	
ध्	–	–	–	प	–	–	प									
या	ऽ	ऽ	ऽ	●	ऽ	ऽ	य									

अंतरा

									ध्	प	ध्	नि	नि	सां	सां	
									भ	क्ति	प	र	म	सु	ख	
नि	रिं	सां	रिं	नि	–	सां	सां	प	ध्	सां	नि	ध्	–	प	ध्	
सु	●	ख	म	सा	ऽ	ध	न	स	फ	ल	क	रे	ऽ	छे	:●	
पध्	निसां	–	नि	प	ध्	म	प	–	म	म	म	म	म	ग	म	
का॰	●●	ऽ	●	।●	●	●	य	ऽ	भ	क्ति	व	है	●	म	ग	
प	नि् ध	प	म	ग	रि्	सा	सा	–	सा	ग	म	प	प	प	ध्	
या॰	●	न	स	दा	●	क	श	ऽ	नि	ग	मा	ग	म	प	ण	
पध्	निसां	नि	ध्	प	ध्	म	प	–								
गा॰	●●	य	र	मा	●	प	ति	ऽ								

राग कालिंगड़ा

भजन-त्रिताल

स्थायी—तू सो राम सुमर जग लड़वा दे ।

अन्तरा १—कोरा कागद कारी स्याही, लिखत पढ़त वाको पढ़वा दे ॥

अन्तरा २—हाथी चालत अपनी गत मो, कुतर भुकत वाको भुकवा दे ॥

अन्तरा ३—कहत कबीर सुनो भई साधो, नरक पचत वाको पचवा दे ॥

स्थायी

×				५				०				१३			
						ध॒	प	म	प	म	ग	म	म	प	मप
						तू	ती	रा	•	म	सु	मि	र	ज	ग
ध॒	ध॒	ध॒	–	प	–	–	–								
ल	ड़	वा	ऽ	दे	ऽ	ऽ	ऽ								

अंतरा

								प	ध॒	प	ध॒	नि	नि	सां	सां
								को	•	रा	•	का	•	ग	द
सां	रिं॒	सां	रिं॒	नि	नि	सांरिं॒	निसां	–	ध॒सां	नि	ध॒	प	ध॒	प	ध॒
का	•	री	•	स्या	•	ही•	••	ऽ	लिख	त	प	ढ़	त	वा	को
नि	सां	नि	ध॒	प	–	ध॒	प	म	प	म	ग	म	म	प	मप
प	ढ़	वा	•	दे	ऽ	तू	तो	रा	•	म	स	म	र	ज	ग

—